महाकविवेङ्कटाध्वरिप्रणीत विश्वगुणादर्शचम्पू का साहित्यिक अध्ययन

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत)

शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्त्री

सीमा अग्रवाल

निर्देशक

डॉ० सन्त नारायण श्रीवास्तव

प्रोफेसर संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९९२

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विषय "श्री वेङ्कटाध्वरि प्रणीत "विश्वगुणादर्शचम्पू" का साहित्यिक अध्ययन है । बाल्यकाल से ही मेरे माता-पिता की यह हार्दिक अभिलाषा थी कि उनकी पुत्री संस्कृत विषय में शोध-कार्य करे । अतः मेरी शिक्षा प्रारम्भ होने के साथ ही वे मुझे संस्कृत की ओर प्रेरित करने वाली कथा-कहानियाँ सुनाने लगे । मेरे पिताजी चूँकि स्वयं एक अध्यापक हैं, अतः वे मुझे संस्कृत का प्रेरणादायक पुस्तकें, जो हिन्दी में अनुवादित रहती थीं, लाकर देने लगे । मैं उनको अत्यन्त रूचि के साथ पढ़ा करती थी । शनैः शनैः मेरी संस्कृत के प्रति विशेष रुचि हो गयी । तब मैंने निश्चय किया कि मैं बड़ी होकर अवश्य ही अपने माता-पिता के इस स्वप्न को साकार करूँगा । मेरे माता-पिता द्वारा सुनायी जाने वाली कहानियाँ प्रायः रामायण, महाभारत, पञ्चतन्त्र एवं पुराणादि पर आधारित हुआ करती थीं । मुझे आज भी भलीभाँति याद है कि मेरी माँ ने मुझे जब नल-दमयन्ती की कथा प्रथम बार सुनायी थी तो मैं आत्म-विभोर हो उठी थी । मैं बहुधा उनसे अनुरोध करके इस कथा को सुना करती थी । तदनन्तर जब मुझे स्नातकोत्तर कक्षा में अपने पाठ्यक्रम में निर्धारित 'नलचम्पू' का अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई । एक बार पुनः मुझे बाल्यावस्था की स्मृति हो आयी । मैंने यह दृढ़ निश्चय किया कि मैं चम्पूकाव्य पर ही शोध कार्य करूँगी । मैंने अपनी इस तीव्र इच्छा को अपने पिता श्री पूरनचन्द्र गर्ग जी से कहा । उन्होंने मुझे शोध करने की अनुमति देने के साथ-साथ पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया । तत्पश्चात् मैंने अपनी इस प्रबल इच्छा को संस्कृत विभाग के वरिष्ठ प्रोफेसर डॉ० सन्तनारायण श्रीवास्तव जी के सम्मुख व्यक्त किया । उन्होंने चम्पूकाव्यों के प्रति मेरा विशेष रूझाव देखकर मुझे श्री वेङ्कटाध्वरि

रचित "विश्वगुणादर्श चम्पू" नामक चम्पूकाव्य ग्रन्थ पर शोध करने का सत्परामर्श दिया । इसके पश्चात् मेरे पिताजी ने मुझे चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, द्वारा प्रकाशित "विश्वगुणादर्शचम्पू" काव्य-ग्रन्थ लाकर दिया । बचपन से ही पारिवारिक प्रेरणा व प्रोत्साहन के कारण मुझे चम्पू काव्य पर विशद अध्ययन करने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ । इस प्रकार चम्पूकाव्य साहित्य परम्परा की श्रीवृद्धि करने वाले लगभग 17वीं शताब्दी के आसपास विरचित "विश्वगुणादर्शचम्पू" काव्य-ग्रन्थ पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हो गया तथा चम्पूकाव्य रूपी अमृत का रसास्वादन करने की चिरप्रतीक्षित स्पृहा शान्त हुई ।

गुण और दोष प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति अर्थात् कण-कण में विद्यमान है । यह तथ्य व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह किसे ग्रहण करे ? गुण को अथवा दोष को । कुछ व्यक्ति गुणग्राही होते हैं और कुछ दोषग्राही । व्यक्ति अपने संस्कारों आदतों तथा कर्म के अनुसार ही गुण अथवा दोष का ग्रहण करता है । इसकी पर्याप्त शिक्षा विश्वगुणादर्श चम्पू काव्य से प्राप्त होती है ।

अतः परमपिता परमात्मा एवं गुरुदेव की असीम अनुकम्पा के परिणामस्वरूप आज मैं अपने पिता श्री पूरनचन्द्र गर्ग जी की हार्दिक अभिलाषा को मूर्तरूप प्रदान कर सकी हूँ । उनसे प्राप्त पवित्र प्रेरणा एवं आशीर्वाद बाल्यावस्था से लेकर आज तक सदैव मेरे साथ रहा है । तथा वन्दनीया माँ श्रीमती शान्तीदेवी गर्ग द्वारा प्रदत्त शुभ संस्कार भी मुझे इस कार्य के लिये सदैव प्रेरित करते रहे हैं ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मेरे परम पूज्यनीय गुरुवर्य डॉ० सन्तनारायण श्रीवास्तवजी

वरिष्ठ प्रोफेसर (संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के निर्देशन में लिखा गया है, जिनकी सत्प्रेरणा, उत्साहवर्धन एवं ज्ञानरश्मियों ने मेरे मार्ग को सदैव आलोकित किया है । आपने अति व्यस्त होते हुए भी समय-समय पर विद्वतापूर्ण परामर्श देते हुए आवश्यक परिमार्जन एवं संशोधन कराये हैं । परमादरणीय गुरुदेव के इस परिमार्जन एवं संशोधन के लिए मैं अत्यन्त श्रद्धावनत होकर अपनी प्रणामाञ्जलि, समर्पित करती हूँ । उनके सहयोग के परिणामस्वरूप ही यह शोधकार्य पूर्ण हो सका है ।

इस अवसर पर उन सभी महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना परम कर्तव्य समझती हूँ, जिनके सहयोग एवं आशीर्वाद एवं प्रेरणा से यह कार्य सम्पन्न हो सका है । संस्कृत विभागाध्यक्ष गुरुवर्य डॉ० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तवजी एवं विभाग के वरिष्ठ प्रोफेसर गुरुवर्य डॉ० सुरेशचन्द्र पाण्डेय जी ने मेरे शोधकार्य के पूर्ण होने में अतीव सहायता की है ।

मेरे पति श्री नीरजजी का अपूर्व योगदान अविस्मरणीय है, जिन्होंने मेरे शोध-प्रबन्ध के लेखनमार्ग पर आने वाले अनेकशः व्यवधानों को दूर कर इसके लेखनकार्य में समय समय पर अपेक्षित सहायता तथा उत्साहवर्धन किया है । उनको प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं सहयोग के बिना यह कार्य पूर्ण हो पाना असम्भव था ।

अध्ययनकाल में मेरे माता-पिता, भाई-बहिन एवं ससुरालपक्ष का परोक्ष एवं अपरोक्ष सहयोग प्रशंसनीय है ।

पुस्तकालयाध्यक्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद तथा पुस्तकालयाध्यक्ष भारतीभवन, इलाहाबाद के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर आवश्यकतानुसार पुस्तकें प्रदान कर मुझे कृतार्थ किया है ।

शोध-प्रबन्ध हेतु मैंने जिन महर्षियों, विद्वानों, आचार्यों एवं विचारकों के ग्रन्थों से सहायता प्राप्त की है, उनके प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ ।

अन्त में मैं श्री रामबरन यादव जी के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने शोध-प्रबन्ध के टङ्कण में शुद्धता और स्पष्टता का अत्यधिक ध्यान रखते हुए अल्प समय में टङ्कणकार्य पूर्ण किया है ।

अनुसन्धानस्थान
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद ।

सीमा अग्रवाल

विशेष अनुरोध

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का टङ्कणकार्य तथा टङ्कित प्रति का संशोधनकार्य यथासम्भव सावधानीपूर्वक किया गया है तथापि टङ्कण-यन्त्र में कुछ वर्णों की कमी के कारण अशुद्धियों का रह जाना सम्भव है । एतदर्थ विद्वज्जन कृपया क्षमा प्रदान करते हुए उनको सुधारकर पढ़ने का कष्ट करें ।

सीमा अग्रवाल

भूमिका

संस्कृत वाङ्मय में काव्यों की रचना तीन प्रकार से होती है - गद्य, पद्य और गद्य-पद्यमिश्रित। गद्यकाव्य जैसे - कादम्बरी, वासवदत्ता, दशकुमारचरित आदि। पद्य-काव्य जैसे - नैषधीयचरित, रघुवंश, शिशुपालवध, किरातार्जुनीय आदि। मिश्रितकाव्य जैसे - नलचम्पू, गोपालचम्पू, उत्तररामचरितचम्पू आदि। चम्पूकाव्य वह श्रव्यकाव्य है, जो किसी भी प्रसिद्ध विषय को लेकर रस, अलङ्कार, गुण आदि से युक्त प्रबन्धात्मक रूप से गद्य तथा पद्य को मिश्रित करके रचा गया हो। विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य एक ऐसा ही विश्व-प्रसिद्ध चम्पू-काव्य है, जो कि गद्य-पद्य मिश्रित रचना की परम्परा में अपना एक अनूठा स्थान रखता है। इसके प्रणेता काञ्ची प्रदेश के अरशाणिपाल नामक ग्राम के निवासी श्री वैष्णव मतावलम्बी द्रविड़ ब्राह्मण "श्री वेङ्कटाध्वरि जी" हैं।

प्रस्तुत आलोच्यग्रन्थ विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य किसी विश्वप्रसिद्ध कथा पर आश्रित नहीं है अपितु यह वर्णन प्रधान चम्पू काव्य है। कवि ने अपने ग्रन्थ में देश, नगर, सूर्य, मन्दिर, नदी, पर्वत आदि का अति सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। आदि से अन्त तक कवि की वर्णन-निपुणता श्लाघनीय है। विश्वगुणादर्श चम्पू में कवि श्री वेङ्कटाध्वरिजी की सर्वतोमुखी प्रतिभा एवं अगाध पाण्डित्य के भव्य-दर्शन होते हैं। उनमें असाधारण कवित्व शक्ति का नवनवोन्मेष विद्यमान है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध नवाध्यायी है। प्रथम अध्याय में काव्य-स्वरूप, काव्य के भेद पर विचार किया गया है। अस्मद् आलोच्य चम्पू काव्य श्रव्य काव्य के अन्तर्गत मिश्रित काव्य में आता है। चम्पू काव्य के लक्षण, उत्पत्ति तथा विकास पर विचार

किया गया है । उसके पश्चात् वेङ्कटाध्वरि के जीवन वृत्त, कृतित्व तथा पाण्डित्य प्रतिभा पर प्रकाश डाला गया है । द्वितीय अध्याय में चम्पू काव्य विश्वगुणादर्शचम्पू का कथानक, पात्र-चयन व चित्रण तथा सूक्तियों का वर्णन किया गया है । कविश्री ने नीतिविषयक सुन्दर वाक्यों का समावेश अपने ग्रन्थ में किया है । यह इस काव्य की विशेषता है । तृतीय अध्याय में कवि की वर्णन चातुरी वर्णित है । प्रकृति के स्वाभाविक सौन्दर्य का सूक्ष्म निरीक्षण करने की कवि में अद्भुत शक्ति है ।

चतुर्थ एवं पञ्चम अध्याय में चम्पूकाव्य ग्रन्थ की भाषा-शैली तथा गुण-स्वरूप पर विचार किया गया है । विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य में प्रयुक्त भाषा व्याकरणशास्त्र की दृष्टि से पूर्णतया शुद्ध है, जो कवि के ज्ञान भण्डार की द्योतक है । कवि ने वैदर्भी रीति, गौडीरीति, और पाञ्चाली रीति इन सभी का सुन्दर समन्वय अपने श्लोकों में किया है । वैदर्भी रीति का प्रयोग कहीं-कहीं दृष्टिगत होता है तथापि पदों के लालित्य एवं माधुर्य को द्विगुणित करने में सहायक है । यद्यपि कवि ने वैदर्भी रीति का अत्यल्प प्रयोग किया है तथापि उनका प्रयास सराहनीय है । गौडी रीति का प्रयोग सम्पूर्ण आलोच्य ग्रन्थ में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है, जिससे भाषागत क्लिष्टता उत्पन्न हो गयी है किन्तु भाषा के स्वाभाविक प्रवाह में कोई कमी नहीं आने पायी है । गुणों का कवि ने यथोचित निरूपण किया है । ओजपूर्ण शैली होने के कारण ओजगुण का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है ।

शृङ्गार रस प्रस्तुत चम्पूकाव्य का अङ्गीरस है । यह इस काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है, जिसका निरूपण षष्ठ अध्याय में किया गया है । वीर रस, अद्भुत

रस, भयानक रस, वीभत्सरस, शान्तरस गौड़ रूप में प्रयुक्त हैं । कवि ने रसों का सुन्दर प्रतिपादन किया है । इस दृष्टि से यह काव्य रसमय काव्य है, जो सहृदयों के हृदय में रसानुभूति कराने में पूर्णरूपेण सक्षम है ।

कवि वेङ्कटाध्वरि जी की छन्द-योजना में पर्याप्त वैविध्य है । कवि की विशेष रुचि, शार्दूलविक्रीडित छन्द में रही है । चूँकि सर्वाधिक प्रयोग कवि की अद्भुत लेखनी द्वारा इसी छन्द का हुआ है । सप्तम अध्याय में छन्द रचना का वर्णन किया गया है ।

महाकवि ने अपनी रचना में अलङ्कारों का प्रयोग अत्यन्त सहजता के साथ किया है । चम्पू ग्रन्थ की शोभा को बढ़ाने के लिए कवि ने सभी प्रसिद्ध अलङ्कारों का सुन्दर समायोजन किया है । श्लेषालङ्कार का प्रयोग इस काव्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है । यदि हम उनकी लेखनशैली को श्लेष मिश्रित शैली कहें तो अनुपयुक्त न होगा । इसके अतिरिक्त अन्य अलङ्कारों का भी प्रयोग अष्टम अध्याय में किया गया है ।

दोष-निरूपण नामक नवम् अध्याय में कुछ काव्यगत दोषों का उल्लेख किया गया है । यद्यपि दोषों की मात्रा अत्यल्प है तथापि उनका वर्णन करना प्रस्तुत अध्याय में करना आवश्यक है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में विश्वगुणादर्शचम्पू के पक्षों जैसे रस, छन्द, अलङ्कार, शैली, गुण, दोषादि विषय पर आलोचनात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है जो विश्व-गुणादर्शचम्पू काव्यग्रन्थ के कलापक्ष व भावपक्ष दोनों को स्पष्ट करने में पूर्णरूपेण सक्षम है ।

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विषय		पृष्ठ संख्या
तृतीय :	काव्य में वस्तु-वर्णन		91-116
	क. प्राकृतिक सुषमा का चित्रण	92-106	
	ख. काव्य में देश-तीर्थ-पुरी-सेतु वर्णन	106-116	
चतुर्थ :	भाषा-शैली		117-151
	क. भाषा एवं शैली	117-151	
	अ. वैदर्भी रीति	124-130	
	ब. गौडी रीति	130-138	
	स. पाञ्चाली रीति	138-145	
	द. लाटी रीति	145-151	
पञ्चम :	गुण निरूपण		152-182
	गुण और अलङ्कार	153-163	
	माधुर्य गुण	163-166	
	ओजगुण	167-176	
	प्रसादगुण	176-182	
षष्ठ :	छन्दोविचार		183-229
	छन्दःशास्त्र की परम्परा	183-186	
	शार्दूलविक्रीडितम्	187-190	
	उपजाति	190-192	
	मन्दाक्रान्ता	192-195	

प्रथम अध्याय

विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य ग्रन्थ - एक सामान्य परिचय

विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य ग्रन्थ - एक सामान्य परिचय

क. काव्य-विचार

1. काव्य का महत्त्व

कविता से सौन्दर्याभिव्यक्ति होती है और मनुष्य का हृदय सदैव सौन्दर्य का उपासक रहा है। मनुष्य के हृदय को जितनी अधिक कविता स्पर्श करती है, उतनी अधिक साहित्य की अन्य धारायें (विधाएं) नहीं कर पाती हैं। किसी भी भाषा का प्रारम्भिक साहित्य हमें कविता के रूप में सरलता से प्राप्त होता है चाहे वह संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड़, बंगला, तेलगु अथवा अन्य कोई भी भाषा क्यों न हो।

कविता मनुष्य के चित्त का परिष्कार करती है। व्यक्ति के हृदय के भावो का समुचित विकास करती है। कविता कवि के हृदय से प्रस्फुटित होकर सहृदय पाठक के हृदय तक सीधी पहुँचती है। लोक में शास्त्रेतिहास की अपेक्षा काव्य का अधिक महत्त्व माना गया है। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने काव्य-प्रयोजन के निरूपण के अन्तर्गत काव्य के महत्त्व का प्रतिपादन अत्यन्त नियोजित ढंग से किया है क्योंकि-

"प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते।"

तात्पर्य यह है कि कोई मूर्ख व्यक्ति भी किसी लाभ के बिना अर्थात् प्रयोजन विशेष को लक्ष्य बनाये बिना किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है क्योंकि जब तक कर्ता को - 1. विषय, 2. प्रयोजन, 3. सम्बन्ध, 4. अधिकारी का ज्ञान नहीं होता है तब तक कर्त्ता की कार्य में प्रवृत्ति नहीं होती है। अत: अनुबन्ध-चतुष्टय

के ज्ञान के अभाव में कर्त्ता की कार्य में प्रवृत्ति नहीं होती है । इसीलिये मम्मटाचार्य जी ने विषय और प्रयोजन को स्पष्ट करने के लिए छः प्रयोजन बताये हैं, जो कि काव्य के महत्त्व को सम्यक्रूपेण प्रकाशित करते हैं - "यश, धन, व्यवहारज्ञान, अमङ्गलनाश, सद्यःपरनिवृत्ति तथा कान्तासम्मितोपदेश यह काव्य के छः प्रयोजन हैं ।"[1] आचार्य मम्मट ने सद्यःपरनिवृत्ति अर्थात् अलौकिक आनन्दानुभूति को ही सकलप्रयोजनमौलिभूतम् कहा है । मम्मट के कान्तासम्मितोपदेश तथा अलौकिक आनन्दानुभूति ये दो प्रयोजन काव्य के विशेष महत्त्व को परिलक्षित करते हैं ।

काव्य श्रवण से लोकोत्तर आनन्द की अनुभूति होती है । आनन्दानुभूति काल में सांसारिक कष्टों की विस्मृति हो जाती है । यह आनन्दानुभूति ही समस्त काव्य से अथवा आत्मचिन्तन सम्बन्धी दर्शन शास्त्रों के रहस्य को जानने से हो सकती है । दर्शन शास्त्रादि का रहस्य ज्ञान तो अति श्रमसाध्य एवं नीरस होने के कारण विरक्त विद्वज्जनों को ही प्राप्त हो सकता है । अतः काव्यानन्द का शर्करामिश्रित दुग्ध के सदृश सरलता से बोध हो सकता है । इसीलिए यह अलौकिक आनन्द ब्रह्मानन्द सहोदर की अनुभूति केवल काव्य से ही प्राप्त हो सकती है । इसके अतिरिक्त काव्य से सरस उपदेशों की प्राप्ति होती है । ये उपदेश तीन हैं - 1. शब्द प्रधान, 2. अर्थ प्रधान एवं 3. रस प्रधान ।

शब्द प्रधान अर्थात् प्रभुसम्मित से तात्पर्य वेदादि शास्त्रों के उपदेशों का ग्रहण किया जाता है । वेदादि के उपदेश को प्रभुसम्मित उपदेश माना जाता है,

---

1. काव्यं यशसेऽर्थकृते ------------------ ।
   सद्यः परनिवृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥ काव्यप्रकाश, 1/2.

क्योंकि यह वेद के उपदेश को अक्षरश: पालन करने की आज्ञा देते हैं । नीरस होने के कारण ये सुगमता से ग्राह्य करने योग्य नहीं होते हैं । पुराणादि के उपदेश सुहृत्सम्मित उपदेश होते हैं क्योंकि ये मित्रवत उपदेश देते हैं । इसमें अर्थ की प्रधानता होती है । काव्य का उपदेश तो उपर्युक्त प्रभुसम्मित तथा सुहृत्सम्मित उपदेश की अपेक्षा भिन्न एवं विलक्षण होता है क्योंकि उसमें रस की प्रधानता होती है । वह तो कान्ता के मधुर वचनों के समान सरस होता है । उसमें सौन्दर्य एवं हृदयग्राह्यता होती है । जिस प्रकार कोई प्रेयसी किसी कार्य में अपने प्रियतम को प्रवृत्त करना चाहती है तो उसके लिए अपनी सामर्थ्यानुसार रसमय वातावरण प्रस्तुत करके ही अपने प्रिय को प्रवृत्त करने के लिए प्रेरित करती है, उसी प्रकार काव्य के रसमय उपदेश सहृदय पाठक को सरसता के साथ जीवन के लिए उपयोगी शिक्षा देता है ।

उपर्युक्त दृष्टि से शास्त्र तथा इतिहास आदि की अपेक्षा काव्य का अधिक महत्त्व स्वीकार किया गया है । आचार्य विश्वनाथ का मत है कि - "काव्य के द्वारा ही अल्पमति वालों को भी विशेष परिश्रम के बिना ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के फल की प्राप्ति हो सकती है ।"[1] भामह ने भी काव्य के द्वारा चतुर्वर्ग की प्राप्ति बतायी है । अत: काव्य सभी के लिए परमोपयोगी सिद्ध होता है ।

---

1. चतुर्वर्गफलप्राप्ति: सुखादल्पधियामपि ।
   काव्यादेव ------------------ ॥ साहित्यदर्पण 1/2.

2. काव्य-स्वरूप

"कवनीयं काव्यं" अर्थात् जो कवनीय अथवा वर्णनीय है, वह काव्य है । भिन्न-भिन्न विद्वानों ने काव्य के स्वरूप पर पृथक्-पृथक् मत व्यक्त किये हैं । जिस आचार्य को काव्य का जो स्वरूप उपयुक्त लगा उसी को उसने काव्य की आत्मा कह डाला ।

काव्य के ऊपर विचार करते हुए "पण्डितराज जगन्नाथ" ने शब्द की शक्ति को महत्त्वपूर्ण माना है । उनके अनुसार - "वह शब्द जो रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करे, काव्य है ।"[1] पण्डितराज जगन्नाथ जी की काव्य की इस परिभाषा में जहाँ तक रमणीयता का सम्बन्ध है, उसके लिये कविराज माघ की अधोलिखित पंक्तियों को उद्धृत कर देना पर्याप्त है -

"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया: ।"

कतिपय आचार्यों ने अलङ्कार को काव्य का अनिवार्य अङ्ग माना है । भामह तथा दण्डी अलङ्कारों को काव्य का प्रधान गुण मानते हैं । इनके बिना काव्य नहीं माना जा सकता । भामह ने कहा है कि - "सुन्दर होने पर भी आभरणहीन कामिनीमुख सुशोभित नहीं होता ।"[2]

---

1. रमणीयार्थकप्रतिपादक: शब्द: काव्यम्‌ ।

   - रस गङ्गाधर - द्वितीय आनन/पृष्ठ संख्या 194.

2. न कान्तमपि निर्भूषं बिभाति बनितामुखम् ।

   - काव्यालङ्कार, 1/13.

आचार्य दण्डी ने इसी प्रकार से - "अलङ्कारों को काव्य का शोभाधायक धर्म माना है ।"[1] वामन ने भी अलङ्कारों के इस गुण को स्वीकार किया है ।[2]

जयदेव ने अपने काव्यग्रन्थ, "चन्द्रालोक" में काव्यप्रकाशकार मम्मट को लक्ष्य कर 'अनलङ्कृती' अर्थात् अलङ्कार राहित्य को क्षम्योचित न मानते हुए कहा है कि - "जो अनलङ्कृत शब्दार्थ को काव्य मानता है वह अग्नि को उष्णताहीन क्यों नहीं मानता है ।"[3]

अतः भामह, उद्भट, रुद्रट, वामन, दण्डी आदि कवियों ने अलङ्कारों को काव्य की आत्मा या प्रमुख तत्त्व स्वीकार किया है । उनके कथनानुसार - अलङ्कारविहीन काव्य निर्जीव होता है ।

कुछ आचार्य रीति को काव्य की आत्मा मानते हैं । रीतियाँ तीन होती हैं - वैदर्भी, गौडी और पाञ्चाली । ये रीतियाँ ध्वनि से सम्बन्ध रखतीं हैं । हमारे कानों पर विभिन्न ध्वनियों का जो प्रभाव पड़ता है, रीति उसी प्रभाव से सम्बन्धित है । इस दृष्टि से आचार्य वामन ने अपने ग्रन्थ काव्यालङ्कार सूत्र में काव्य का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है - 'काव्य की आत्मा रीति है ।'[4]

---

1. काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलङ्कारान् प्रचक्षते ॥ - काव्यादर्श, 2/1.
2. काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः । तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः ।
   - काव्यालङ्कार, 3/1/1/2.
3. अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।
   असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती ॥ - चन्द्रालोक, 1/8.
4. "विशिष्टपदरचना रीतिः"।
   रीतिरात्मा काव्यस्य - काव्यालङ्कार सूत्र, 1/2/7.

अर्थात् वर्णन शैली का ही काव्य में प्राधान्य होता है किन्तु रीति या संगीत तत्त्व काव्य में केवल सहायक के रूप में कार्य करता है और फिर वह तो केवल बाह्य प्रभाव मात्र है ।

आचार्य कुन्तक ने अपने काव्यग्रन्थ वक्रोक्तिजीवितम् में[1] वक्रोक्ति को काव्य का जीवन माना है । वक्रोक्ति को समझाते हुए कहा है कि "चमत्कार पैदा करने वाली वाक्यभङ्गिमा वक्रोक्ति है ।"[1]

गुणयुक्त काव्य की प्रशंसा भोज कवि 'सरस्वतीकण्ठाभरण' काव्य-ग्रन्थ में करते हुए कहते हैं कि - "निर्गुण काव्य अलङ्कृत भी श्रवणीय नहीं है ।"[2]

आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार - "काव्य का आत्मा ध्वनि है ।"[3]

इस प्रकार आनन्दवर्धनाचार्य, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ, वामनाचार्य, रुद्रट तथा कुन्तक आदि विद्वानों ने काव्य के ऊपर अति सुन्दर विचार व्यक्त किये हैं किन्तु कविता अथवा काव्य केवल रस, गुण, अलङ्कार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति अथवा शब्द न होकर इन सबका मिश्रित स्वरूप (समवाय) है । इस दृष्टि से आचार्य मम्मट का काव्य-लक्षण, काव्य सामान्य और काव्य विशेष के प्राचीन

---

1. वक्रोक्तिः काव्यजीवितम् । "वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते ।"
   - वक्रोक्तिजीवितम् 1/11.

2. अदोषं गुणवत् काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम् ।
   रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ॥ सरस्वतीकण्ठाभरण, 1/2

3. काव्यस्यात्मा ध्वनिः । - ध्वन्यालोक 1/2.

लक्षणों के पर्याप्त मनन-चिन्तन का परिणाम है । आचार्य मम्मट ने "काव्य-प्रकाश" में काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है - "वे शब्द और अर्थ काव्य कहे जाते हैं, जो दोषरहित हों, गुण-युक्त हों और (यदि रस के अभिव्यंजक हों तो) अलङ्कृत हों या न हों ।"[1]

काव्य के स्वरूप के स्पष्ट हो जाने पर अब हम काव्य के भेद पर विचार करेंगे ।

3. काव्य-भेद

संस्कृत काव्य साहित्य के प्रमुखतया दो भेद होते हैं -

क. दृश्य काव्य,
ख. श्रव्य काव्य

क. दृश्य-काव्य

जो नटों द्वारा अभिनीत होने के कारण देखा भी जा सके ।[2] यह संलाप तथा क्रियाप्रधान होता है । इसे रूपक कहा जाता है । रूपकों में प्रधान नाटक होता है ।[3]

---

1. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि ॥ - काव्यप्रकाश, 1/3.
2. दृश्यं तत्राभिनेयम् । - साहित्यदर्पण 6/275.
3. अवस्थानुकृति, नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते । रूपकं तत्समारोपात् ----- ।"
- दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका-6.

ख. <u>श्रव्य-काव्य</u>

जो केवल पढ़ा या सुना जा सके उसे श्रव्य-काव्य कहते हैं ।[1] श्रव्य-काव्य के दो भेद होते हैं - 1. गद्य काव्य एवं 2. पद्य काव्य ।

श्रव्य-काव्य का ही एक और तीसरा भेद गद्य-पद्य मिश्रित चम्पूकाव्य किया गया है ।[2]

श्रव्य-काव्य में कवि द्वारा निर्मित शब्दचित्रों के माध्यम से पाठक अथवा श्रोता रसास्वादन करने में समर्थ होता है । पद्यकाव्य के पुनः दो उपभेद होते हैं - 1. प्रबन्ध, एवं 2. मुक्तक । प्रबन्ध के दो उपभेद होते हैं - क. महाकाव्य एवं ख. खण्डकाव्य ।

गद्य-काव्य के भी दो मुख्य उपभेद होते हैं - 1. कथा एवं 2. आख्यायिका।

चम्पू-काव्य भी दो प्रकार का होता है - 1. विरुद[3] एवं 2. करंभक ।[4]

---

1. श्रव्यं श्रोतव्यमात्रम् तत् गद्यपद्यमयं द्विधा । - साहित्यदर्पण, 6/577.

2. गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते । - साहित्यदर्पण, 6/589.

3. गद्यपद्यमयीराजस्तुतिर्विरुदमुच्यते । - साहित्यदर्पण, 6/590.

4. करम्भकन्तु भाषाभिर्विविधाभिर्विनिर्मितम्। - साहित्यदर्पण, 6/591.

अस्मद् आलोच्य चम्पू काव्य श्रव्य काव्य के तीन उपभेदों में से एक है । अब हम चम्पू काव्य क्या है ? इसका उद्भव तथा विकास कब हुआ ? प्रसिद्ध चम्पू काव्य ग्रन्थ तथा तत्सम्बन्धित कवियों पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे ।

4. <u>चम्पू काव्य</u>

संस्कृत साहित्य में गद्यकाव्य तथा पद्यकाव्य से पृथक् एक चम्पू नामक काव्य भी है । चम्पू साहित्य का अपना विशद भण्डार है । चम्पू साहित्य एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है, जो न पद्यकाव्य के द्वारा संभव है और न गद्यकाव्य के द्वारा जन्य है । इस साहित्य की चमत्कारपूर्ण शब्दावलि, अलङ्कारों का सुविन्यास, साहित्यिक सौन्दर्य, ललित पदयोजना तथा रसवैशिष्ट्य किसी भी दृष्टि से अन्य साहित्य से कम नहीं है ।

क. <u>चम्पू काव्य के लक्षण</u>

'चम्पू' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में कुछ भी पता नहीं मिलता किन्तु प्राचीन साहित्य में कुछ स्थानों पर गद्य-पद्य का एक साथ प्रयोग पाया जाता है, जिसे चम्पू का पूर्व-रूप कहा जा सकता है । 'महाभारत' में कहीं-कहीं पर गद्य-पद्यात्मक स्थल दृष्टिगत होते हैं । बौद्धों की 'जातकमाला' तथा हरिषेण की प्रशस्ति में गद्य तथा पद्य का मिश्रित प्रयोग किया गया है ।

साहित्यदर्पणकार ने चम्पू का लक्षण इस प्रकार किया है - "जिन काव्यों में गद्य पद्य का संयुक्त प्रयोग किया जाता है, उन्हें चम्पू काव्य कहते हैं ।"[1]

---

1. "गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते ।" - साहित्यदर्पण, 6/337.

हेमचन्द्र ने इन पंक्तियों में इतना और जोड़ दिया है - "गद्यपद्यमयीसाङ्का-सोच्छ्वासा चम्पूः" आशय यह है कि गद्यपद्ययुक्त वह रचना चम्पू कहलाती है जो साङ्क हो और सोच्छ्वास हो । साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ का लक्षण तो एक सामान्य लक्षण है क्योंकि सभी दृश्य काव्य प्रायः गद्यपद्यमय ही होते हैं परन्तु वे चम्पू नहीं कहे जा सकते हैं । हेमचन्द्रजी ने अपने काव्यग्रन्थ में जो चम्पू का लक्षण किया है वह तो प्रतीत होता है । अन्य चम्पू न तो साङ्क है न केवल उच्छ्वासों में विभक्त ही है । केवल नलचम्पू जो देखकर ही किया गया है । अन्य चम्पू स्तवक, सर्ग, उल्लास, काण्ड, विलास, तरंग आदि कई रूपों में विभक्त पाये जाते हैं ।

दण्डी (600 ई0) ने अपने "काव्यादर्श" में 'चम्पूकाव्य' का लक्षण दिया है- "गद्य तथा पद्य का मिश्रण चम्पू है ।"[1] इस परिभाषा से ज्ञात होता है कि चम्पू काव्य की सत्ता उस समय में अवश्यमेव थी ।

वासवदत्ता, हर्षचरित, कादम्बरी आदि गद्य-काव्यों में कहीं-कहीं पद्य पाये जाते हैं किन्तु वे मुख्यतया गद्य में ही हैं । नीतिकथाओं में भी यत्र-तत्र गद्य पद्य का संयुक्त रूप दिखायी पड़ता है किन्तु उसमें पद्यों का प्रयोग विशिष्ट प्रयोजन अर्थात् कथा से प्राप्त होने वाली शिक्षा या किसी कथन की पुष्टि हेतु प्रमाण रूप में किया जाता है । चम्पू काव्यों में गद्य और पद्य का समान रूप से प्रयोग किया जाता है।

---

1. गद्यपद्यमयी काचित् चम्पूरित्यदिविद्यते । काव्यादर्श, 1/31.

इस काव्य के पद्य किसी विशिष्ट प्रयोजन हेतु प्रयुक्त नहीं होते, प्रत्युत वे चम्पू की कथा से उसी प्रकार अंगीभूत होते हैं जैसे उसके गद्य भाग ।

पद्य काव्य में छन्दों के माध्यम से मानव हृदय के रागात्मक भावों को अत्यंत सुचारुता से प्रस्तुत किया जाता है । यह लय सम्पत्ति से समृद्ध होता है, तो गद्य काव्य अर्थगौरव तथा वाह्य वस्तुओं के वर्णन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता है । वस्तुत: इन दोनों का मिश्रण मधु-द्राक्षा के संयोग के सदृश मधुमय होता है ।

'रामायणचम्पू' के रचयिता भोज कहते हैं कि-"चम्पू में गद्य और पद्य का वही पारस्परिक सम्बन्ध हैं जो संगीत में गीत और वाद्य का अर्थात् गद्य समन्वित पद्यसूक्ति को वाद्य से युक्त गायन में समान अधिक हृदयाह्लादक मानते हैं ।[1]

जीवन्धर चम्पू के रचयिता श्री हरिश्चन्द्र चम्पू को - "बाल्य तथा तारुण्य से युक्त किशोरी कन्या के सदृश अधिक रसोत्पादक स्वीकार करते हैं ।"[2]

संस्कृत की चम्पू-शैली की रमणीयता एवं चम्पू काव्य ग्रन्थों की लोकप्रियता को स्वीकार करते हुए नलचम्पू के रचयिता श्री त्रिविक्रमभट्ट जी अपने चम्पूकाव्य में लिखते हैं - "धीरोदात्त (अविकत्थन् क्षमावान् इत्यादि गुण वाला) नायक से

---

1. गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्ति:
   हृद्यापि वाद्यकलया कलितेव गीति: । " - रामायणचम्पू 1/3.

2. गद्यावली पद्यपरम्परा च प्रत्येकमप्यावहति प्रमोदम् ।
   हर्षप्रकर्षं तनुते मिलित्वा प्राग् बाल्यतारुण्यवतीव कन्या ।। जीवन्धरचम्पू 1/9.

युक्त और प्रसाद ओज माधुर्यादि गुणों से एवं गद्य-पद्यों से युक्त चम्पू [सहृदय विद्वानों को आश्चर्य, विस्मय में डालकर आश्चर्य चकित = विस्मित करके] प्रसन्न करने वाला गद्य-पद्यमय काव्य और उदात्त = उज्ज्वल [चमचमाती] नायक उत्तम मध्यमणि वाली [लाकिट, पेण्डुलम] तथा सूत्र [धागे] में पिरोई हुई गोलमटोल मोतियों के हार की लड़ी को कौन [बुद्धिमान] हृदय में धारण नहीं करता । अर्थात् सभी लोग मोतियों की लड़ी एवं ऐसी चम्पू रचना को धारण करते हैं ।"[1]

अत: हमारे आलोच्य चम्पू काव्य ग्रन्थ के प्रणेता श्री वेङ्कटाध्वरि जी चम्पू को मधु-द्राक्षा के संयोग के तुल्य मधुमय मानते हुए कहते हैं कि - "यद्यपि मनोहर श्लोकरूपात्मक काव्य है, किन्तु गद्यरहित वे रसिकों के आस्वाद्य नहीं और गद्य-काव्य पद्यरहित होकर मर्मज्ञों के आस्वादन योग्य नहीं हो पाते हैं क्योंकि उन दोनों का स्वाभाविक समन्वय ही आनन्द की अतिशय उत्पत्ति कर सकता है । अत: मधु और द्राक्षा का संयोग किसके मन को रुचिकर नहीं लगता अर्थात् सभी को रुचिकर लगता है ।"[2]

---

1. उदात्तनायकोपेता गुणवद्वृत्तमुक्तका ।
   चम्पूश्च हारयष्टिश्च केन न क्रियते हृदि ॥ नलचम्पू 1/25.

2. पद्यं यद्यपि विद्यते बहु सतां हृद्यं विगद्यं न तद्
   गद्यं च प्रतिपद्यते न विजहत्पद्यं बुधास्वाद्यताम् ।
   आदत्ते हि तयो: प्रयोग उभयोरामोदभूमोदयं
   सङ्ग: कस्य हि न स्वदेत मनसे माध्वीक-मृद्वीकयो: ॥
   - विश्वगुणादर्शचम्पू , श्लोक संख्या 4.

अत: हमारे विचार से "चम्पूकाव्य वह श्रव्य-काव्य है जो किसी प्रसिद्ध विषय को लेकर रस, अलङ्कार आदि से युक्त प्रबन्धात्मक रूप से गद्य पद्य को मिश्रित करके रचा गया हो ।" परिणामत: कहा जा सकता है कि चम्पूकाव्य साहित्य का अपना वैशिष्ट्य है और इसलिए इसकी रचना की ओर कविजनों का विशेष आग्रह होना स्वाभाविक है ।

ख. चम्पूकाव्य की उत्पत्ति तथा विकास

चम्पू शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता है किन्तु प्राचीन साहित्य में कुछ स्थानों पर गद्य-पद्य का एक साथ प्रयोग मिलता है, जिसको हम चम्पू काव्य का पूर्व-रूप कह सकते हैं । 'महाभारत' में कहीं-कहीं गद्य-पद्य मिश्रित स्थल दिखलायी पड़ते हैं । कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध तैत्तिरीय, मैत्रायणी तथा काठक संहिताओं में गद्य-पद्यमय चम्पू शैली का दर्शन होता है । अथर्वसंहिता में भी यत्र-तत्र यह शैली विद्यमान है । अत: मिश्रित शैली उतनी ही प्राचीन है जितनी कि गद्य अथवा पद्य शैली । वैदिक आख्यानों में भी इसका प्रयोग मिलता है । इस दृष्टि से ऐतरेय ब्राह्मण का हरिश्चन्द्रोपाख्यान, 33वाँ अध्याय द्रष्टव्य है । हरिषेण की प्रशस्ति में गद्य तथा पद्य का प्रयोग एक साथ किया गया है । ऐतरेय आरण्यक तथा प्रश्न, कठ, मुण्डक आदि उपनिषदों में प्राचीन परम्परा के अनुरूप इसका प्रयोग मिलता है ।

श्रीमद्भागवद्, पंचम स्कन्ध तथा विष्णुपुराण आदि में भी मिश्रित शैली के दर्शन होते हैं । बौद्धों की "जातकमाला" भी इसी शैली में उपनिबद्ध है । 700ई0-

770 ई0 तक हरिभद्रसूरि की 'समराइच्चकहा' नामक गद्य पद्यमय प्राकृत रचना इसी शैली में उपन्यस्त है किन्तु ये सभी रचनाएँ चम्पू काव्य की अग्रणी रचनाएँ नहीं कही जा सकती है क्योंकि सुन्दर कल्पना, चमत्कारिक शब्दावली, समासयुक्त शैली, अलङ्कारों का सुविन्यास, रसपेशलता आदि चम्पूकाव्य की विशेषतायें हैं, किन्तु इन ग्रन्थों में इन वैशिष्ट्यों का दर्शन नहीं होता है । अलङ्कारिक शैली का दर्शन विक्रम की द्वितीय शताब्दी से दिखायी देता है । 150 ई0 का क्षत्रपरुद्रदामन का गिरनार का शिलालेख तथा समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति (चतुर्थ शताब्दी) अलङ्कारिक शैली में उपनिबद्ध होने के कारण चम्पू काव्य के अग्रणी काव्य माने जा सकते हैं ।

दण्डी (600 ई0) ने अपने काव्यादर्श में चम्पू का लक्षण प्रस्तुत किया है । अतः यह सिद्ध होता है कि दण्डी के पूर्व ही संस्कृत में चम्पू-काव्य की रचना हो चुकी थी । आज तक उपलब्ध संस्कृत साहित्य में चम्पू काव्य के दर्शन दशमी शताब्दी से पूर्व नहीं होते हैं ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 10वीं शताब्दी से पूर्व तक चम्पू काव्य अपने साहित्यिक रूप में साहित्य के धरातल पर अवतीर्ण नहीं हो सका था अपितु केवल शिलालेखों की प्रशस्तियों तक ही सीमित था । चम्पूकाव्य 10वीं शती के आदि से लेकर 18वीं शती तक साहित्याकाश में देदीप्यमान नक्षत्र के समान समादृत है ।

संस्कृत के प्रमुख चम्पूकाव्य रचयिताओं की कालक्रमानुसार नामावली इस प्रकार है -

"त्रिविक्रमश्च सोमश्च हरिश्चन्द्रस्तथैव च ।
भोजश्च सोड्ढलश्चैव राज्ञी तिरुमलाह्वया ॥

नारायणस्तथा चासन् वेङ्कटाध्वरिसूरया ।
शङ्करोऽपि च प्रख्याता: चम्पू काव्य विधायका: ॥

चम्पू काव्य के रूप में अद्यावधि जितने भी ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, उनमें काल की दृष्टि से नलचम्पू ही सर्वप्रथम चम्पू साहित्य का प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है । इसके रचयिता श्री त्रिविक्रमभट्टजी चम्पूकार हैं । इसकी रचना 915 ई0 के आसपास हुई है । इसके अतिरिक्त इन्होंने 'मदालसाचम्पू" भी लिखा है । मदालसाचम्पू में मदालसा तथा कुवलयाश्व की प्रणयकथा का वर्णन है, जो मारकण्डेयपुराण की एक कथा पर आधारित है । यद्यपि इसमें उस उत्कृष्ट काव्य-सौष्ठव का दर्शन नहीं होता है जैसा कि कवि ने नलचम्पू में किया है । नलचम्पू कथानक की प्रणयन चातुरी सहृदय पाठक को प्रिय लगती है । यह चम्पू उच्छ्वासों में विभक्त न होकर उल्लासों में विभक्त है । साङ्क में भी विभक्त नहीं है ।

सोमदेवसूरि 10वीं शताब्दी के राष्ट्रकूट राजा कृष्ण-राजदेव के समकालीन थे । उन्होंने यशस्तिलकचम्पू की रचना 985 ई0 में की । सोमदेवसूरि प्रसिद्ध जैन-कवि थे ।

प्रख्यात जैनचम्पू जीवन्धरचम्पू हरिश्चन्द्र की रचना है । जीवन्धरचम्पू का कथानक गुणभद्र के 'उत्तरपुराण' पर आश्रित है ।

'रामायणचम्पू' [चम्पू रामायण] धारा के प्रसिद्ध राजा 'भोज' की रचना है । इसमें रामायण की कथा चम्पू शैली में वर्णित की गयी है ।

'सोड्ढल' कृत उदयसुन्दरीकथाचम्पू में बाण के हर्षचरित का स्पष्ट अनुकरण दृष्टिगोचर होता है । इसमें भाषागत लालित्य एवं माधुर्य दर्शनीय है ।

'डॉ0 लक्ष्मण स्वरूप' को सन् 1924 ई0 में सरस्वतीमहल तंजौर पुस्तकालय में रानी 'तिरुमलाम्बा' रचित 'वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू' की पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई ।

'नारायण' ने सत्रहवीं शताब्दी में 'स्वाहासुधाकरचम्पू' की रचना की । यह रचना 'आशु कविता' का उदाहरण है ।

वेङ्कटाध्वरि ने 16वीं-17वीं शताब्दी में 'विश्वगुणादर्शचम्पू' की रचना की। चम्पूकाव्य साहित्य में यह चम्पूग्रन्थ अपना एक उत्कृष्ट स्थान रखता है । इसमें दो गन्धर्वों की भ्रमणकथा वर्णित है, जो अपने अपने विमानों पर आरूढ होकर भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के गुण-दोषों का विवेचन करते हैं । सम्पूर्ण काव्य में श्लेषालङ्कार की छटा दर्शनीय है । वेङ्कटाध्वरि का ही उत्तररामचरित चम्पू और श्रीनिवास चम्पू भी प्राप्त होता है ।

शङ्कर कवि ने शङ्करचेतोविलासचम्पू' में वारेनहेस्टिंग्स के समय महाराज चेत सिंह की प्रशंसा वर्णित की है ।

उपर्युक्त चम्पुओं के अतिरिक्त कुछ अन्य चम्पू भी प्राप्त होते हैं जैसे - अभिनव कालिदास का भागवतचम्पू, अनन्तभट्ट का भारतचम्पू [चम्पूभारतम्], अमोघ-

राघव का वसन्तोत्सवचम्पू, कविकर्णपुर का आनन्दवृन्दावनचम्पू, अनन्तभट्ट का भारतचम्पू, जीवराज का गोपालचम्पू, रामानुजाचार्य का रामानुजचम्पू, शेषकृष्ण का पारिजातहरणचम्पू, समरपुंगव का तीर्थयात्राप्रबन्धचम्पू, सूर्यदैवज्ञ का नृसिंहचम्पू, श्रीकृष्णकवि का मन्दारमरन्दचम्पू, चिरंजीवभट्टाचार्य का माधवचम्पू, पद्मनाभमिश्र का वीरभद्रचम्पू, नारायण का कोटिविरहचम्पू, श्रीमित्रमिश्र का आनन्दकन्दचम्पू, केशवभट्ट का प्रह्लादचम्पू, विरूपाक्षकवि का चोलचम्पू, श्रीराम वर्मा का कार्तवीर्यप्रबन्धचम्पू, वाणेश्वर विद्यालंकार का चित्रचम्पू, श्रीनिवास कवि का आनन्दविजयचम्पू, अच्युतशर्मा का भागीरथीचम्पू, कृष्णकवि का रघुनाथविजयचम्पू, तंजौरनरेश महाराजा शरफोजी ‡द्वितीय‡ का कुमारसंभवचम्पू, श्रीकण्ठशास्त्री का जगद्गुरुविजयचम्पू, दत्तात्रेय कवि का गङ्गागुणादर्शचम्पू, त्रिविक्रम का कुवलयाश्वविलासचम्पू ।

सरस्वती महल तंजौर तथा मद्रास विश्वविद्यालय की हस्तलिखित ग्रन्थसूचियों में बहुत से अप्रकाशित चम्पूकाव्यों के नाम मिलते हैं । अतः त्रिविक्रमभट्ट से लेकर अद्यावधि चम्पूकाव्यों की यह परिपाटी चलती आ रही है । यह चम्पूकाव्य कुछ ऐतिहासिक दृष्टि से लिखे गये हैं तथा कुछ धार्मिक दृष्टि से लिखे गये हैं । कुछ केवल राजाओं के प्रशस्तिपरक हैं, कुछ पौराणिक आख्यानों के आधार पर रचित हैं । तो कुछ केवल काल्पनिक कथाओं पर आधृत हैं, कुछ में तीर्थयात्रावर्णन के प्रसङ्ग से भौगोलिक दृष्टिकोण अधिक अपनाया गया है जैसे विश्वगुणादर्शचम्पू । इस प्रकार चम्पूकाव्यों से संस्कृत-वाङ्मय का अक्षयकोश समृद्ध है ।

दक्षिण भारत के महाकवियों ने इस गद्य पद्य मिश्रित विधा को अपनी रस से परिपूर्ण रचनाओं के द्वारा अतिपरिष्कृत किया है । "अब तक ज्ञात चम्पू ग्रन्थों की सङ्ख्या लगभग 250 के आस-पास है ।"[1] जिन्होंने चम्पू साहित्य के भण्डार में श्रीवृद्धि की है ।

ग. वेङ्कटाध्वरि

सम्प्रति मैं अस्मदालोच्य विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य ग्रन्थ के रचयिता कवि शिरोमणि श्री वेङ्कटाध्वरि के जीवन-वृत्त तथा रचनाओं का क्रमशः वर्णन प्रस्तुत कर रही हूँ ।

जीवन-वृत्त

वेङ्कटाध्वरिजी काञ्ची प्रदेश के समीपवर्ती 'अरशाणिपाल' नामक ग्राम [अग्रहार॥ नाम से प्रसिद्ध] के निवासी तथा श्रीवैष्णव मत के अनुयायी द्रविड ब्राह्मण थे । इनका नाम केवल वेङ्कट था परन्तु यज्ञ, कर्म ॥सम्पादन॥ करने के कारण ये यज्वा अथवा अध्वरी कहलाते थे । इसलिए इन्होंने अपने को 'वेङ्कटार्यज्वा' लिखा है । इनका वंश पाण्डित्य के लिए विख्यात था । श्रीवेङ्कटाध्वरिजी के पिता

---

1. इन चम्पू काव्य ग्रन्थों के परिचय हेतु द्रष्टव्य, डॉ० छबिनाथ त्रिपाठी का पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ, "चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन", चौखम्भा, काशी, 1965.

का नाम रघुनाथ दीक्षित तथा ये कर्नाटक देश के राजा 'कृष्णराय' के गुरु ताताचार्य के भाजे (भागिनेय) अप्पयदीक्षित के पौत्र थे किन्तु इनके पिता अप्पय गुरु प्रख्यात अप्पयदीक्षित से भिन्न व्यक्ति हैं। विश्वगुणादर्श चम्पू के द्वितीय श्लोक में इनके जीवन वृत्त का दिग्दर्शन होता है -

काञ्चीमण्डलमण्डनस्य मखिन: कर्नाटभूभृद्गुरो-
स्ताताचार्यस्य दिगन्तकान्तयशसो यं भागिनेयं विदु: ।
अस्तोकाध्वरकर्तुरप्पयगुरोरस्यैष विद्वन्मणे:
पुत्र. श्रीरघुनाथदीक्षितकवि: पूर्णो गुणैरेधते ॥

वेङ्कटाध्वरि का गोत्र अत्रि था। इनके पिता उस अग्रहार (अरशाणिपाल) के स्वयं स्वामी थे। इनके आराध्य लक्ष्मीनारायण थे।

अरशाणिपाल नामक ग्राम के निवासी होने के कारण इन्होंने वहाँ की प्राकृतिक छटा का सजीव और स्वाभाविक चित्रण अपने प्रसिद्ध चम्पूकाव्य विश्वगुणादर्श चम्पू में किया है। "कानों को आनन्दित करने वाले स्फुट भ्रमरों के गुजार से युक्त वाहा नदी के किनारे के वृक्षों के मकरन्द से परिपूर्ण जल की कल्याणमयी नालियों से घिरा आत्रेय मुनि के वंश वाले विद्वानों के यज्ञ में पुरोडाशादि के ग्रन्थ के साहचर्य से वरदान प्राप्त, पृथ्वी पर अरशाणिपाल नामक ग्राम जगमगा रहा है।"[1]

---

1. कर्णानन्दकरस्फुरन्मधुकरव्याहारवाहापगा-
रोध:शाखिमरन्दतुन्दिलपय: कल्याणकुल्यावृत: ।
आत्रेयान्वयविद्वदध्वरहविर्गन्धानुबन्धार्पित-
क्षेमो भात्यरशाणिपाल इति हि ग्रामोऽभिरामो भुवि. ॥
- विश्वगुणादर्शचम्पू, श्लोक संख्या. 356.

रघुनाथ दीक्षित के पुत्र श्री वेङ्कटाध्वरिजी न्याय-वेदान्त-मीमांसा-शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे ।

समय-निर्धारण

वेङ्कटाध्वरिजी ने चन्नपट्टण ‡मद्रास‡ में आने वाले अंग्रेजों को 'हूण' शब्द से अभिहित किया है । चन्नपट्टण के वर्णन के अवसर पर इन्होंने वहाँ पर रहने वाले हूणों के दुराचारों का यथार्थ वर्णन किया है । इस सम्बन्ध में अधोलिखित श्लोक दर्शनीय है :-

हूणा: करुणाहीनास्तृणवद् ब्राह्मणगणं न गणयन्ति ।
तेषां दोषा: पारे वाचां ये नाचरन्ति शौचमपि ॥

- विश्वगुणादर्शचम्पू 262.

अर्थात् निर्दय हूण ब्राह्मण समुदाय को तिनके के समान नहीं मानते हैं, जो हूण शौचादि भी नहीं करते उन लोगों के सारे दोष वाणी से परे हैं ।

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने अंग्रेजों का उल्लेख किया है, जिन्हें कवि ने "हूण" नाम से अभिहित किया है । मद्रास शहर में 17वीं शताब्दी के मध्य में आकर ये निवास करने लगे थे । अत: इनके समय का निर्धारण सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है ।

रचनाएँ

इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं :-

1. विश्वगुणादर्शचम्पू
2. उत्तररामचरितचम्पू,
3. वरदाभ्युदय अथवा हस्तगिरिचम्पू,
4. नीलकण्ठचम्पू,
5. लक्ष्मीसहस्त्र एवम्
6. यादवराघवीयम् ।

उपर्युक्त रचनाओं में प्रथम से चतुर्थ तक सभी 1650 शताब्दी में रचित हैं तथा पञ्चम 1667 शताब्दी में एवम् षष्ठ 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रचित हैं ।

"श्रीनिवासविलासचम्पू" नामक एक और कृति प्राप्त होती है, किन्तु यह इनकी संदिग्ध कृति मानी जाती है । लक्ष्मीसहस्त्र एवम् विश्वगुणादर्शचम्पू ये दोनों ही काव्य इनकी काव्य-प्रतिभा के परिचायक हैं । कहा जाता है कि लक्ष्मीसहस्त्र नामक रचना कवि ने एक ही रात में सम्पूर्ण लिखी है । इसमें कवि ने भगवती लक्ष्मी की स्तुति पूरे एक हजार पद्यों में की है ।[1] "उत्तरचम्पू" में कवि ने रामायण को उपजीव्य बनाकर रचना की है । इसमें रावण का चरित्र विस्तृत रूप से वर्णित है । "वरदाभ्युदयचम्पू" में कवि ने मुख्य रूप से काञ्ची स्थित देवराज के धार्मिक गौरव तथा महत्त्व का वर्णन किया है । इसमें लक्ष्मी और नारायण के शुभ विवाह का वर्णन किया गया है ।[2] "यादवराघवीयम्" (16 शताब्दी का पूर्वार्द्ध) नामक लघु काव्य में विलोम पद्धति से राम और कृष्ण दोनों के चरित्र का एक साथ वर्णन किया है इसमें तीन सौ श्लोक हैं । यह श्लेष काव्य न होकर विलोम काव्य है, जिसमें साधारण क्रम से पढ़ने पर राम का चरित्र निकलता है तथा उल्टे क्रम में

---

1. गोपाल नारायण एण्ड कम्पनी, बम्बई से प्रकाशित ।
2. संस्कृत सीरीज मैसूर से प्रकाशित, 1981.

पढ़ने पर श्रीकृष्ण का चरित्र लक्षित होता है ।

कथानक

विश्वगुणादर्शचम्पू विषय वर्णन तथा कल्पना में नूतनता की दृष्टि से अप्रतिम रचना है जिसने कवि को चम्पू-साहित्य की श्रीवृद्धि करने हेतु अमर कर दिया है ।

प्रस्तुत चम्पू काव्य ग्रन्थ में कवि ने विश्वदर्शन की इच्छा से समान वेष-भूषा धारण किये हुए कृशानु और विश्वावसु नामक दो गन्धर्वों की कल्पना की है । इनमें से कृशानु प्रत्येक वस्तु, स्थान, व्यक्ति आदि में दोष ही देखता है अर्थात् उसने प्रस्तुत काव्य ग्रन्थ में दोषद्रष्टा का स्थान ग्रहण किया है । इसके विपरीत विश्वावसु गन्धर्व कुमार प्रत्येक स्थान, व्यक्ति, वस्तु आदि में गुण ही गुण देखता है अर्थात् उसने गुणद्रष्टा का स्थान ग्रहण किया है । इस सन्दर्भ में श्लोकद्वय प्रस्तुत हैं :-

विश्वावलोकस्पृहया कदाचिद्विमानमारुह्य समानवेषम् ।
कृशानु-विश्वावसुनामधेयं गन्धर्वयुग्मं गगने चचार ॥ 5 ॥

कृशानुरकृशासूयः पुरोभागिपदम् गतः ।
विश्वावसुरभूद्विश्वगुणग्रहणकौतुकी ॥ 6 ॥

विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य ग्रन्थ का प्रारम्भ कवि ने गुणग्राही विश्वावसु के माध्यम से सूर्यवर्णन से किया है तथा समापन कवि वाक्य के द्वारा किया है । किसी तीर्थ, स्थान, देश अथवा नगर का वर्णन सर्वप्रथम विश्वावसु करता है ।

तदनन्तर कृशानु गन्धर्वकुमार उस पर दोषारोपण करता है क्योंकि उसे हरेक स्थान, देश, नगर अथवा तीर्थ में दोष ही दोष दिखायी पड़ते हैं । तत्पश्चात् गुणद्रष्टा विश्वावसु कृशानु द्वारा आरोपित उन दोषों का खण्डन कर संशय का समाधान करता है :यथा -

ब्रह्मचर्यव्रतोत्सर्गगुरवे कोकसन्तते. ।
छायाविब्बोकलोलाय छान्दसज्योतिषे नमः ॥ 7 ॥

विश्वावसु सूर्य के गुणों को प्रतिपादित करते हुए कहता है कि चक्रवाक्-समूह के ब्रह्मचर्यव्रत के त्याग कराने में आचार्य, अपनी प्रियतमा के हाव-भाव में तृष्णालु, वेदप्रतिपाद्य तेज को धारण करने वाले 'सूर्य' को नमस्कार करता हूँ ।

पान्थान् दीनानहह वसुमानातपान्धान् विधत्ते
शुष्कां पृथ्वीं रचयतितरां शोषयत्योषधीश्च ।
कासाराणां हरति विभवं क्लान्तिशान्तिप्रदानामं
क्रूरस्यैवं गुणलवकथा का ? स्वतो भास्वतो स्य ॥ 8 ॥

विश्वावसु द्वारा प्रतिपादित सूर्य के गुणों का खण्डन करते हुए कृशानु उस पर दोषारोपण करते हैं - "खेद है कि 'यह' मरीचिमाली दीन पथिकों को तप्त-तेज से दृष्टिहीन बना देता है, पृथ्वी को अत्यधिक शुष्क कर देता है, और औषधियों को सारहीन बना देता है । श्रम की शान्ति प्रदान करने वाले सरोवरों का ऐश्वर्य छीन लेता है, इस प्रकार स्वभाव से निर्दयी इस सूर्य के गुण के लेशमात्र की भी बात क्या ?

विश्वावसु कृशानु द्वारा सूर्य पर लगाये गये आरोपों का खण्डन करते हुए कहते हैं :-

> वृष्टिं घृष्टिभिरारचय्य जगतस्तुष्टिं ससर्ज्जि यः
> पुष्टिं द्राग्विशिनष्टि दृष्टिषु नृणां ध्वान्तं पिनष्टि स्थिरम् ॥
> प्राज्ञानामपवर्गमार्गदममुं पद्मागृहोल्लासिनं
> को न स्तौति? समस्तलोकसुहृदं द्योभूषणं पूषणम् ॥ १ ॥

अर्थात् जो सूर्य अपनी किरणों द्वारा वर्षा करके संसार के संतोष का प्रायशः सृजन करता है, मनुष्यों की आँखों को शीघ्र उन्मिषित कर देता है, रात्रिपर्यन्त स्थित अन्धकार को नष्ट कर देता है। इन विद्वानों के मोक्षमार्ग को प्रदान करने वाले, लक्ष्मी के आलय कमल को सुविकसित करने वाले, समस्त लोक के उपकारक, आकाश के आभूषण सूर्य की स्तुति कौन नहीं करता है?

श्लेषयुक्त कथनोपकथन शैली में निबद्ध यह चम्पूकाव्य सत्रहवीं शताब्दी की धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। समस्त काव्य आलोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखा गया है, जो तत्कालीन समाज पर तीखा प्रहार करता है। कविश्री वेङ्कटाध्वरि संस्कृत भाषा के सिद्धहस्त कवि थे। उनकी अलौकिक वर्णन चातुरी, छन्दोविन्यास, अलङ्कार प्रतिभा प्रशंसनीय है। शार्दूलविक्रीडित छन्द में उपनिबद्ध श्लेषालङ्कार की छटा 'यमुनानदी वर्णन' में दर्शनीय है -

नीत्वा राधिकया निशां मुररिपुः प्रातर्गृहानागतम्-

'त्वं मा भूरपराधिकः पुनरिति प्रोक्तोऽपि पूर्वं मया ।

कस्मादेवमभूरिति' श्रितरुषा निर्भर्त्सितो लीलया

'त्वद्वाचैव सराधिकोऽहमिति' तां व्यामोहयन्मायया ॥ 126 ॥

राधिका के साथ रात्रि बिताकर श्रीकृष्ण प्रातःकाल घर आये और क्रोधयुक्त यशोदा से बोले - 'फिर तुम अपराधी मत होना ऐसा पहले ही मुझसे कहे हुए' भी 'तुम' क्यों ऐसे हुये इस तरह धमकी देने पर 'तुम्हारी बात (त्वं मा भूः अपराधिकः) से ही हम राधिका के साथ थे, ऐसा कहकर उस यशोदा को अपनी माया से मोह लिया ।

वेङ्कटाध्वरिजी के श्लोकों में श्लेष का अलौकिक चमत्कार, काव्य-प्रतिभा का मणिका चन संयोग, भौगोलिक तथ्यों का विन्यास तथा सामाजिक, राजनैतिक दशा का निरूपण विशेष रूप से अवलोकनीय है । इस काव्य में कवि ने कवियों, देवताओं, तार्किकों, वेदान्तियों तथा ज्योतिषियों आदि के गुणों और दोषों का वर्णन अति रोचक दृष्टि से किया है । 'कविवर्णनम्' में कवि ने कृशानु द्वारा कवियों का शास्त्र-निषिद्ध आचरण अत्यन्त विद्वतापूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है -

श्रीनाथस्तवनानुरूपकवनां वाणीं मनोहारिणीं

कष्टं हा कवयः कदर्यकुटिलक्ष्मापालसात्कुर्वते ।

दूरोपाहृतसौरसैन्धवपयो देवाभिषेकोचितं

सोके विनियुञ्जते सुमतय: शाकालवालस्य किम् ? ॥ 542 ॥

किंच -

स्तुवद्भवनिवर्तके सति हरौ कवि: सूक्तिभि:

करोति वरवर्णिनीचरितवर्णनं गर्हितम् ।

अनीतिरवनीपतिर्गृहशुनीतनुं मौक्तिकै-

र्विभूषयति देवतामुकुटभागयोग्यैर्यथा ॥ 543 ॥

प्रत्युत्तर में विश्वावसु ने कवियों की प्रशंसा बड़े ही श्रद्धापूर्वक श्लोकों में में इस प्रकार किये हैं :-

पद्यैर्हृद्यतमै: स्तुवन्ति कवय: प्रायेण पृथ्वीपती-

नन्ये तान् स्तुवते वचोभिरचमत्कारैरसारैरपि ।

पद्यारम्भणशक्त्यशक्तिविहितो भेद: कवीनां भव-

त्यन्येषां च परं नरस्तुतिकृतो दोषस्तु सार्वत्रिक: ॥ 547 ॥

अपि च -

सम्यग्निर्मदभावयोरनघयो: साहित्यपाण्डित्ययो:

सामर्थ्यान्यजनोपकारकतयो: साम्राज्यदाक्षिण्ययो: ।

औदार्य-प्रियवादयोश्च कथयन्त्याचार-विज्ञानयो:

सामानाधिकरण्यमेव विबुधोत्तंसप्रशंसास्पदम् ॥ 550 ॥

कवि वेङ्कटाध्वरिजी रामानुज सम्प्रदाय के वडकलै मतानुयायी आचार्यों के आचरणों पर तीव्र प्रहार करने से नहीं चूकते हैं । प्रस्तुत श्लोक इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं :-

मुञ्चन्त: पञ्चयज्ञान् द्रविडभणितिभिर्मोहयन्तोऽनभिज्ञान्

निन्दन्तो हन्त यज्ञानसकृदपि हरेर्वन्दनं वारयन्त: ।

लुम्पन्त: श्राद्धचर्यां यतिमपि गृहिणां वन्दनं कारयन्त:

सद्द्वेषं धारयन्त: कतिचिदविहितैरेव कालं क्षिपन्ति ॥ 231 ॥

'बलि-वैश्वदेवादि, पञ्चयज्ञों का परित्याग करते हैं, अनभिज्ञ लोगों को भाषागत वाक्यों द्वारा मोहित करते हैं, ईश्वर-वन्दना का भी बारम्बार निषेध करते हैं, श्रद्धानुष्ठान को न करते हुए, संन्यासियों के द्वारा भी गृहस्थजनों की वन्दना कराते हुए, सज्जन व्यक्तियों पर द्वेष धारण किये हुए कुछ रामानुज मतानुयायी शास्त्रनिषिद्ध कर्मों द्वारा समय व्यतीत करते हैं ।

घण्टाघोषं त्यजन्तो हरिपरिचरणे सर्वलोकाविगीतं

ख्यातं त्रैलोक्यमातु: श्रुतिभिरभिहितं वैभवं खण्डयन्त: ।

संकेतश्रद्धयैव स्वचरणसलिलं स्वीयगोष्ठयां पिबन्त:

केचिद्विप्लावयन्ते जगदभिदधत: केशवं दोषभोग्यम् ॥ 232 ॥

ईश्वर की पूजा में समस्त लोगों से प्रशस्य घण्टाध्वनि का परित्याग करते हुए, तीनों लोक की जननी 'लक्ष्मी' के वेद-प्रतिपादित प्रसिद्ध ऐश्वर्य का खण्डन करते हुए अपनी सभा में स्वकल्पनागत श्रद्धा द्वारा अपना चरणोदक पान करते हुए, विष्णु को अपने पापों का भोक्ता बताते हुए विश्व को विनाशाभिमुख बनाते हैं ।

यस्यां नास्ति पुरस्कृतिर्नयविदां यज्वा तु हासास्पदं ।

पूज्यन्ते च निरक्षरा: पुनरमी साङ्केतिकाचार्यका: ॥

वेदानामवहेलनं व्यतिहृता वर्णाश्रमप्रक्रिया-

गोष्ठयै दुष्कलिपुष्कलीकृतपुषे कस्यैचिदस्यै नम: ॥ 235 ॥

जिस सभा में शास्त्र के जानने वालों की पूजा नहीं है, यज्ञकर्त्ता तो हास्यास्पद है और फिर ये संकेतसिद्ध आचार्य नामधारी निरक्षर पूजे जाते हैं, वेदों का तिरस्कार, वर्णाश्रम का आचार ध्वस्त होता है । ऐसी दुष्ट कलि के प्रौढत्व की पोषिका रामानुजीया गोष्ठी को नमस्कार करता है ।

न गाहन्ते गङ्गामपि नटजटासार इति ये

न मज्जन्त्यम्भोधौ लवणरसवेशान्तक इति ।

न पञ्चैवं गव्यान्यपि पशुशकृत्सार इति हा

पिबन्त्येषां दोषान्कइह निपुण: स्याद् गणयितुम् ॥ 237 ॥

जो रामानुजीय 'शिव की जटाओं का धारा-सम्पात' कहकर गङ्गाजी में भी स्नान नहीं करते, 'सार रस का अल्पसर' ऐसा समझ समुद्र में मज्जन नहीं करते, पशु का पुरीष भाग बताकर पञ्चगव्यों को भी नहीं पीते । इस प्रकार इन लोगों के दोष गिनाने में कौन पुरुष समर्थ हो सकता है ?

संस्कृत भाषा में श्लेषालङ्कार मण्डित यह काव्य लिखकर वेङ्कटाध्वरि चम्पू काव्य साहित्य में अमर हो गये हैं । काशीवर्णनम् में श्लेषालङ्कार की शोभा सुतरां अवलोकनीय है -

वाराणसि त्वयि सदैव सरोगभूमावारोग्यभूमिरिति काममलीकवादः ।
संतस्थुषां भवति यत्र वपुः सशूलं जन्मान्तरेऽपि जलभारवदुत्तमाङ्गम् ॥ 85 ॥

अर्थात् हे काशी ! सतत् रोगमयी [गङ्गाप्रवाहयुक्त] भूमियुक्त तुझमें रोग-विहीन [विष्णु-शङ्कर युक्त] भूमि है । यह तो अत्यधिक झूठ है, [झूठ है क्या ?] जहाँ के निवासियों का शरीर दूसरे जन्म में भी शूलरोग से ग्रस्त [शूलायुधयुक्त] और मस्तिष्क शीतरोगयुक्त [गङ्गाजलयुक्त] होता है । काशी शिव तथा विष्णु दोनों की प्रिय नगरी है । इस तथ्य को श्लेषालङ्कार द्वारा उद्घाटित किया है ।

अन्त में कवि द्वारा "दिव्यक्षेत्रादिवर्णनोपसंहारः" में दोषदृक् कृशानु के इस कथन के द्वारा ग्रन्थ का समापन करा दिया गया है कि - "सारी वस्तुओं की गुण सम्पत्ति के सुदृढ़ीकरण हेतु सिद्धान्त के समर्पण के लिए पूर्व पक्ष की भाँति मैंने दोषयुक्त वचनों को आरोपित किया ।

प्रस्तुत चम्पू काव्य में कविश्री ने जो कुछ अपनी लेखनी द्वारा लिखा है, उससे उनकी काव्य-प्रतिभा, श्लेष का चमत्कार एवं कमनीय रचनाचातुरी का परिचय मिलता है । आदि से लेकर अन्त तक कहीं भी नीरसता नहीं आने पायी है । उनके वर्णन इतने अधिक सजीव और स्वाभाविक हैं कि सहृदय पाठकगणों का मन-मयूर विभोर हो उठता है । श्रीवेङ्कटाध्वरिजी प्रणीत "विश्वगुणादर्शचम्पू" काव्य ग्रन्थ अपने साहित्यिक सौन्दर्य, छन्दोबाहुल्य, मधुरविन्यास, रस पेशलता तथा अलङ्कारिक दृष्टि से अन्य चम्पू काव्यों से किसी भी दृष्टिकोण से न्यून नहीं है, प्रत्युत सर्वश्रेष्ठ है ।

पात्र-चित्रण

वेङ्कटाध्वरिकृत "विश्वगुणादर्शचम्पू" में पात्रों की संख्या केवल दो है, जो कि कथानक के आदि से अन्त तक चलते हैं । इनमें प्रमुख पात्र विश्वावसु हैं, जो कि दोषों में भी गुण का दर्शन करते हैं अर्थात् उनके गुणग्राही चरित्र का चित्रण कवि ने अपने इस गद्यपद्यमयी रचना में किया है । द्वितीय प्रमुख पात्र हैं कृशानु - जो कि गुण में विद्यमान दोषों का यथोचित वर्णन करने में नहीं चूकते हैं । इन्होंने अपने विवेक और तर्कों के माध्यम से समग्र चम्पूकाव्य में देश, नगर, ईश्वरादि वर्णनों में दोषों को भलीभाँति सहृदय पाठक वृन्द के सम्मुख प्रेषित किया है और विश्वावसु गन्धर्वकुमार ने अपनी बुद्धि चतुरता और सुतर्कों के माध्यम से उन दोषों का बड़ी ही सुगमता के साथ निराकरण किया है, जो कि श्लाघनीय है । यद्यपि विश्वगुणादर्श चम्पू काव्य में कोई एक कथानक नहीं है जैसा कि त्रिविक्रमभट्ट ने अपने "नलचम्पूकाव्य"

में नल और दमयन्ती की कथा का वर्णन किया है जबकि विश्वगुणादर्शचम्पू काव्यग्रन्थ में कवि वेङ्कटाध्वरि जी ने भारतवर्ष की विभिन्न वस्तुओं, नगरों, देशों, पर्वतों, देवी-देवताओं आदि का पृथक्-पृथक् वर्णन प्रारम्भ से अन्त तक किया है जिसमें तनिक भी शिथिलता नहीं आने पायी है प्रत्युत प्रवाह सा लक्षित होता है । केवल दो पात्रों द्वारा सम्पूर्ण वर्णन प्रस्तुत करने के बाद भी पात्रों का अभाव नहीं खलता है, जबकि कवि ने विश्वावसु और कृशानु के माध्यम से कवि ने प्रसङ्गानुकूल और भी पात्रों का वर्णन कराया है, जिसकी गणना पात्र-चित्रण के रूप में कथमपि नहीं की जा सकती है ।

कृशानु दोषद्रष्टा होने के कारण प्रत्येक दृश्यमान वस्तुओं में दोषों का दर्शन करके पूर्वपक्ष की स्थापना करता है तदनन्तर विश्वावसु 'गुणैकदृष्टि' होने के कारण उसके द्वारा आरोपित दोषों का निराकरण करके अपने मत की स्थापना करता है । यहाँ पर उन दोनों ही पात्रों के चरित्र-चित्रण क्रमशः संक्षेप में गुणानुरूप प्रस्तुत किया जा रहा है -

कृशानु

श्रीवेङ्कटाध्वरि कृत "विश्वगुणादर्शचम्पू" काव्य के प्रथम प्रमुख पात्र दोषदृक् कृशानु हैं जिन्होंने विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य में दीर्घ-ईर्ष्यालु तथा दोषद्रष्टा का स्थान ग्रहण किया है, जो इस पंक्ति से स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है -

"कृशानुरकृशासूय: पुरोभागिपदं गत: ॥"[1]

कृशानु गन्धर्वकुमार के चरित्र की सर्वोत्कृष्ट विशेषता यह है कि गुणों में भी वे दोषों का अवलोकन करते हैं। इस सन्दर्भ में यह श्लोक द्रष्टव्य है -

न धातोर्विज्ञानं न च परिचयो वैद्यकनये-
न रोगाणां तत्त्वावगतिरपि नो वस्तुगुणधी: ।
तथाप्येते वैद्या इति तरलयन्तो जडजना-
नसून्भृत्या मृत्योरिव वसु हरन्ते । गदजुषाम् ॥537 ॥

न धातुओं का विशेष ज्ञान और न वैद्यक शास्त्र की जानकारी, न रोगों का वास्तविक ज्ञान, औषधियों के गुण का ज्ञान भी नहीं तब पर भी ये लोग 'हम वैद्य हैं' इस भाँति मूर्ख लोगों को मोहित करते हुए मृत्यु के दूत की भाँति रोगियों के द्रव्य और प्राणों को हर लेते हैं।

काशी निवासी लोगों की निन्दा कृशानु प्रस्तुत श्लोक में निर्भय होकर कर रहे हैं, जो उनकी निर्भीकता का परिचायक है :-

नीचैर्दुर्यवनै: शुनीभिरपि वा नि:शङ्कमालोकितं
भुङ्क्ते पङ्क्तिविदूषकै: सह नरैरज्ञातवेदाक्षरै: ।

---

1. विश्वगुणादर्शचम्पू, श्लोक संख्या 6, सूर्यवर्णनम् ,
'पुरोभागी' इस शब्द को अमरकोष में 'दोषों में ही एकमात्र दृष्टि रखने वाले व्यक्ति को' पुरोभागी कहा गया है - "दोषैकदृक् पुरोभागी" ।

मद्यास्वादनमत्तचित्तजनतामोहाय भीहानित:

कर्माण्यारभते श्रुतिस्मृतिवचोदूराण्यसाराण्यहो ॥ 9। ॥

पतित, दुष्ट, यवन एवम् कुत्तियों द्वारा भी देखे हुए, 'अन्न' को वेद के अक्षर से अनभिज्ञ, पङ्क्तिबहिष्कृत मनुष्यों के साथ निर्भय होकर खाते हैं, मदिरापान से मत्तचित्त वाली जनता को भुलाने के लिये दोनों लोकों में भय को त्यागकर श्रुति-स्मृति प्रतिपादित बातों से निषिद्ध तुच्छ कर्मों को करते हैं ।

कृशानु स्तुतियोग्य देवी-देवताओं की निन्दा करने में तनिक भी नहीं हिचकते हैं वरन् निर्भय होकर उन पर दोषारोपण करते हैं । इस सम्बन्ध में यह श्लोक प्रस्तुत है :-

इयं हि सर्वमङ्गला स तु श्मशानमन्दिरो
विभाति हैमवत्यसौ स याति दिक्षु भिक्षुक: ।
इयं तु कुङ्कुमाङ्किता सा भस्मराशिभूषित-
स्त्वरालकुन्तला च सा जटाभिरेष भीषण: ॥ 315 ॥

यह अम्बिका तो सर्व मंगल-सम्पन्न है और वह शंकर श्मशान-निवासी है, यह सुवर्ण से लदी जगमगा रही है, वह भिक्षुक दिशाओं में घूमता है । यह तो कुङ्कुम से शोभित है वह भस्मराशि से युक्त है, वह अम्बिका टेढ़ी अलकों वाली है और यह ।शङ्कर। जटाओं से भयङ्कर है ।

कृशानु के चरित्र की एक यह भी महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि वह दोषद्रष्टा होते हुए भी दोषों में गुण का वर्णन भी परोक्ष रूप से करने में नहीं चूकते हैं । इन श्लोकों

में कृशानु ने वामन के दोषों का वर्णन करते हुए परोक्ष रूप से दानशीलता के गुण का भी वर्णन कर दिया है ।

श्रीमानपि स्वयं दैत्यात्कुर्वाणः कुप्रतिग्रहम् ।

विन्दन् स महतीं वृद्धिमिष्टां गोत्रभिदे ददौ ॥ 308 ॥

नित्यानपायिप्रमदोऽपि नाथो बटूभवन्वञ्चितदातृकोऽसौ ।

कविव्यथाकृत्खलु भूसुरोऽपि भूदानवत्त्वं क्षममेव भेजे ॥ 309 ॥

यद्यपि कृशानु दोषद्रष्टा हैं तथापि उसे पुराणेतिहास नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, व्याकरणादि का भलीभाँति ज्ञान है । व्याकरण के सूत्रों का उपहास उड़ाते हुए कृशानु कह रहे हैं -

झोऽन्तः शश्छोटि शेषो ध्यसखि ससजुषो रुर्विरामोऽवसानं

छे चेति व्यर्थवाचः सदसि यदि सतां शाब्दिकाश्चेद् बुधाः स्युः ।

किं तैरेवापराद्धं ? नट-विट-गणिकानृत्य-हस्त-प्रचारै-

स्तोधी तोधी तधीति तकिट तकिट धिक् ताहधिक् तत्तकारैः ॥ 569 ॥

पण्डितों की सभा में झोऽन्तः - छ च आदि इस प्रकार के व्यर्थ बोलने वाले वैयाकरण भी यदि विद्वान् हैं तो नट-विट-गणिका के नृत्य-हाथ-पाँव घुमाने से तोधी तकिट आदि शब्दों द्वारा उन्होंने ही क्या अपराध किया है ।

ग्रन्थ के अन्त में कृशानु विश्वावसु से यह कथन कहता है कि "सारी वस्तुओं की गुण-सम्पत्ति की दृढ़ता के लिए सिद्धान्त के समर्थन के हेतु पूर्वपक्ष की तरह मैंने दोषयुक्त

वचनों को आरोपित किया ।"[1] यह उनकी विनम्रता और उदारता का द्योतक है ।

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कृशानु दोषद्रष्टा होते हुए भी साहसी, निर्भीक, वाक्पटु, उदार व विनम्र हैं । कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् की यह उक्ति उन पर सर्वथा चरितार्थ होती है -

"मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति" अर्थात् कलङ्क युक्त होते हुए भी चन्द्रमा की शोभा कम नहीं होती है । उसी प्रकार से कृशानु दोषदृक् होते हुए भी अपने उपर्युक्त गुणों के कारण प्रशंसनीय हैं ।

विश्वावसु

विश्वगुणादर्शचम्पू के द्वितीय प्रमुख पात्र विश्वावसु गन्धर्वकुमार हैं, जो कि संसार के गुण वर्णन में कुतूहल रखते हैं जैसा कि विश्वगुणादर्शचम्पू के छठें श्लोक की प्रस्तुत पंक्ति में स्पष्ट वर्णित है - "विश्वावसुरभूद्विश्वगुणग्रहणकौतुकी ।।" विश्वावसु प्रत्येक वस्तु में दोष होने पर भी गुण को ही ग्रहण करते हैं । सूर्य जो कि दीन पथिकों को तप्त-तेज से दृष्टिहीन बना देता है, पृथ्वी को शुष्क कर देता है और औषधियों को नीरस बना देता है, श्रम की शान्ति देने वाले सरोवरों का ऐश्वर्य छीन लेता है।[2] कृशानु के इन दोषारोपणों का खण्डन कितनी सहजता और प्रशंसात्मक दृष्टिकोण से विश्वावसु के द्वारा अधोलिखित श्लोक के माध्यम से किया गया है -

---

1. दाढ्यर्थि गुणसंमृद्धेर्दूषणभणिति: समस्तवस्तूनाम् ।
अस्माभिस्सनिबद्धा सिद्धान्तस्येव पूर्वपक्षोक्ति: ॥ 593 ॥ विश्वगुणादर्शचम्पू

2. वही, श्लोक संख्या 8.

वृष्टिं घृष्टिभिरारचय्य जगतस्तुष्टिं सरीसर्ष्टि यः
पुष्टिं द्राग् विशिनष्टि दृष्टिषु नृणां ध्वान्तं पिनष्टि स्थिरम् ॥
प्राज्ञानामपवर्गमार्गदममुं पद्मागृहोल्लासिनं
को न स्तौति ? समस्तलोकसुहृदं द्योभूषणं पूषणम् ॥ 9 ॥

यही नहीं कृशानु द्वारा श्रीकृष्ण के चौर्यकर्म, विश्व को ठगने, जारों और चोरों के अग्रेसर आदि कहकर निन्दा करने पर विश्वावसु उनके गुणों का वर्णन इन दोषों का खण्डन करके अति-स्वाभाविक ढंग से करते हैं -

चोरस्य चौर्यं जगति प्रतीतं
चौर्यस्य चौर्यं न तु दृष्टपूर्वम् ।
चौर्याधिकारीणि बत श्रुतानि
कृष्णस्य मुष्णन्तितमां तमांसि ॥ ।28 ॥

विश्वावसु के चरित्र का एक विशेष गुण यह है कि वह विनम्र और धैर्यवान् है । वह कृशानु द्वारा लगाये गए दोषारोपों का बहुत ही सहजता और विनम्रता के साथ समाधान करते हैं । ये उनके स्वभाव की प्रमुख विशेषता है । कृशानु द्वारा चोलदेशीय जनों की निन्दा करने पर भी विश्वावसु तनिक भी विचलित नहीं होते अपितु सधैर्य उसका उत्तर इस श्लोक के द्वारा देते हैं, जो उनके धैर्य का परिचायक है -

याभिः सर्वपदार्थशुद्धिरुदिता तास्वप्सु देवार्पितं
निक्षिप्तं निशि रक्षितं शुचि हविर्भक्ष्येत चेत्काद् क्षतिः ।

त्याज्यं शास्त्रनिषेधतस्तदिति चेत्त्याज्यं सतैलं चट-

दभोज्यं पर्युषितं स्मरन्ति यदतो योज्यं न तद् दूषणैः ॥

अर्थात् जिनके द्वारा समस्त पदार्थों की शुद्धि बतायी गई है उसी जल में रात के समय रखी हुई सुरक्षित, देवों को समर्पित पवित्र हवि को यदि खाते हैं तो हानि क्या है ? शास्त्रों से निषेध होने के कारण यदि वह त्याज्य है, ऐसा कहते हो तो 'घी' या तेल से युक्त पर्युषित अन्न भी भोजनीय है' ऐसा लोग कहते हैं। अतः उसे दोषों में नहीं जोड़ना चाहिए।

विश्वावसु अति विनम्र हैं। वह किसी भी नगरी देश या देवी-देवताओं आदि को देखते ही उनके समक्ष अपना शीश झुकाकर अभिवादन करते हैं। श्रीरामचन्द्र द्वारा निर्मित सेतु को विश्वावसु प्रस्तुत श्लोक के द्वारा नमस्कार कर रहे हैं -

पातुं पातकिनो जनानशरणान् पातुं तमःसागरं

यातुं यातुपुरीमरीन् रणमुखे जेतुं दशास्यादिकान्।

नेतुं भूतनयां मुदं विरहिणीमेतुं यशः शाश्वतं

दातुं शर्म च राघवेण रचितं सेतुं नमस्कुर्महे ॥ 474 ॥

विश्वावसु का हृदय उदार है अतः वे प्रत्येक व्यक्ति, वस्तु को उदार दृष्टि से आंकलन करते हैं। यथा -

मा नाम पश्यत मखैरनघैरिहामी

मा चाधिगीषत वचांसि चिरंतनानि।

देवेषु भक्तिरवनित्रिदशेषु चैषां

विश्राणनं च विविधान् विधुनोति दोषान् ॥ 155 ॥

अर्थात् यहाँ ये ‹आन्ध्रदेशीय› ब्राह्मण पापरहित यज्ञों को न करें, पुरातन वेदवाक्यों को न पढ़ें 'फिर भी' देवताओं में भक्ति और भूसुरों को दान, इन लोगों के अनेकों दोषों को विनष्ट कर देता है ।

विश्वावसु में सहनशीलता कूट-कूटकर भरी हुई है, जो उनके गुणद्रष्टा स्वरूप को और भी अधिक महिमाशाली बनाने में सहायक है । वे कठोर से कठोर आक्षेपों को अत्यन्त सहनशीलता के साथ सुनते हैं, तब उसका विवेकपूर्ण प्रत्युत्तर अपने दोषद्रष्टा मित्र कृशानु को देते हैं । विश्वावसु का यह गुण सर्वत्र काव्य में विद्यमान है ।

विश्वावसु गन्धर्वकुमार पुराणेतिहास, नीतिशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, धर्मशास्त्र, मीमांसाशास्त्र आदि के ज्ञाता हैं । वे किसी भी वस्तु या प्राणी का वर्णन करते हुए तत्सम्बन्धित कथाओं की ओर संकेत करते चलते हैं । प्रस्तुत श्लोक में ग्राह-ग्रहणयुक्त गज को जो वर्णन किया गया है वह कथा महाभारत के शान्तिपर्व में तथा श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध में उल्लिखित है -

लीलालोलतमां रमामगणयन्नीलामनालोकयन्

मुञ्चन् किञ्च महीमहीश्वरमयं मञ्चं हठाल्लङ्घयन् ।

आकर्षन् द्विजराजमप्यतिजवाद्धा हन्त लोकान्तराद्

गोप्तुं शौरिरुदित्वरात्त्वर उदैद ग्राहग्रहार्तं गजम् ॥ 18 ॥

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य का द्वितीय प्रमुख पात्र विश्वावसु गन्धर्वकुमार विनम्र, उदार, सहनशील, संयमी, धैर्यवान् , एवं पुराणेतिहास आदि के ज्ञाता हैं । वे दोषों के विद्यमान रहने पर भी विश्व की प्रत्येक स्थूल और सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु व प्राणि आदि में गुणों का ही दर्शन करते हैं और गुणों का ग्रहण करते हैं, अतः उन्हें गुणद्रष्टा कहना अति श्रेष्ठ है, ये उनके चरित्र की अति-महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है ।

-----------::0::----------

अध्याय - द्वितीय

वेङ्कटाध्वरि का सर्वतोन्मुखी ज्ञान, काव्य-प्रतिभा एवम् चम्पूकाव्य में प्रयुक्त सूक्तियाँ

कवि वेङ्कटाध्वरि का सर्वतोन्मुखी ज्ञान

प्रतिभा जन्मजात होती है, जो अध्ययन अथवा अभ्यास से उत्पन्न नहीं होती है, अतः प्रतिभा वह बुद्धि है, जो नित्य नये-नये विचारों, कल्पनाओं, भावों और प्रकारों को जन्म देती है। संस्कृत काव्य-शास्त्र के आचार्यों के अनुसार यदि किसी कवि की रचना में प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति एवम् अभ्यास का मणिकाञ्चन योग हो, तो उसकाव्य की श्रेष्ठतम काव्यों में गणना की जाती है। इस प्रकार का काव्य ही सहृदय पाठकवृन्द के हृदय को आकर्षित करता है। वस्तुतः लाखों में कुछ ही ऐसे प्रतिभासम्पन्न युगकवि होते हैं। प्रतिभासम्पन्न कवि के हाथ के लगते ही वस्तु चमक उठती है जिसे देखकर सहृदय रसिकजन आनन्दविभोर हो जाते हैं। श्री वेङ्कटाध्वरि जी के 'विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य' में प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति के दर्शन होते हैं। अगाध पाण्डित्य का परिचायक होने के कारण 'विश्वगुणादर्शचम्पू' काव्य केवल काव्य न रहकर विविध विषयों के ज्ञान का भण्डार सा बन गया है, जो श्री वेङ्कटाध्वरिजी के विविध विषय के ज्ञान का द्योतक है। विश्वगुणादर्शचम्पू काव्यग्रन्थ के अध्ययन द्वारा उनकी अद्वितीय काव्य-प्रतिभा भलीभाँति विदित होती है।

वेङ्कटाध्वरिजी ने अपने काव्य-ग्रन्थ में लगभग सभी विषयों का समावेश किया है, जो तत्कालीन समाज में प्रचलित थे। उन्हें ब्राह्मणों केलिए उपादेय सभी शास्त्रों का ज्ञान था। रामायण, महाभारत, पुराणेतिहास, स्मृति, वेद, श्रुति, संगीत, छन्द, आश्रम, वर्णाश्रमों का ज्ञान, भौगोलिक ज्ञानादि विषयों में वे निष्णात थे। इनसे सम्बन्धित अनेक प्रसंग विश्वगुणादर्शचम्पू काव्यग्रन्थ में प्राप्त होते हैं। अब क्रमशः श्री वेङ्कटाध्वरिजी के विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य-ग्रन्थ के अन्तर्गत सर्वतोन्मुखी ज्ञान

का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है :-

क. <u>रामायण तथा महाभारत कथा का ज्ञान</u>

कवि शिरोमणि वेङ्कटाध्वरिजी को रामायण तथा महाभारत कथा का विस्तृत ज्ञान था । इसके अतिरिक्त अन्य कथाओं का भी कवि ने स्थान-स्थान पर यथोचित उल्लेख किया है । शार्दूलविक्रीडित छन्द में उपनिबद्ध यह श्लोक रामायण की लोकप्रसिद्ध कथा का संकेत करा रहा है । विश्वावसु मित्र कृशानु का ध्यान रामायण कथा के माध्यम से राम के गुणों की ओर आकृष्ट करने की चेष्टा कर रहे हैं ।

> अस्त्रामास तृणं प्रियाद्रुहि तृणामास स्मरारेर्धनु-
>
> दारामास मुनेः शिला पि नृवरामास स्वयं पादुका ।
>
> कुल्यामास महार्णवो पि कपयो योधाम्बभूवुस्तदा
>
> पौलस्त्यो मशकाम्बभूव भगवंस्त्वं मानुषामासिथ ॥ 7 । ॥

अर्थात् हे भगवन् ! श्रीरामचन्द्रजी की प्रिया सीता जी के शत्रु पर तृण खण्ड अस्त्र के समान हो गया, शिव धनुष तृणवत् हो गया, शिला भी गौतम ऋषि की पत्नी हो गई, पादुका स्वयं राजा बन गई, समुद्र छोटी नदी हो गया, वानर योद्धा बन गये, रावण मशक के समान हो गया, आप (स्वयं श्रीराम) मनुष्य की तरह आचरण करने वाले हो गये ।

महाभारत में दुःशासन द्वारा द्रौपदी चीरहरण का प्रसंग महाभारत के सभा-पर्व में आया है । इस प्रसिद्ध प्रसंग का संकेत कवि के काव्यग्रन्थ विश्वगुणादर्शचम्पू में

प्राप्त होता है, जो उनके महाभारत के ज्ञान को द्योतित करता है -

अवेमव्यापाराकलनमतुरीस्पर्शमचिरा-

दनुन्मीलत्तन्तुप्रकरघटनायासमसकृत् ।

विषीदत्पाञ्चालीविपदपनयैकप्रणयिन:

पटानां निर्माणं पतगपतिकेतोरवतु न: ॥ 20 ॥

विलाप करती हुई द्रौपदी के विपत्ति को दूर करने में एकमात्र सहायक, गरुडध्वज के ताने बाने के ग्रहण से रहित, तुरी-स्पर्श के अबिना दिखाई न देते हुए, सूत्र-समूह द्वारा रचना-प्रयास शीघ्र ही बार-बार वस्त्रों का निर्माण हमारी रक्षा करें ।

महाभारत के शान्तिपर्व में गजेन्द्रमोक्ष की कथा प्रसिद्ध है । कवि ने इस कथा का उल्लेख सूर्यवर्णनम् में किया है, जो कवि के महाभारत के ज्ञान का परिचायक है -

लीलालोलतमां रमामगणयन्नीलामनालोकयन्

मुञ्चन् किञ्च महीमहीश्वरमयं मञ्चं हठाद्व चयन् ।

आकर्षन् द्विजराजमप्यतिजवाद्वा हन्त लोकान्तराद्

गोप्तुं शौरिरुदित्वरत्वर उदैद् ग्राहग्रहार्तं गजम् ॥ 18 ॥

ग्राह-ग्रहण से पीडित गजराज की रक्षार्थ ससम्भ्रम वासुदेव कामुक हाव-भावों से अति तृषित लक्ष्मी को ठुकराते हुए, नाग्नजिती की उपेक्षा करते हुए, और पृथ्वी

को छोड़ते हुए, शेषमयी शय्या को सहसा तिरस्कृत करते हुए, गरुड़ को भी शीघ्र आकर्षित करते हुए वैकुण्ठलोक से अत्यन्त शीघ्रता से पहुँच गये ।

ख. पुराणेतिहास ज्ञान

कवि मौलि श्री वेङ्कटाध्वरिजी को पुराण एवम् इतिहास का विस्तृत ज्ञान था । ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाओं के आधिक्य के कारण विश्वगुणादर्श चम्पू काव्यग्रन्थ का गाम्भीर्य और भी द्विगुणित हो उठा है । कवि ने सूर्यवर्णनम् प्रसंग में श्रीकृष्ण के नृसिंहावतार का वर्णन किया है, जो कि श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध में प्रह्लाद चरित्र नाम से प्रसिद्ध है । संसृष्टि अलङ्कार एवम् शार्दूलविक्रीडित छन्द में उपन्यस्त यह श्लोक द्रष्टव्य है -

वैकुण्ठो महताहताखिलमहारम्भं मदेनोच्चकै-

श्चण्डं खण्डयितुं हिरण्यकशिपुं वेतण्डमुत्कण्ठया ।

सैंहं वेषमशेषभीषणमहो गृह्णँस्तवरागौरवात्

प्रह्लादव्यसनासहिष्णुरुदगादाकण्ठकण्ठीरवः ॥ 19 ॥

अर्थात् प्रह्लाद के दुःखों को सहन न करने वाले नारायण ने अत्यन्त गर्व से समस्त यज्ञादि कर्मों के विनाशक (गजपक्ष - दान वारि से उन्मत्त होकर सारे उपवनादि को उखाड़ देने वाले) अत्यधिक भयङ्कर हिरण्यकशिपुरूपी हाथी को छिन्न-भिन्न कर देने के लिए उत्सुकता से समस्त जीवों के भयङ्कर सिंह वेष को धारण करते हुए कण्ठ पर्यन्त सिंहरूप में आविर्भूत हुए ।

सूकरावतार, मत्स्यावतार, कच्छपावतारादि, अगस्त्य द्वारा विन्ध्याचल पर्वत को झुकाना आदि पौराणिक कथाओं का सङ्केत प्राप्त होता है ।

सदावदातनिम्नगातटीकुटीरवासिनी
कटिस्फुटीभवत्करा किटीश्वरी पटीयसी ।
रसारसादिहोदिता रसालसालसंवृते
वनेऽवनेषु दीक्षिता मदीक्षिताधिदेवता ॥ 384 ॥

पृथ्वी पर प्रेम होने के कारण इस आम्र और साल के वृक्षों से आच्छादित जङ्गल में उत्पन्न सदा शुभ्र वर्ण वाली पिनाकिनी नदी के किनारे की गुफा में रहने वाली, स्पष्टरूप से अभिलक्षित कटि-प्रदेश पर हाथ किये, पालनकर्म में गृहीतव्रता, वाराहरूपिणी अधिदेवता मैंने देखा ।

सोऽयं हेयप्रत्यनीकोऽपि शाङ्गीं कष्टं पृथ्वीकाङ्क्षयाभूद्वराहः ।
इत्थं सिद्धे ब्रूहि भूलाभलोभात्कं कं वेषं मानुषो नेह धत्ते ? ॥ 385 ॥

त्याग करने योग्य दोषों के विरुद्ध होते हुए भी वह विष्णु भूमि की अभिलाषा से सूकर हुए थे, खेद है । बताओ इस तरह सिद्ध होने पर भी पृथ्वी-लाभ के लोभ से मनुष्य किस-किस वेष को यहाँ धारण नहीं करता ?

पाठीनीयं कामठं कैटभारिः कैटं रूपं यातु काण्ठीरवं वा ।
अन्यद्वा यत्सर्वमप्राकृतं तन्नासौ तेष्वप्युज्झति स्वस्वभावम् ॥ 386 ॥

श्री विष्णु सहस्रदाँत वाले मत्स्य, कच्छप, वराह, या सिंह अथवा जो दूसरा भी कोई रूप हो, वह सभी अस्वाभाविक हैं, उन-उन रूपों में रहते हुए भी यह ईश्वर अपने उद्धारादि स्वभाव को नहीं छोड़ते ।

अगस्त्य द्वारा सागरपान की कथा अधोलिखित श्लोक में सङ्केतित है -

स यासां व्याकर्ता चुलुकितसमुद्रा मुनिवर:

प्रबन्धार: प्रौढा: शठमथनमुख्या: शमधना: ।

प्रवक्तार: शुद्धा: प्रथितयशस: पूर्वगुरवो

गिराम्पारे तासां जयति गरिमा द्राविडगिराम् ॥ 245 ॥

चुल्लू भर में समुद्र को ले लेने वाले कीर्तिप्राप्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जिस वाणी के संस्कर्ता, पूर्णज्ञानोपपन्न शम के धनी शठकोप आदि भाषाग्रन्थकर्ता, लब्धख्याति, शुद्धान्त: करणशील रामानुजादि प्रवक्ता हैं, उस द्राविड भाषा का गौरव वाणी के परे विराजमान है ।

ग. श्रुति-स्मृति, उपनिषदादि ज्ञान

कविश्री को श्रुति, स्मृति, उपनिषदादि का विशद ज्ञान था । उन्होंने अपने इस ज्ञान को काव्यग्रन्थ के श्लोकों में सुन्दर शब्दों के द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया है । श्रुति का ज्ञान उनके काव्यग्रन्थ के 159वें गद्यभाग में दर्शनीय है । जो उनके श्रुतिज्ञान का परिचायक है - "हज़ारों श्रुतियों से विहित यज्ञ करने की आवश्यकता का समर्थन करना उसी प्रकार निरर्थक है, जैसे- हाथ में स्थित वेर के फल

की सत्ता को सिद्ध करने के लिए अन्य प्रमाणों की कल्पना करना[1],

अधोलिखित श्लोकों में ये श्रुतिवाक्य स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं ।

यदेव सर्वज्ञमपास्तदोषं भवार्तिहारि श्रुतमागमान्ते ।
अज्ञं परं ब्रह्म तदेव भुङ्क्ते संसारतापानिति संगिरन्ते ॥ 509 ॥

पारम्पर्यत आगतो निजकुले पन्था न हातव्य इ-
त्यद्वैतं परिगृह्य हन्त जगतो मिथ्यात्वमाचक्षताम् ।
अध्येतुं निगमानशेषत इमान् कर्माणि निर्मातुम-
प्यास्तिक्याच्चतुरा निकाममितरे के ? तावदेतादृशाः ॥ 515 ॥

सर्वज्ञमज्ञ इति सर्वपदाभिधेयं
कस्याप्यवाच्य इति सर्वमहागुणानाम् ।
स्थानं च निर्गुण इतीह समस्तवेद-
वेद्यं त्ववेद्य इति जगदीशमाहुः ॥ 512 ॥

"यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि ।' इति । 'न जायते ----------
मन्यमाने शरीरे ॥'[2]

---

1. श्रुत्ययुतविहितसवनकरणावश्यकतासमर्थनेन करबदरास्तित्वसाधकप्रमाणान्तरपरिकल्पेने ॥
गद्य संख्या 159, पृष्ठ 282.

2. विश्वगुणादर्शचम्पू, श्लोक संख्या 509, पृष्ठ संख्या 376.

'मृत्यो: स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।' इत्यादि ------------ मिथ्यैवेति भाव: ।'[1]

'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'[2]

स्मृतिज्ञान विषयक श्लोक की सम्पूर्ण ग्रन्थ में यत्र-तत्र परिलक्षित होते हैं । इस प्रसंग में श्लोकद्वय उद्धृत है -

'पन्थानमनुरून्धान: पित्रादेर्नैव दुष्यति' ।
इति स्मृतिमधीयानैरेषां दोषो हि दुर्वच: ॥ 188 ॥

यदि कतिपये जात्वालस्याद्यथासमयं द्विजा
बत न तनुयु: संध्योपास्ति भविष्यति किं तत: ।
निगमचरितानङ्गीकारो हि दूषणमङ्गिना-
मशकनवशाद्दोषायेषां न जात्वननुष्ठिति: ॥ 187 ॥

अर्थात् पितरों के मार्ग का अनुसरण करते हुए दोष नहीं होता है, ऐसी स्मृति के अध्ययनकर्ताओं से इन लोगों का दोष कहना कठिन है ।

कुछ ब्राह्मण यदि कभी आलस्यवश उचित समय पर सन्ध्योपासना नहीं करें तो क्या होगा ? क्योंकि श्रुति-स्मृति विहित कर्मों का अनङ्गीकार मनुष्यों के लिए दोष हैं, अशक्ति के कारण न किये हुए कर्म कभी भी इन लोगों के दोष के लिए नहीं है ।

---

1. वि0गु0द0चम्पू, पृष्ठ संख्या 381, श्लोक संख्या 515.
2. वही, पृष्ठ संख्या 389, श्लोक संख्या 512.

उपनिषद् ज्ञानविषयक एक और श्लोक प्रस्तुत किया जा रहा है -

मिथ्यार्थावेदकत्वाच्छ्रुतिषु कुमतिभिः कर्मकाण्डे निरस्त-

प्रामाण्ये ब्रह्मकाण्डैः सह गुणवचनैः शोषितो ब्रह्मशब्दः ।

मिथ्यार्थेस्मिन्विभक्तिः प्रकृतिरपि परं ब्रह्म नैवाभिधत्ते

वाच्यत्वानाश्रयत्वात्कथमुपनिषदां मानतां जानतां ते ॥ 510 ॥

उपनिषद् वाक्यों द्वारा कर्मकाण्डों के प्रमाण-शून्य हो जाने पर, वेदों में अयथार्थ प्रतिपादकत्व होने के कारण सगुण उक्तियों के साथ दूर्बुद्धियों में ब्रह्मशब्द को समान मान लिया है । इस ब्रह्म में विभक्ति ‹सु-और आदि› व्यर्थ है, प्रकृति भी परं ब्रह्म को कभी भी नहीं बताती, इस ब्रह्म में वाच्यत्व के आश्रयाभावत्व होने के कारण उपनिषदों का प्रामाण्य वे नास्तिक कैसे समझ सकते हैं ।

घ. वेद ज्ञान

विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य में कवि ने अपने वेद सम्बन्धी ज्ञान का परिचय दिया है । वेङ्कटाध्वरिजी ने अनेक स्थलों पर वैदिक वाङ्मय के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, जो कवि के इस ज्ञान का द्योतक है । ऋक्, साम और यजुर्वेद का संकेत कवि के चञ्जीपुरीवर्णनम् में प्राप्त होता है :-

ऋक्साम्नयोश्च यजुषां च निवासभूताः

पूता द्विजाः स्मृति-पुराण-कलाधुरीणाः ।

कुर्वन्ति वासमिह कर्कशतर्कशब्द-

तन्त्रत्रयीशिखरसिन्धुतलस्पृशोऽमी ॥ 374 ॥

ऋक्-साम और यजुर्वेद के आधारभूत, पवित्र, स्मृति-पुराण एवम् कलाओं में प्रवीण, कठोर, न्याय-व्याकरण-मीमांसा-वेदत्रय और वेदान्तशास्त्र रूपी सागर की तलहटियों को छूने वाले ये ब्राह्मण इस चञ्जीपुरी में निवास करते हैं ।

वेद ज्ञान द्वारा प्रतिपादित यज्ञीय परिपाटी का सङ्केत इन श्लोकों द्वारा प्राप्त हो रहा है -

हिंसाकृत्प्रत्यवेयादिति कथयति यो वेद एवैष यागे
पश्वालम्भं विधत्ते यदि क इह मखे वैदिकः संशयीत १ ।
हिंसात्वाभावमेवाध्वरपशुनिहतेराह रामानुजार्य-
स्तत्पक्षस्थोऽपि यो न प्रसजति यजने कस्तदन्यो गुरुद्विट् ॥ 366 ॥

ऋत्विग्विशुद्धिविरहादतिशङ्कया चेत्
केचित्कलौ जहति नित्यमपि क्रतुं ते ।
मुञ्चन्ति गुर्वशुचितातिशयेन किं न
चक्राङ्कवैष्णवमनुग्रहणादि सर्वम् ॥ 368 ॥

यागं ये बत वैष्णवा विजहतिच्छागच्छिदाभीतितः
शिष्यक्लेशनसाध्वसाज्जहतु ते चक्राङ्कनप्रक्रियाम् ।
पूर्वस्मिन्बहुसंमतिर्भगवतः प्रीतिः फलं नो धना-
न्यल्पीयोऽभिमतिः परत्र फलमप्यर्थाप्तिरित्थं भिदा ॥ 370 ॥

ड. <u>ज्योतिष शास्त्र</u>

श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य ग्रन्थ में ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्तों का अनेक स्थलों पर प्रतिपादन किया है, जो इस बात का द्योतक है कि उनका ज्योतिष में गहन प्रवेश था । उन्होंने अपने चम्पूकाव्य में ज्योतिषिक वर्णनम् नामक प्रसङ्ग में ज्योतिष वर्ग तथा ज्योतिष शास्त्र का वर्णन किया है :-

भानोः शीतकरस्य वापि भुजगग्रासे पुरो निश्चिते
तीर्थानामटनं जनस्य घटयेत्तापत्रयोच्चाटनम् ।
इष्टे प्रागवधारिते सति धृतेस्तुष्टेश्च लाभो भवेद्
दृष्टे तु व्यसनेऽत्रतत्परिहृतिः कर्तुं जपाद्यैः क्षमा ॥ 533 ॥

अर्थात् सूर्य या चन्द्रमा का राहु अथवा केतु द्वारा ग्रसित होने का पूर्वनिश्चय हो जाने पर, व्यक्ति का त्रिविध तापों (दैहिक, दैविक एवम् भौतिक) के निवारक तीर्थों का भ्रमण सम्पन्न हो जाना चाहिए, पहले अभीष्ट निर्णीत हो जाने पर धैर्य एवम् सन्तोष का लाभ होता है तथा दुःख जान लेने पर जपादि के द्वारा उसका परिहार करने की क्षमता होनी चाहिए ।

वृद्धि-ह्रासौ कुमुदसुहृदः पुष्पवन्तोपरागः
शुक्रादीनामुदयविलयाविंत्यमी सर्वदृष्टाः ।
आविष्कुर्वन्त्यखिलवचनेष्वत्र कुम्भीपुलाक-
न्यायाज्ज्योतिर्नयगतिविदां निश्चलं मानभावम् ॥ 534 ॥

चन्द्रमा का घटना-बढ़ना, सूर्य-चन्द्र-ग्रहण, शुक्र आदि ग्रहों का उदय-अस्त सभी के द्वारा देखे गये हैं। ये सब 'स्थाली का एक चावल देखा जाता है' इस न्याय से ज्योतिष शास्त्र के गति के जानकारों की समस्त बातों में अचल आदरणीय भाव प्रकट करते हैं।

कवि ने 532वें श्लोक के माध्यम से ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान के महत्त्व का प्रतिपादन किया है -

न दैवं न पित्र्यं च कर्मात्र सिध्येन्न यत्रास्ति देशे ननु ज्यौतिषज्ञः ।
न तारा न चारा नवानां ग्रहाणां न तिथ्यादयो वा यतस्तत्र बुद्धाः ॥ 532 ॥

जिस देश में ज्योतिष के ज्ञाता नहीं हैं, उस देश में न नक्षत्र, न तो नवों ग्रहों का स चरण और न तिथि आदि अथवा न तो देवकर्म, न पितृकार्य ही सिद्ध हो सकते हैं जिसलिए उन स्थलों में 'वे' पण्डित हैं।

च. <u>न्यायशास्त्र</u>

इसका परिचय कवि के तार्किक वर्णनम् में प्राप्त होता है। कवि के कथनानुसार न्यायरूपी सागर अथाह है, जिसको बढ़ाने वाले अज्ञानशून्य निरपवाद, चौंसठ कलाओं के स्वामी चन्द्रमा के समान गौतम हैं -

ज्ञानाभिरक्षचरणः कणभक्षकश्च
श्रीपक्षिलोऽप्युदयनः स च वर्धमानः ।

गङ्गेश्वरः शशधरो बहवश्च नव्या

ग्रन्थैर्निरुन्धत इमे हृदयान्धकारम् ॥ 560 ॥

न्यायवैशेषिक दर्शन के कणाद, श्री पक्षिल, उदयन, वर्धमान, गङ्गेश्वर, शशधर और ये बहुत से नव्य नैयायिक, ग्रन्थों के द्वारा हृदय के अन्धकार को दूर कर देते हैं।

लक्षण, प्रमाण, घटपट आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग निम्नलिखित श्लोकों में हुआ है :-

मोहं रुणद्धि विमलीकुरुते च बुद्धिं

सूते च संस्कृतपदव्यवहारशक्तिम् ।

शास्त्रान्तराभ्यसनयोग्यतया युनक्ति

तर्कश्रमो न तनुते ? किमिहोपकारम् ॥ 556 ॥

अपरीक्षितलक्षणप्रमाणैरपरामृष्टपदार्थसार्थतत्त्वैः ।

अवशीकृतजैत्रयुक्तिजालैरलमेतैरनधीततर्कविद्यैः ॥ 558 ॥

अधोलिखित श्लोकों में तो कवि का न्यायशास्त्रीय ज्ञान अवलोकनीय है -

कर्म-ब्रह्मविचारणां विजहतो भोगापवर्गप्रदां

घोषं कञ्चन कण्ठशोषफलकं कुर्वन्त्यमी तार्किका. ।

प्रत्यक्षं न पुनाति नापहरते पापानि पीलुच्छटा

व्याप्तिर्नावति नैव पात्यनुमतिर्नो पक्षता रक्षति ॥ 552 ॥

ये नैयायिक ऐहिक सुख और मोक्ष प्रदान करने वाले कर्म-ब्रह्म की मीमांसा को त्यागते हुए व्यर्थ कण्ठशोषफलक कलकल करते हैं । प्रत्यक्ष न पवित्र बनाता है, परमाणुसमूह पाप नहीं हटाता, व्याप्ति रक्षा नहीं करती, अनुमिति न तो पालन करती, है, पक्षता रक्षा नहीं करती है ।

हेतुः किंच विशिष्टधीरनुमितौ न ज्ञानयुग्मं मरुत्
त्वाचो नेति च मोहवादमुखरा नैयायिकाश्चेद् बुधाः ।
मेषस्याण्डमियत्पलं बलिभुजो दन्ताः कियन्तस्तथे -
त्येषं सन्ततचिन्तनैः श्रमजुषो न स्युः ? कथं पण्डिताः ॥ 553 ॥

और अनुमिति में विशिष्ट {साध्यव्याप्तिमत्व} ज्ञान कारण है दोनों {वह्नि-व्याप्य धूमः, धूमवान् अयं पर्वतः} ज्ञान नहीं, वायु त्वगिन्द्रियग्राह्य है अथवा नहीं इस तरह भ्रमात्मक वादों से वाचाल तार्किक यदि पण्डित हों तो मेष का अण्डकोष इतना वजन है तथा कौए के कितने दाँत हैं ऐसा सतत विचारों से प्रयत्नशील लोग क्यों न पण्डित हों ?

कविश्री ने न्यायशास्त्र व नैयायिकों की प्रशंसा की है -

मोहं रुणद्धि ------------- किमिहोपकारम् ।[1]

तर्कशास्त्र में परिश्रम भ्रम नष्ट कर देता है, बुद्धि को निर्मल बना देता है, संस्कृत पदों के प्रयोग में क्षमता उत्पन्न कर देता है, दूसरे शास्त्रों के अभ्यास में योग्यता

---

1. विश्वगुणादर्शचम्पू, श्लोक संख्या 556.

प्राप्त कराता है, संसार में कौन उपकार नहीं करता ?

छ. मीमांसाशास्त्र का ज्ञान

कवि का मीमांसाशास्त्र विषयक ज्ञान 'मीमांसक वर्णनम्' में प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी मीमांसादर्शन के अनेक सिद्धान्तों का प्रयोग हुआ है । मीमांसा के अनुसार ज्ञान स्वतः प्रमाण माना गया है । श्रीवेङ्कटाध्वरि जी ने इस सिद्धान्त की ओर सङ्केत कराने के लिए कृशानु का अवलम्बन लिया है, जो इस ग्रन्थ का दोषदृक् पात्र है । उसने मीमांसकों की आलोचना अपने स्वभावानुसार की है जो इस सिद्धान्त का समर्थन कर रहा है :-

मीमांसकाः कतिचिदत्र मिलन्ति वेद-
प्रामाण्यसाधनकृतोऽपि न तेऽभिवन्द्याः ।
उद्घोषितोऽप्युपनिषद्भिरशेषशेषी
ब्रह्मैव नाभ्युपगतः पुरुषोत्तमो यैः ॥ 561 ॥

मीमांसाशास्त्र द्वारा संसार को नाशवान् जानते हुए भी ये लोग देवताओं के चैतन्यत्व का लोप कर देते हैं ।[1]

पूर्व पक्ष का खण्डन करते हुए विश्वावसु गन्धर्वकुमार कहते हैं कि हे मित्र ! समस्त वेदों के अर्थ-निर्धारण में आदर करने वाले मीमांसकों की निन्दा मत करो ।

---

1. विश्वगुणादर्शचम्पू, श्लोक संख्या 562, पृष्ठ संख्या 416.

क्योंकि सर्वप्रथम धर्म में प्रमाण, बाद में अनेक प्रकार की विधियों के भेद, अङ्गता और प्रयोज्य-प्रयोजक सम्बन्ध, पौर्वापर्य, अधिकार और उसके बाद बहुत से अतिदेश, ऊह, बाध, तन्त्र, अर्थनिर्णय आदि को नीति की सैकड़ों आँखों को अच्छी तरह देखने वाले मीमांसकों से भिन्न पृथ्वी पर श्रद्धापूर्वक वेद की रक्षा कौन करते हैं ?

उपर्युक्त श्लोकों में मीमांसकों के पारिभाषिक शब्द जैसे - प्रमाण, प्रयोज्य-प्रयोजक सम्बन्ध, पौर्वापर्य अधिकार, अतिदेश आदि का प्रयोग हुआ है जो उनके मीमांसाशास्त्रीय ज्ञान का परिचायक है । यही नहीं कवि ने पूर्वमीमांसा के साथ ही उत्तर मीमांसा अथवा वेदान्त के सिद्धान्तों की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । वेदान्त दर्शन का प्रतिपाद्य विषय है - "ब्रह्मप्राप्ति अथवा आत्मदर्शन के उपाय विधि तथा साक्षात्कार दशा का विस्तृत विवेचन । विश्वगुणादर्शचम्पू में ब्रह्म की सत्ता का उल्लेख कवि ने प्रस्तुत श्लोक में वर्णित किया है :-

प्रत्यक्षगोचरमशेषमपि प्रपञ्चं मिथ्येति मायिन इमे प्रतिपादयन्ति ।
सर्वप्रमाणसरणीमतिवर्तमानं ब्रह्माश्रयन्ति च परं बत निर्विशेषम् ॥ 508 ॥

अर्थात् ये मायावादी आँख से दिखायी देने वाले भी समस्त जगत् को असत्य है ऐसा कहते हैं, और खेद है 'कि' समस्त प्रमाण-पद्धतियों से परे स्थित अनिर्वचनीय पर-ब्रह्म को आश्रय बनाते हैं ।

कृशानु की वेदान्त सम्बन्धी यह उक्ति इस परिप्रेक्ष्य में दर्शनीय है -

वेदान्त में जो ब्रह्म अपगतकल्मष, सर्वान्तर्यामी, भव-दुःखनिवारक सुना गया है, वही अल्पज्ञ परब्रह्म, सांसारिक दुःखों को भोगता है । इस प्रकार ये लोग कहते हैं ।[1]

उपर्युक्त श्लोक द्वारा कवि के उत्तर मीमांसा सम्बन्धी ज्ञान की पुष्टि हो रही है । यद्यपि यह उक्ति मीमांसकों की आलोचना ही प्रकट कर रही है तथापि कवि के ज्ञान की स्पष्ट परिचायक है । इसके अतिरिक्त मीमांसाशास्त्र के प्रवर्तक जैमिनी मुनि तथा मीमांसाशास्त्र के रक्षक-शबर, कुमारिल, प्रभाकर, मण्डन, भवदेव, पार्थसारथि और दूसरे विश्व वन्दनीय मीमांसकों का भी कवि ने नामोल्लेख किया है।

आगमरूपविचारिण्यधिकरणसहस्त्रशिक्षितविपक्षे ।
स्वामिनि जैमिनियोगिन्यपि रज्यति हृदयमस्मदीयमिदम् ॥ 566 ॥

शबर-कुमारिल-गुरवो मण्डन-भवदेव-पार्थसारथयः ।
अन्ये च विश्वमान्या जयन्ति संत्रायमाणतन्त्रास्ते ॥ 567 ॥

ज. व्याकरणशास्त्रीय ज्ञान

शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, व्याकरण और ज्योतिष ये छः वेदाङ्ग कहे जाते हैं । व्याकरण की गणना इन्हीं षड् वेदाङ्गों के अन्तर्गत की गयी है । विश्वगुणादर्शचम्पू में व्यक्त कवि की व्याकरणशास्त्रीय प्रतिभा उनके अगाध पाण्डित्य के

---

1. श्लोक संख्या 509, पृष्ठ संख्या 376

के दिग्दर्शन कराती है । अस्मद् आलोच्य चम्पू काव्य के श्लोकों में कवि ने इस प्रकार व्याकरण सिद्धान्तों को गूँथा है, जो कवि के व्याकरणशास्त्र में गहन प्रवेश को प्रकट करता है । समग्र चम्पूकाव्य ग्रन्थ व्याकरण के गूढ़ तथा सूक्ष्म सिद्धान्तों से ओतप्रोत है, विश्वगुणादर्श में कवि ने एक 'वैयाकरणवर्णनम्' नामक पृथक् सोपान की रचना की है, जिसमें पाणिनि के कठिनतम सूत्रों का कवि ने उल्लेख किया है । दोषदर्शी कृशानु के द्वारा कवि ने पाणिनि निर्मित सूत्रों की भी कटु आलोचना अपने इस ग्रन्थ में करवा डाली है किन्तु उसका खण्डन भी प्रस्तुत किया है, गुणदर्शी विश्वावसु के द्वारा । यहाँ पर तत्सम्बन्धित श्लोक उद्धृत है -

टिड्ढाणञ्द्वयसच्चुटू डःसिडसोस्तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिव्-
वस्-मस् तानचि च ष्टुना ष्टुरत इञ् शश्छोऽट्यचोऽन्त्यादि टि ।
लोपो व्योर्वलि वृद्धिरेचि यचि भं दाधा घ्वदाम्नाज्झला -
वित्येते दिवसान्नयन्ति कविचिच्छब्दान् पठन्तः कटून् ॥ 568 ॥

झोऽन्तः श्छोटि शेषो घ्यसखि ससजुषो रुर्विरामोऽवसानं
छे चेति व्यर्थवाचः सदसि यदि सतां शाब्दिकाश्चेद् बुधाः स्युः ।
किं तैरेवापराद्धं ? नट-विट -गणिकानृत्य-हस्त-प्रचारै-
स्तोधी तोधी तधीति त्तकिट तकिट धिक् ताहधिक् तत्तकारैः ॥ 569 ॥

सु-औ-जस् आदि विभक्तियों का संकेत कवि रचित इस श्लोक में दृष्टिगोचर होता है, जो उनकी वर्णनातीति कुशलता को दर्शाता है ।

मिथ्यार्थवेदकत्वात् -------------- जानतां ते ॥ 510 ॥

कवि ने पत जलि का भी उल्लेख अपने ग्रन्थ में यत्र-तत्र किया है जो कि प्रसिद्ध वैयाकरण थे । उन्होंने व्याकरण के महत्त्व को अपने श्लोक में वर्णित किया है जो सम्प्रति उद्धृत है -

पातञ्जले विष्णुपदापगायाः पातं जले चापि नयेऽवगाहम् ।
आचक्षते शुद्धिदमाप्रसूतेरा च क्षते राममथोक्षजे च ॥ 572 ॥

झ. काव्यशास्त्रीय पाण्डित्य

स्पष्ट शब्दों से सुशोभित, कर्णप्रिय, सुमधुर, हृदय को आकृष्ट करने वाली प्रसादपूर्ण तथा अर्थ-गाम्भीर्य से पूर्ण वाणी पुण्यशालियों की ही होती है । कभी भी सज्जनों की हानि नहीं होती है वरन् उनसे द्वेष करने वाले चुगलखोर अनर्थ को प्राप्त होते हैं क्योंकि जिस प्रकार से दूसरों के धन को हरण करने की इच्छा से प्रवृत्त, दुष्ट व्यक्ति स्वयं ही नष्ट हो जाता है । बड़े दीप के भक्षण के लिए उद्यत शलभ (कीट-विशेष) का दाह सुलभ नहीं है क्या ? अर्थात् सुलभ है ।[1]

उपर्युक्त श्लोक कवि की सुपदावली, अर्थ गौरव आदि विषय का बोध कराने में सक्षम है । अर्थ-गौरव से युक्त दृष्टान्त अलङ्कार से सुशोभित कवि के सुभाषित वचन पंक्तियों के गाम्भीर्य को प्रकट कर रहे हैं ।

---

1. विश्वगुणादर्शचम्पू, श्लोक संख्या 410, पृष्ठ संख्या 312.

उत्पाद्य स्वयमुत्तमान् फलतरूनुल्लास्य वारूदकै -
रुन्मत्तोऽपि किमुच्छिनत्ति जगति छित्वापि किं नन्दति ? ॥ 15 ॥

संसार में पागल भी अच्छे अच्छे फल देने वाले वृक्षों को उगाकर, स्वच्छ जलों से बड़ा करके, स्वतः उखाड़ देता है क्या ? उखाड़कर भी प्रसन्न होता है क्या ?

कवि के सुपदावली और कर्णमधुर शैली तथा अर्थ-गाम्भीर्य का सङ्केत इन पङ्क्तियों में द्रष्टव्य है :-

गङ्गातरङ्गावलिभिः सुधांशोः सुधाझरैश्चानिशमार्द्रमूर्न. ।
वृथाभिषेकं कलयन्ति शम्भोस्तृप्ताय तोयस्य ददत्यपः के ॥ 322 ॥

(अ) नीति-शास्त्र

कवि ने अपने चम्पू काव्य ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर नैतिक आदर्शों से युक्त श्लोकों की संरचना की है जो प्रशंसनीय है । कवि का यह नीतिवाक्य श्लाघनीय है, जो सभी के लिए हितकारी है -

व्यापारान्तरमुत्सृज्य वीक्षमाणो बधूमुखम् ।
यो गृहेष्वेव निद्राति दरिद्राति स दुर्मतिः ॥ 120 ॥

अर्थात् दूसरे व्यापारों को छोड़कर पत्नी का मुख देखता हुआ जो पुरुष घर पर ही आलसी की तरह पड़ा रहता है वह मूर्ख दरिद्र हो जाता है ।

आकिंचन्याददतिपरिचयात् ---------- चोपभुङ्क्ते ॥ 119 ॥

कुयें के कछुए के समान कुबुद्धि, आलसी मनुष्य घर पर ही रहता हुआ अकिंचनता (दरिद्रस्य भावः) एवम् अति परिचय के कारण पत्नी से उपेक्षित, राजाओं के सान्निध्य में न जाने से सभी लोगों से ही डरता हुआ संसार के विविध कार्यों को जानता है क्या ? और सुख भी पाता है क्या ?

इच्छेद्यस्तु सुखं ----- नापक्रियाम् ।[1] जो मनुष्य पृथ्वी पर सुखपूर्वक रहने की इच्छा करे वह चतुर व्यक्ति राजा की सभा में जाय, उस सभा में हितकारी वचन बोले, अपना कार्य सिद्ध करे, विना क्लेश के ही धनोपार्जन करे, राजा के प्रिय जनों को सन्तुष्ट करें, उपकार करें, किसी व्यक्ति की भी बुराई न करे ।

श्रीकामाक्षीदेवीवर्णनम् में कवि ने विश्वावसु द्वारा नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठापना की है -

रमणीयः स हि पुरुषो रमणी यत्रैव रज्यति विदग्धा ।
श्लोकः स एव सुभगश्चित्तं सक्तं हि यत्र रसिकस्य ॥ 317 ॥

वही पुरुष सुन्दर है जहाँ ही चतुर स्त्री रमती है, जिस (श्लोक) में ही रसिक जन का चित्त आसक्त हो वही श्लोक अच्छा है ।

1. श्लोक संख्या 121, पृष्ठ संख्या 103

ट. <u>संगीतशास्त्र</u>

कवि वेङ्कटाध्वरि को संगीतशास्त्र का भी ज्ञान था । यद्यपि इससे सम्बन्धित अत्यल्प उदाहरण ही उनके चम्पूकाव्य में प्राप्त होते हैं । वैयाकरण वर्णनम् में कवि ने पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी के कुछ सूत्रों का उल्लेख अपने श्लोकों में किया है । उसी प्रसङ्ग में कवि ने उनके सूत्रों की तुलना नट विट गणिका के नृत्य-हाँथ-पाँव घुमाने से तोधी तोधी इत्यादि मृदङ्ग पखावजादि वाद्यों के शब्दों द्वारा की है । उनका कथन है जब पण्डितों की सभा में झोऽन्त: ------ छे च आदि सूत्रों के बोलने वाले वैयाकरण विद्वान् हैं तो फिर नृत्य करने वाले नट-विट-गणिका आदि भी विद्वान् क्यों नहीं होते -

झोऽन्त: शश्छोऽटि शेषो ध्यसखि ससजुषो रुर्विरामोऽवसानं
छे चेति व्यर्थवाच: सदसि यदि सतां शाब्दिकाश्चेद् बुधा:स्यु: ।
किं तैरेवापराद्धं ? नट-विट-गणिकानृत्य-हस्त-प्रचारै-
स्तोधी तोधी तधीति त्तकिट तकिट धिक् ताहधिक् तत्कारै: ॥ 569 ॥

अधोलिखित श्लोक में कवि के संगीतशास्त्र विषयक रुचि का सङ्केत प्राप्त होता है ।

कल्पन्ते कामरामास्फुरदधरसुधागर्वसर्वस्वमोषो-
द्युक्तान्युक्तान्यमीषां रसिकजनमुदे धातुयोषा हि येषाम् ।
श्लाघावेलासु दोलायितनिजमुकुटाकल्पकल्पद्रुसूनो-
ड्डीनालिध्वानतानाकलनपरिमिलच्चारुवीणाभिमाना ॥ 283 ॥

अर्थात् अनङ्ग-सुन्दरी के फड़कते हुए अधरामृत के अभिमान-सम्पत्ति के लूटने में तत्पर, इन भक्तों के प्रवचन सहृदयजनों के आनन्ददायक हैं, क्योंकि जिन भक्तों के प्रशंसा-काल में सरस्वती 'शिर: कम्प द्वारा झूमते हुए अपने मुकुट के आभूषण स्वरूप कल्पद्रुम के पुष्पों के लिए उड़ते भ्रमरों के गुञ्जारमय तान के अनुकरण के कारण अति-मनोहारी रुचिजनक वीणा-गान में तत्पर हो जाती है ।'

ठ. <u>कामशास्त्र का ज्ञान</u>

कवि के लिए नायक नायिकाओं के भावों के घात-प्रतिघात से परिचित होना इनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में अत्यन्त सहायक होता है । विलास-लीला, प्रियजन विरह वर्णन आदि में इस शास्त्र की सहायता कवियों के लिए अपेक्षित होती है । कवि की अपनी प्रतिभा भी इसमें सहयोग देकर अनुपम कुतूहल उत्पन्न करती है, । हाथियों के गण्डस्थल के समान, खुले हुए कुचयुगल, कमल के अभिमान को पराजित करने वाली आँखों से युक्त, 'हाव-भाव आदि में' चतुर चोल देश की स्त्रियों का समूह कामदेव के वाणों को हृदय में धारण करता है ।

अगूढगाढस्तनकुम्भिकुम्भमम्भोजदम्भोदयजैत्रनेत्रम् ।
चित्ते विधत्ते वत चोलदेशस्त्रैणं प्रवीणं रतिकान्तबाणम् ॥ 455 ॥

प्रथम ऋतुकाल के महान् उत्सव पर घर से बाहर हजारों 'स्त्रियाँ' एक साथ मिलकर निर्भीक हो सैकड़ों काम-गाथाओं को कहने वाली चोलदेश की नारियाँ पहाड़ के समान कठोर कुचों के प्रकटन द्वारा निर्दोष मुनि के कठिन धैर्य को भी छुड़ा देती हैं।

नवार्तवमहोत्सवे ननु सहस्रशः संगता-

गृहाद्बहिरशङ्कितं गदितकामगाथाशताः ।

अहार्यकठिनस्तनप्रकटनादनागस्विनो-

मुनेरपि घनां धृतिं चुलुकयन्ति चोलाङ्गनाः ॥ 456 ॥

दिव्य विमान पर स्थित देवाङ्गनाओं के स्तन को हाथ से पकड़े उनके द्वारा दिये हुए नखक्षत से युक्त तेजस्वी वीर पृथ्वी पर स्थित खड्ग को हाथ से अच्छी तरह पकड़े, शत्रु के बाणसमूह से क्षत, युद्धाग्नि में जीवन को हवन कर देने वाले अतिकमनीय शरीर को आनन्द से देखते हैं :-

दीप्रोतिप्रभमाश्रितक्षितितलं दिव्ये विमाने स्थितो-

गाढाश्लिष्टकृपाणपाणि च करग्रस्तामरस्त्रीस्तनः ।

तत्संदत्तनखक्षतो बहुतरप्रत्यर्थिबाणक्षतं

युद्धाग्नौ हुतजीवितं निजमपुर्वीरो मुदा वीक्षते ॥ 380 ॥

युद्ध प्रारम्भ होने पर रक्त से रँगे हुए उस योद्धा पर पतिव्रता रमणी की तरह स्वर्गाङ्गना अनुरक्त हो जाती है । यदि वह योद्धा अत्यधिक बाणों से छिन्नावयव हो जाता है तो 'अमराङ्गना भी काम के मर्मभेदी बाणों से जर्जरित हो जाती है -

रक्ते भटे रणमुखे रुधिरेण तस्मिन् रक्ता भवत्यमरयोषिदनुव्रतेव ।

शूरः स चेदतनुसायकखण्डिताङ्गः साप्युच्चकैरतनुसायकखण्डितेव ॥ 379 ॥

उपर्युक्त श्लोकों में छुपे हुए कुछ द्वन्द्व, हाव भाव आदि, वातावरण नखक्षत, अतिकमनीय शरीरादि कामशास्त्र-विषयक कवि के ज्ञान की सूचना देते हैं। कामोत्तेजित करने वाली रमणियों के सौन्दर्य का वर्णन कवि ने निम्नलिखित श्लोक के माध्यम से किया है .-

तप्तस्वर्णसवर्णमङ्गकमिदं ताम्रो मृदुश्चाधरः

पाणी प्राप्तनवप्रवालसरणी वाणी सुधाधोरणी ।

वक्त्रं वारिजमित्रमुत्पलदलश्रीसूचने लोचने

के वा गुर्जरसुभ्रुवामथवा यूनां न मोहावहाः ? ॥ ।16 ॥

गुर्जर देश की अङ्गनाओं के अङ्ग तप्त सुवर्ण की तरह, अधरोष्ठ लाल एवम् मधुर और हाथ नये पल्लवों के समान सुकुमार, कमल की तरह मुख, कमल के पत्ते की शोभा वाले नेत्र, ऐसे कौन से अवयव हैं जो तरुण युवकों को मोह उत्पन्न नहीं करते ?

श्री वेङ्कटाध्वरि कामशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित हैं। संभोग श्रृङ्गार का कवि ने अपने काव्यग्रन्थ में यत्र-तत्र निरूपण किया है। उनका कामशास्त्र में गहन एवम् सूक्ष्म प्रवेश था।

ड. <u>धर्मशास्त्र-विषयक ज्ञान</u>

श्री वेङ्कटाध्वरि प्राचीन स्मृतियों पर आधारित आश्रम, वर्णाश्रम धर्म के पूर्ण रूपेण अनुयायी हैं। विभिन्न वर्णों के लिए निर्धारित आचरण तथा व्यवहार के समर्थक हैं। तप द्वारा असाधारण सिद्धियों की प्राप्ति में विश्वास रखते हैं। तप के लिए

काम, क्रोध, लोभ और मोह की प्रवृत्तियों पर संयम रखने का योगशास्त्रीय सिद्धान्त उन्हें मान्य है। गृहस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम की चर्चा इस श्लोक में की है:-

भिक्षा कष्टमटन्ति कुक्षिभृतये पादौ गतैः क्लेशय -
न्त्याच्छन्नाः शिथिलैः पटैश्च गृहिणो जीर्णे गृहे शेरते ।
राजत्सूक्ष्मपटाः प्रशस्तशिबिकारूढा गृहिभ्योऽन्नदा
ग्रावव्यूहदृढे मठे स्थितिजुषो धन्या हि संन्यासिनः ॥ 180 ॥

अर्थात् गृहस्थ पेट भरने के लिये भिक्षार्थ भ्रमण करते हैं, चल कर पैरों को कष्ट देते हैं, फटे-चिथड़े वस्त्रों से ढके हुए जीर्ण शीर्ण घरों में निवास करते हैं, और संन्यासी लोग तो गृहस्थों को अन्न देने वाले, सुन्दर सूक्ष्म वस्त्रों से सुशोभित, बड़ी शिविका में आरूढ़, पत्थरों से सुदृढ़ बने मठों में निवास करते हैं, 'अतः' वे धन्य हैं।

महाराष्ट्र वर्णन में कवि ने वर्णाश्रम धर्म का वर्णन कृशानु द्वारा करवाया है, जो कि स्वभावानुसार दोषदर्शी हैं :-

नानाजातिभवा इमे कलिबलादेकीभवन्तो नरा
वैराग्याभिनयं चिराद्विदधतो वर्णाश्रमत्यागिनः ।
निर्धूतानघवैदिकप्रणमना निष्किञ्चना वञ्चना-
दक्षा दिक्षु विदिक्षु कुक्षिभृतये भिक्षाटनं कुर्वते ॥ 148 ॥

अनेक जातियों में उत्पन्न, कलि के प्रभाव से एकत्र सम्मिलित हुए, वर्णाश्रमधर्म के त्यागी, निष्कलंक वैदिकों को प्रणाम न करने वाले, ठगने में चतुर दरिद्र लोग पेट

भरने के लिए विभिन्न दिशाओं में भिक्षाटन करते हैं ।

चतुर्थ आश्रम का सङ्केत प्रस्तुत श्लोक में दृष्टिगोचर होता है :-

गायत्रीं सहसा जहद्भगवतीं यज्ञोपवीतं त्यजन्

मुञ्चन् किंच शिखां विरक्त इव यः संप्राप्ततुर्याश्रमः ।

आरूढश्चतुरन्तयानमभयो हा हन्त देशान्तरे-

ष्वर्थानामुपसंग्रहाय विचरत्येषोऽप्यमीषां गुरुः ॥ 178 ॥

अर्थात् जो सहसा भगवती गायत्री को छोड़कर यज्ञोपवीत को तोड़ कर और शिखा का परित्याग कर, चतुर्थाश्रम को प्राप्त कर वैरागी की तरह चार आदमियों द्वारा ढोने योग्य पालकी पर सवार होकर निर्भय हो दूसरे देशों में धन-सञ्चय के लिए भ्रमण करते हैं, ऐसे व्यक्ति इन माध्वों के गुरु हैं ।

कवि ने एकादशी व्रत का उल्लेख भी अस्मद् आलोच्य चम्पूकाव्य में किया है, जो इस प्रसङ्ग में वर्णनीय है :-

आबालस्थविरं स्थिरं हरिदिने शुद्धोपवासव्रतं

निष्प्रत्यूहमहर्निशं विजयते नारायणाराधनम् ।

श्लाघ्या भागवतेषु भक्तिरमिता श्रद्धा च येषां दृढा

शास्त्रे स्वीयगुरूदिते न चरितं साध्वेषु माध्वेषु किम् ? ॥ 183 ॥

ट. भौगोलिक ज्ञान

श्री वेङ्कटाध्वरि किसी भी वस्तु का काव्योचित वर्णन करने में निपुण हैं। वर्णन की दृष्टि से कवि वेङ्कटाध्वरिजी ने पर्वत, वन, नदी, आश्रम, देश, नगरी, तीर्थों आदि का सूक्ष्मतापूर्वक निरूपण किया है। उनके वर्णन भौगोलिक दृष्टि से काल्पनिक न होकर सजीव है। जिस स्थान का वर्णन कवि ने अपने ग्रन्थ में किया है वहाँ का प्राकृतिक वातावरण, जलवायु का पूरा ध्यान रखकर ही किया है, जो उनके भौगोलिक ज्ञान का परिचय कराता है। वदरिकाश्रम वर्णन में कवि ने वहाँ के प्राकृतिक वर्णन का कितना मनोहारी, सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है, जो कम सराहनीय नहीं है -

इदं बदरिकाश्रमस्थलमिहैष नारायण-
स्तपस्यति नमस्यतां स्थिरतमं तमः शोषयन्।
विकासिधिषणोन्मिषद्विषयवर्जनाः सज्जना
जनार्दनमहर्दिवं भुजगमञ्चमर्चन्त्यमी ॥ 33 ॥

यदत्र जागर्ति शिलासमं हिमं सुशीतला गन्धवहाश्च दुःसहाः ।
जलावगाहाच्चकितो जनस्ततः कुतस्त्वनुष्ठास्यति कर्म निर्मलम्॥

परमहिमयुतत्वात् प्राप्तवैकुण्ठसाम्यं
पदमिदमुपयान्तः पण्डिताः शान्तिमन्तः ।
मुहुरिह समयेषु स्नानहेतोः सरोगा-
स्तदपि भ्रमरोगास्ताक्ष्यकेतोः प्रसादात् ॥ 35 ॥

सभी पहाड़ों से ऊँचा, सुन्दर गुफाओं से सेवित, सज्जनों में सद्व्यवहार के लिए प्रसिद्ध, ऊँचे ऊँचे बाँसों की वृद्धि के उत्पादक, पर्वत के शिखरों में उत्पन्न प्रकाशयुक्त शेषाचल शोभायमान हो रहा है। इस पर्वत पर निश्चित रूप सीतापति रामचन्द्र समझती हुई यह वानर-पङ्क्ति शरण बनाती हुई बार-बार घूम रही है। कितना यथार्थ चित्रण कवि ने वेङ्कटगिरि पर्वत का प्रस्तुत किया है :-

सर्वोत्तुङ्ग: श्रितशुभगुह: साध्वभिख्यातशीलो
भास्वद्वंशोपचयजनक: सानुजस्फूर्तिकोऽयम् ।
एनं नूनं क्षितिभृतमियं जानती जानकीशं
कीशश्रेणी कलय शरणीकुर्वती वर्वरीति ॥ 205 ॥

कवि ने यमुना नदी का अति-मनोहारी वर्णन प्रस्तुत श्लोक में किया है :-

कृष्णाश्लेषविशेषिताऽसितरुचे कालिन्दि तुभ्यं नम:
कुञ्जेभ्य: श्रितताविकाम्बुकणिकापुञ्जेभ्य एषोऽञ्जलि: ।
गोपिभ्य: परिरिप्सया मुररिपोस्तेषु स्थिताभ्यो नति -
नाथायाभिसमासिताय च नमोवाकानधीयीमहि ॥ 123 ॥

वेङ्कटाध्वरि की वर्णनशक्ति के विषय में कथमपि सन्देह नहीं किया जा सकता। उनकी शैली अपने उत्कृष्ट रूप में शान्त और गौरवमयी है, जो निश्चय ही आकर्षक है। वे प्रकृति तथा प्रमदाओं के सौन्दर्य-निरूपण करने और उनका सजीव चित्रण प्रस्तुत करने में सर्वोपरि हैं।

श्री वेङ्कटाध्वरि जी की काव्य-प्रतिभा

क. भाषा

वेङ्कटाध्वरिजी प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार है। भाषा की विशुद्धिकरण के लिए व्याकरणशास्त्र का पूर्ण ज्ञान नितान्त आवश्यक होता है। श्री वेङ्कटाध्वरिजी व्याकरणशास्त्र में निष्णात हैं। उनका यह ज्ञान प्रशंसनीय है। श्री वेङ्कटाध्वरिजी अपने शब्द-चमत्कार तथा शब्द-क्रीडा की प्रवृत्ति के कारण श्लेषालङ्कार और यमक जैसे अलङ्कारों के सुप्रयोग से अपनी भाषा को दुरुह बना देते हैं। विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य में अनेक ऐसे सुभाषित वचन भरे पड़े हैं जो आजकल भी दृष्टान्तस्वरूप व्यवहार में प्रयोग किये जाते हैं। उदाहरणार्थ -

कस्मिन् ग्रामे पुनरनडुहां कर्षणक्लेशहानिः ॥[1]

अर्थात् किस गाँव में बैलों को हल खींचने से छुटकारा है? दूसरे व्यापारों को छोड़कर पत्नी का मुख देखता हुआ जो पुरुष घर पर ही आलसी व्यक्ति की तरह पड़ा रहता है, वह मूर्ख दरिद्र हो जाता है।[2]

तुङ्गप्रस्तर ------ कः ॥[3]

अर्थात् भला कौन कठोर पत्थर को तोड़ने का इच्छुक व्यक्ति निःशङ्क होकर टांकी को छोड़कर कमल की कोमल पंखुड़ियों के विषय में विचार भी करेगा?

---

1. विश्वगुणादर्शचम्पू, श्लोक संख्या 27, पृष्ठ संख्या 32.
2. वही, श्लोक संख्या 120, पृष्ठ संख्या 102.
3. वही, श्लोक संख्या 44, पृष्ठ संख्या 49.

अपने समय में प्रचलित लोक-भाषा के शब्दों का भी प्रयोग कवि ने किया है। जैसे - "मुस्ताम्" महाराष्ट्रभाषा में प्रसिद्ध नागरमोथा शब्द है। उनकी भाषा में कठिनता का एक कारण अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी है। विश्वगुणादर्शचम्पूकार प्रसङ्गानुसार कठिनतम और सरलतम भाषा के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। सरल भाषा का उदाहरण -

प्रतिनगरमिहारामाः प्रत्यारामं पचेलिमाः क्रमुकाः।
प्रसवाः प्रतिक्रमुकमप्युत्सर्पति मधुततिः प्रतिप्रसवम् ॥ 166 ॥

प्रतिमधुबिन्दु श्लिमिलिन्दाः प्रेङ्खन्ति प्रतिमिलिन्दमारावाः।
प्रत्यारावं सुदृशां मदा उदाराः प्रतिमदं मदनः ॥ 167 ॥

कठिन भाषा के उदाहरण -

नीत्वा राधिकया निशां मुररिपुः प्रातर्गृहानागतस्-
त्वं मा भूरपराधिकः पुनरिति प्रोक्तोऽपि पूर्वं मया।
कस्मादेवमभूरिति श्रितरुषा निर्भर्त्सितो लीलया
त्वाद्वाचैव सराधिको हमिति तां व्यामोहयन्मायया ॥ 126 ॥

त्रिदशाकलितस्नेहस्फूर्तिमाश्रि शमयंस्तमः।
भाति दीपप्रकाशोऽत्र शरणागतबोधकृत् ॥ 286 ॥

श्लेषालङ्कार में निबद्ध श्लोक कवि के शब्द-चमत्कार तथा शब्द-क्रीडा का स्पष्ट परिचायक हो रहा है :-

श्यामोत्तुङ्गपयोधरोज्ज्वलरुचिस्तन्वन्भुजङ्गान्वयं

श्रीरङ्गस्थलनित्यवासरसिक: शृङ्गारिणामग्रणी: ।

प्राकारप्रकरान्तरस्थितिमती या राजपद्मिन्यहो-

नि:शङ्कं परपुरुषश्चिरमसौ निद्राति तत्सन्निधौ ॥ 402 ॥

ख. शैली

श्री वेङ्कटाध्वरिजी ने अपने चम्पूकाव्य ग्रन्थ में वैदर्भी, गौडी, तथा पाञ्चाली इन तीनों रीतियों का सुन्दर समन्वय किया है । प्राय:श्लोक गौडी और पाञ्चाली में ही उपनिबद्ध किये गये हैं । कवि ने छोटे-छोटे शब्दों, गम्भीर अर्थ को प्रकट करने का सामर्थ्य, पुनरुक्ति आदि दोष से रहित वैदर्भी शैली को अपनाया है । इस सन्दर्भ में वैदर्भी का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है :-

जह्नोरपत्यं जगत: पवित्रं

कलत्रमब्धेस्तनय: कलात्मा ।

कन्या तु धन्या कमला बिभर्ति

जामातृभावं जगदीश एव ॥ 111 ॥

गौडी रीति के प्रयोग में तो कवि सिद्धहस्त हैं ही । अस्मद् आलोच्य चम्पू काव्य ग्रन्थ गौडी रीति में उपन्यस्त श्लोकों की भरमार है :-

गौडी रीति का बाहुल्य होने के कारण यद्यपि उनकी भाषा दुरूह हो गयी है तथापि उनके मधुरता, लालित्य में कोई कमी नहीं आने पायी है :-

गाम्भीर्यैकावलम्बे गरिमनिवसतौ कान्तिकुल्यातटाके

कल्याणाम्भोजकल्ये निरवधिकसमासारकल्लोलराशौ ।

चातुर्यौदार्यलक्ष्मीविहरणशरणे सद्गुणौघान् बभूवे

देवे श्रीवेङ्कटेशे न जिगणयिषता केन वा ग्लानवाचा ॥ 20। ॥

पाञ्चाली शैली का उदाहरण अवलोकनीय है .-

सा सर्वतोमुखवती तटिनी सरागा

मूर्तिर्विधेरिव बिभर्ति सरस्वतीं च ।

भेदस्त्वयान् बलिभिदश्चरणारबिन्दा-

दाद्या बभूव चरमा किल नाभिपद्मात् ॥ 77 ॥।

कवि की वैदर्भी रीति गौडी रीति की ओर झुकी हुई है अत: उसमें पाञ्चाली रीति के ।द्वित्रिचतुरै: पदै: समासे पाञ्चाली। के ही लक्षण विशेष रूप से परिलक्षित होते हैं ।

ग. गुण

काव्य में गुणों की स्थिति अपरिहार्य है । गुण काव्य को सरस, मधुर एवम् रुचिकर बनाते हैं । कवि ने माधुर्य तथा ओज गुण का प्रचुर प्रयोग किया है। प्रसाद गुण का प्रयोग भी कवि के काव्य ग्रन्थ में हुआ है । माधुर्य गुण का प्रयोग श्रृङ्गार

वर्णन में किया है और वीर रस में ओज गुण का समावेश है । प्रसाद गुण सर्वत्र दृष्टि-गत होता ही है । माधुर्य का रसास्वादन कराने वाला श्लोक द्रष्टव्य है .-

सुमनोजनतास्थानं स्थाने सद्रूपशोभनी सेयम् ।
सरताभ्युदयविधात्री शुभकाञ्ची साधु रञ्जयति चेत: ।। 266 ।।

ओज व्यञ्जक वर्णों से युक्त होने के कारण इन श्लोकों में ओज गुण स्पष्ट रूप से प्रस्फुटित हो रहा है :-

प्रचण्डविश्वकण्टकप्रखण्डनैकपण्डित:
पतङ्गमण्डले वसन् य एष पाण्डवप्रिय: ।
अकुण्ठरीतिक: प्रसन्नपुण्डरीकलोचन:
स कुण्डलीन्द्रभूधरप्रकाण्डमण्डनायते ।। 203 ।।

इतस्तावद्ग्रावव्यतिकर इत: सन्त्यजगरा
इतो लुण्टाकानां समुदय इत: कण्टकचय: ।
इतो व्याघ्रा उग्रा ज्वलनजनका वेणव इतो
वनं संलक्ष्यैतन्मम इदमहो मोहभयते ।। 208 ।।

प्रसाद गुण युक्त यह श्लोक दर्शनीय है :-

शंतमुखमणिस्तोमश्यामं शयानमहीश्वरे
शशिसखमुखं राजीवाक्षं समुन्नतनासिकम्।

महितचरणं धातुः पत्न्या महस्तमसः परं
हृदि लगतु मे बिम्बोष्ठं तद्यथोक्तकृदाह्वयम् ॥ 280 ॥

घ. <u>रसाभिव्यक्ति</u>

श्री वेङ्कटाध्वरिजी मुख्यतः श्रृङ्गार रस के कवि हैं। विश्वगुणादर्श चम्पू काव्य में कवि ने श्रृङ्गार रस को प्रधान रस के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने वीर रस, अद्भुत रस, भयानक रस, बीभत्स रस, शान्त रस आदि का भी प्रयोग किया है। श्रीरङ्गनगरी वर्णन में संयोग श्रृङ्गार रस का चरमोत्कृष्ट स्वरूप देखने को मिलता है :-

श्यामोत्तुङ्गपयोधरोज्ज्वलरुचिस्तन्वन्भुजङ्गान्वयं
श्रीरङ्गस्थलनित्यवासरसिकः श्रृङ्गारिणामग्रणीः ।
प्राकारप्रकरान्तरस्थितिमती या राजपद्मिन्यहो-
निःशङ्कं परपूरुषश्चिरमसौ निद्राति तत्सन्निधौ ॥ 402 ॥

अर्थात् रमणियों के उन्नत कुचों पर अत्यधिक आसक्तियुक्त (काले-काले घुमड़ रहे बादलों की तरह जगमगाती कान्ति वाला), विलासियों के सरदार, नाट्यशाला में सदैव रहने में प्रसन्न (श्रीरङ्ग क्षेत्र का निरन्तर निवासी), यह जार (पुरुषोत्तम), नट-विटों का साहचर्य (शेषशयन) करता हुआ, पाषाण आदि के घेरों के बीच में रहने वाली (शैवालादि) के समूह से घिरे घेरों के मध्य में स्थित), जो राजपद्मिनियाँ (कमलिनी) हैं उनके पास में निर्भय बहुत देर तक सोता रहता है, आश्चर्य है।

वीर रस का निरूपण कवि ने अतिकुशलता के साथ इस श्लोक में किया है :-

पिबन्तु मदिराममी परितुदन्तु देशानहो
हरन्तु परसुन्दरीरपलपन्तु वेदानपि ।
तथापि च मृधाङ्गणे तृणवदेव मुक्त्वा तनुं
हठाद्विदधते मरुत्पुरकपाटिकोद्घाटनम् ॥ 164 ॥

अर्थात् रणकुशल हज़ारों से भी अधिक योद्धा युद्ध के लिये एक साथ मिल जायँ, आश्चर्य है कि तुर्कदेशीय यवनों में से एक भी अश्वारूढ योद्धा अपनी सेना में से वेग से क्रोध करके खड्ग नचाता हुआ निकलता है 'तो' वे सभी रक्षक-हीन, दीन जन तृण खाने और काँपने लगते हैं ।

ङ. <u>छन्द-योजना</u>

कवि की छन्द योजना में पर्याप्त वैविध्य है । उन्होंने अपने चम्पू काव्य ग्रन्थ में लगभग सभी प्रसिद्ध छन्दों का निरूपण किया है । शार्दूलविक्रीडित, वंशस्थ, उपजाति, औपछन्दसिक, वसन्ततिलका, शिखरिणी, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, पृथ्वी, शालिनी, हरिणी, आर्या, भुजङ्गप्रयातम् , स्वागता, नर्दटकं, द्रुतविलम्बित, अश्वघाटी, रथोद्धता आदि छन्दों का निरूपण कवि ने विश्व गुणादर्शचम्पू काव्य ग्रन्थ के 596वें श्लोकों में किया है । छन्दों के प्रयोग में हमारे कविश्री अत्यन्त कुशल हैं । उनका प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित है । इस प्रसङ्ग में एक श्लोक प्रस्तुत है :-

मातस्ते मधुसूदनप्रणयिनि । प्रातः सरोजच्छटा-
S S S I I S I S I I I S   S S I S S I S
म   स ज स   त   त
मुष्टीमुष्टिविचक्षणे शुभगुणे दृष्टी नमस्कुर्महे ।

अष्टाभिः किल दृष्टिभिश्च तिसृभिर्जुष्टाः सहस्रेण वा -

देवा द्वादशभिश्च यद्विषयतामेवार्थयन्ते क्षणम् ॥ 430 ॥

वैयाकरणवर्णनम् और वैदिकवर्णनम् में भी कवि ने इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग किया है -

पातञ्जले विष्णुपदापगायाः पातं जले चापि नयेऽवगाहम् ।
S S I S S I I S I S S   S S I S S I I S I S S
त   त   ज गु गु   त   त   ज गु गु
आचक्षते शुद्धिदमा प्रसूतेरा च क्षते रागमधोक्षजे च ॥ 572 ॥

श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने औपछन्दसिक छन्द का प्रयोग भी काव्य में कहीं-कहीं पर किया है । सर्वप्रथम औपछन्दसिक छन्द के दर्शन अयोध्यावर्णनम् में होते हैं । प्रस्तुत श्लोक में गन्धर्व कुमार विश्वावसु सभी प्रकार से वन्दनीय अयोध्यानगरी को नमस्कार कर रहे हैं -

भवसागरशोषणेन पश्यच्चरणान्तःपुरजीवनौषधेन ॥
I I S I I S I S I S S I I S S I I S I S I S S
6 मात्रा र य   8 मात्रा • र य

रजसा रघुनाथपादभाजा रचितांहःप्रशमामिमां नमामि ॥ 37 ॥

च. <u>अलङ्कार-विधान</u>

कवि का प्रिय अलङ्कार श्लेषालङ्कार रहा है । अत: विश्वगुणादर्शचम्पूकाव्य में अधिकांशत: श्लेष का ही बाहुल्य है । इसके अतिरिक्त अन्य शब्दालङ्कारों तथा अर्थालङ्कारों का भी प्रयोग कवि ने किया है जो उनकी काव्यशास्त्रीय प्रतिभा का द्योतक है । उनके समय तक रीति, वक्रोक्ति, अलङ्कार तथा ध्वनि आदि वादों की प्रतिष्ठापूर्णरूप से हो चुकी थी । अत: वेङ्कटाध्वरि जी ने अपने काव्य में इनका निर्वाह सफलतापूर्वक किया है । कवि ने शब्दालङ्कारों के अन्तर्गत अनुप्रास, यमक, श्लेष का सुन्दर विन्यास किया है । श्लेषालङ्कार की शब्द चमत्कार प्रदायिनी छटा तो समस्त चम्पूकाव्य में अवलोकनीय है । उदाहरणार्थ -

> श्यामोत्तुङ्गपयोधरो ------------------ ।
> नि:शङ्कं परपूरूषश्चिरमसौ निद्राति तत्सन्निधौ ॥ 402 ॥

> रङ्गेशसेवको युक्तं नार्त्तरीतिं भजेदिति ।
> चित्रमेतदसङ्गीति व्यपदेशं यदश्नुते ॥ 405 ॥

श्लेष वक्रोक्ति का प्रयोग कवि ने अत्यन्त सहजता एवम् सरसतापूर्वक किया है जो श्लाघनीय है :-

> अंसे सलीलमधिरोप्य शुकं स्वहस्ताद्
> गोप्या भयाकुलदृश: कुतुकी मुकुन्द: ।

'असङ्गतं शुकमिहापनयेति' वाचं

तस्या निशम्य स तदंशुकमाचकर्ष ॥ 125 ॥

अनुप्रास अलङ्कार के समस्त भेदों का प्रयोग कवि ने अति सहजतापूर्वक किया है । इस परिप्रेक्ष्य में अनुप्रासालङ्कार के एक उपभेद लाटानुप्रास का उदाहरण द्रष्टव्य है :-

श्रीरङ्गे शोभते यस्य श्रीरङ्गे शोभते च यः ।

नमोऽहं कलये तस्मै न मोहं कलये ततः ॥ 400 ॥

अर्थालङ्कारों का भी कवि ने समुचित प्रयोग किया है । उपमा अलङ्कार का उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है -

उद्गगच्छदच्छतमगुच्छलसच्छिरस्का-

स्तीरद्वयेऽपि तरवः प्रतिभान्त्यमुष्याः ।

एनां तरीतुमिह यत्नजुषः स्वशीर्ष-

बद्धावदातवसनाः पथिका इवामी ॥ 395 ॥

छ. <u>प्रकृति चित्रण</u>

श्री वेङ्कटाध्वरि जी मानव चित्रण में ही नहीं वरन् प्रकृति चित्रण में भी कुशल हैं । प्रकृति तथा युवतियों की सहज सुन्दरता के सूक्ष्म निरीक्षण की वेङ्कटाध्वरि

जी में अद्भुत शक्ति है । कवि ने गुजरात देश की रमणीयों के सौन्दर्य का अप्रतिम वर्णन इस श्लोक के द्वारा प्रस्तुत किया है जिसे पढ़कर सहृदयपाठकों के समक्ष गुर्जरदेशीय अङ्गनाओं का सौन्दर्य नेत्रों के समक्ष साकार हो जाता है-

तप्तस्वर्णसवर्णमङ्गकमिदं ताम्रो मृदुश्चाधर:
पाणी प्राप्तनवप्रवालसरणी वाणी सुधाधोरणी ।
वक्त्रं वारिजमित्रमुत्पलदलश्रीसूचने लोचने
के वा गुर्जरसुभ्रुवामवयवा यूनां न मोहावहा: ॥ 116 ॥

पक्षीराज गरूड का अति सुन्दर वर्णन कवि ने किया है-

स्वज्येष्ठप्रेर्यहयांश्रितरथधृणिमन्मण्डलस्थाच्युताप्यं
सन्मार्गं पक्षवातोद्गतधरणिरजश्छन्नमेतज्जवेन ।
कल्लोलैरुल्लसद्भि: प्रचलजलनिधे: क्षालयन्चूर्णदर्प:
प्रेङ्खडिडण्डीरखण्डच्छलकुसुमकुलैर्मण्डयत्यण्डजेन्द्र: ॥ 434 ॥

वायु संचालित विशाल पत्तों तथा फलो से युक्त नारियल वृक्ष नास्तिक साधुओं की तरह शोभायमान हो रहे हैं । कवि ने कितना सुन्दर प्रकृति का मानवीकरण प्रस्तुत किया है-

लोलद्दीर्घदला बृहत्तरफला वातोल्लद्धूलिभि-
श्छन्ना: प्रांशुतमा: स्फुरन्ति पुरतो ये नारिकेलद्रुमा: ।

धूमास्वादनपात्रधारिण इमे द्राघिष्ठच चज्जटा

भस्मोद्धूलितमूर्तयो विवसना: पाखण्डिभेदा इव ॥ 449 ॥

कर्णाटदेश की अति मनोहारी झांकी कवि ने इन श्लोकों में प्रस्तुत की है जो उनकी वर्णन कुशलता को प्रकट कर रही है-

प्रतिनगरमिहारामा: प्रत्यारामं पचेलिमा: क्रमुका: ।

प्रसवा: प्रतिक्रमुकमप्युत्सर्पति मधुतति: प्रतिप्रसवम् ॥ 166 ॥

प्रतिमधुबिन्दु मिलिन्दा: प्रेङ्खन्ति प्रतिमिलिन्दमारावा: ।

प्रत्यारावं सुदृशां मदा उदारा: प्रतिमदं मदन: ॥ 167 ॥

माधुर्य गुण से ओत-प्रोत चञ्जीपुरी का वर्णन प्रस्तुत करने वाला मनोहारी, आह्लादक श्लोक प्रस्तुत है-

खञ्जीकृताखिलहृदां रमणीमणीनाम्

मञ्जीरमञ्जुतरशिञ्जितरञ्जितेन ।

चञ्जीपुरी युवगणेन चकास्ति पूर्णा

संजीवितोग्रपरिवञ्चितपञ्चबाणा ॥ 373 ॥

समुद्र के मध्य में तैरते हुए लहरों के वेग से उठे हुए फेनो से लाञ्छित शरीर वाले ये नल-सेतु के पहाड़ समुद्र में छिपे हुए मन्दराचल पर मानो हंस रहे हैं क्या? सेतु का अति सुन्दर वर्णन कवि ने अधोलिखित श्लोक में किया है-

लङ्कापुरे पङ्क्तिमुखेन रुद्धां भूमेः सुतां भूमिभृतो नुबन्धात् ।
पतिं पुनः प्रापयितुं पयोधौ सेतुभवन्तः स्वयमाप्लवन्ति ॥
पयोधिमध्ये प्लवमानमूर्तयस्तरङ्गवेगार्पितफेनचिहिन्ताः ।
हसन्ति किं मन्दरमन्तरर्णवं निमग्नमेते नलसेतुभूधराः ॥ 476 ॥

ज. वर्णन कौशल

काव्य को रुचिकर बनाने के लिए कवि वर्णन-कौशल का विशेष रूप से ध्यान रखता है । श्री वेङ्कटाध्वरि किसी भी वस्तु का काव्योचित वर्णन करने में कुशल हैं । श्री वेङ्कटाध्वरि अत्यन्त सरस कवि थे । विश्वगुणादर्श चम्पू में उन्होंने जिन-जिन वस्तुओं का वर्णन किया है उनमें उनकी मनोवृत्ति स्वयं रमी हुई जान पड़ती है । उनकी कल्पना शक्ति इतनी यथार्थ थी तथा उनकी बहुज्ञता इतनी अधिक थी कि कोई भी बात उनकी लेखनी से अवास्तविक ढंग से निकलती नहीं । उनकी सदुक्तियों में हृदय स्पर्श करने की क्षमता है । वे एक अत्यन्त सरस हृदय से निकली जान पड़ती हैं । अपने ग्रन्थ में कवि ने आदि से लेकर अन्त तक अनेक वर्णन प्रस्तुत किये हैं चाहे वह सूर्य-वर्णन हो, नदी वर्णन हो, आश्रम वर्णन हो, कवि वर्णन अथवा देश वर्णन हो कवि ने उसका अत्यन्त सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है, जिन्हें पढ़कर वर्णित वस्तु नेत्रों के समक्ष साकार हो जाती है । बदरी नाथ धाम की भयावह शीत का अति सजीव एवम् मनोरम वर्णन कवि ने अपने इस श्लोक में प्रस्तुत किया है-

यदत्र जागर्ति शिलासमं हिमं सुशीतला गन्धवहाश्च दुःसहाः ॥
जलावगाहाच्चकितो जनस्ततः कुतस्त्वनुष्ठास्यति कर्म निर्मलम् ॥ 34 ॥

परमहिम्युतत्वात् प्राप्तवैकुण्ठसाम्यं

पदमिदमुपयान्तः पण्डिताः शान्तिमन्तः ॥

मुहुरिह समयेषु स्नानहेतोः सरोगा-

स्तदपि भ्रामरोगास्ताक्ष्र्यकेतोः प्रमादात् ॥ 35 ॥

काञ्चीनगरी के महात्म्य को प्रकट करने वाला श्लोक प्रस्तुत है-

इयं काञ्ची काञ्ची करिशिखरिणः कापि नगरी

गरीयस्यां यस्यां विहरणजुषां पक्ष्मलदृशाम् ।

मुखं दर्शं दर्शरजनिकरमादर्शममल-

स्वरूपं के पङ्केरूहमपि न निन्दन्ति रसिकाः ॥ 265 ॥

कवि के निवास स्थान अरशाणिपाल नामक ग्राम का मनोहारी दृश्य आँखों के सामने उपस्थित हो रहा है-

कर्णानन्दकरस्फुरन्मधुकरव्याहारबाहापगा-

रोधःशाखिमरन्दतुन्दिलपयःकल्याणकुल्यावृतः ।

आत्रेयान्वयविद्वदध्वरहविर्गन्धानुबन्धापितः

क्षेमो भात्यरशाणिपाल इति हि ग्रामो भिरामोऽभुवि ॥ 356 ॥

यही नहीं कवि ने मीमांसा शास्त्र के विद्वान् मुनि रामानुज के गुणों का वर्णन अति स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया है-

कामादिवैरिगणभीमानवद्यनिजनामाभिलाषगरिमा

वैमानिकार्यसमभूमा मतौ वचनसीमातिलङ्घिमहिमा ।

श्रीमाननूनकलसोमाननो विमलधामावमानितरविः

क्षेमाणि जृम्भयतु भूमावमुत्र च स रामानुजो यतिपतिः ॥ 224 ॥

विश्वगुणादर्शचम्पू में वर्णनोंका प्राचुर्य एक महती विशेषता है । वर्णनाधिक्य होने पर भी काव्य ग्रन्थ के प्रसङ्गों में कहीं भी शिथिलता नहीं आने पायी है । पृथक-पृथक वस्तुओं का वर्णन होने पर भी प्रत्येक वर्णन आपस में सम्बद्ध से प्रतीत होते हैं और वे कथानक को गति देने में पूर्णतः समर्थ हैं । कवि का भौगोलिक ज्ञान अति विस्तृत था अपने इस ज्ञान का कवि ने समुचित प्रयोग अपने अमूल्य रत्न रूपी काव्य ग्रन्थ में किया है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हमारे आलोच्य काव्य विश्वगुणादर्शचम्पू के प्रणेता श्री वेङ्कटाध्वरि जी वर्णन कौशल में निष्णात हैं, उनकी वर्णन चातुरी अद्वितीय है ।

झ. <u>पात्र चित्रण</u>

श्री वेङ्कटाध्वरि कृत विश्वगुणादर्शचम्पू में पात्रों की संख्या नाममात्र की है । इसमें केवल दो ही पात्र हैं प्रथम कृशानु जिसे प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, स्थान आदि में केवल दोष ही दृष्टिगोचर होता है, गुण नहीं । दूसरा पात्र विश्वावसु है जिसे प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, स्थान आदि में गुण ही गुण दिखलायी देते हैं । इस प्रकार से

अस्मद् आलोच्य चम्पू काव्य ग्रन्थ में प्रथम प्रमुख पात्र कृशानु गन्धर्व कुमार हैं जो कि दोष द्रष्टा हैं द्वितीय प्रधान पात्र विश्वावसु गन्धर्व कुमार हैं जो कि गुण द्रष्टा हैं आदि से लेकर अन्त तक चलने वाले केवल दो ही प्रमुख पात्र हैं कृशानु और विश्वावसु इनके माध्यम से कवि ने और भी पात्रों का वर्णन कराया है जिसकी गणना पात्र चित्रण प्रसङ्ग में करना उचित नहीं है क्योंकि उनका तो अपरोक्ष रूप से प्रसङ्गवश वर्णन किया गया है। कवि का ध्यान प्रात्रों के चारित्रिक विभिन्नता एवम् विशेषता की ओर अधिक गया है। पात्रों के गुणों के अनुरूप ही कवि ने अपने कथानक को निबद्ध किया है। श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने विश्वावसु गन्धर्व कुमार का चरित्र अतिशय उदात्त एवम् आदर्शोन्मुख प्रस्तुत किया है। इसमें कवि श्री को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने कृशानु और विश्वावसू का जो चरित्र अपने चम्पू काव्य ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। वह उनके पात्र चित्रण कौशल का द्योतक है।

विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य में प्रयुक्त सूक्तियाँ

कवि श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने अपने चम्पूकाव्य में सूक्तियों का प्रयोग अत्यल्प किया है, किन्तु फिर भी जिन सूक्तियों का प्रयोग कवि श्री ने किया है वे अत्यन्त गम्भीर अर्थ की प्रतीति कराने वाली तथा नीतिपरक हैं।

गुर्जर देश का वर्णन करते समय कवि ने वहाँ के आलसी व्यक्तियो पर कटाक्ष किया है। कितनी सुन्दर उक्ति है-

व्यापारान्तरमुत्सृज्य वीक्षमाणो वधूमुखम्।
यो गृहेष्वेव निद्राति स दुर्मतिः ॥ 120 ॥

छोड़कर
अर्थात् दूसरे व्यापारों को पत्नी का मुख देखता हुआ जो पुरूष घर पर ही आलसी की तरह पड़ा रहता है वह मूर्ख दरिद्र हो जाता है ।

2. कठोरः कुठारः किलैकोऽपि तिग्मो विनिर्भेत्तुमीष्टे विषद्रूननेकान् ॥ 142 ॥

अर्थात् दृढ़ एवम् तीक्ष्ण धार वाला एक ही कुठार बहुत से विषवृक्षों को काटनेमेंसमर्थ है । उसी प्रकार से ब्राह्मणों का एक भी उत्तम उपकार सहस्रों पापों को शीघ्र ही विनाश करने के लिए प्रयाप्त होता है ।

भगवान् शङ्कर गज चर्म पहने अथवा चिर काल तक श्मशान में निवास कर ले या सर्पराज धारण कर लें तब भी वे सुन्दर हैं-

3. परीतं शैवालैरूषितमपि पङ्केषु मलिना-
मलीनां बिभ्राणं कमनीयं न कमलम् ॥ 316 ॥

अर्थात् शैवाल से चारों ओर घिरा, कीचड़ में रहता है, काले-काले भ्रमरों को धारण किये हुए भी कमल सुन्दर नहीं है क्या? अर्थात् अत्यन्त सुन्दर है ।

(कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् में इन पंक्तियों की समभाव पंक्ति दृष्टिगत होती है-"किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्")

कवित्वस्य गाम्भीर्यमौदार्यमृद्धेः प्रभुत्वस्य शौर्यं गुरुत्वस्य विद्याम् ।
महावंश्यतायाः सदाचारपूर्तिं महत्त्वस्य सौलभ्यमाकल्पमाहुः ॥ 344 ॥

अर्थात् कवित्व के लिये गम्भीरता, सम्पत्ति के लिये उदारता, प्रभुत्व के लिये सूरता, आचार्यत्व के लिये विद्या, उत्तम वंश में उत्पन्न होने वालों के लिए सदाचार से पूर्णतः, सर्वश्रेष्ठत्व के लिये सुलभता आभूषण कही गयी है ।

5. न जातु श्रीमतां हानिः, प्रत्युत तद्द्वेष्टॄणां पिशुनानामेव भवन्त्यनर्थाः ॥
[172 गद्य]

अर्थात् कभी भी सज्जनों की हानि नहीं होती वरन् उनसे द्वेष करने वाले चुगुलखोर अनर्थ को प्राप्त होते हैं ।

6. दूसरों के द्रव्य के हरण करने की इच्छा से प्रवृत्त दुष्ट व्यक्ति स्वयं ही नष्ट हो जाता है । क्योंकि-

सुलभः शलभस्य किं न दाहः पृथुदीपग्रसनाय जृम्भितस्य ॥ 410 ॥

अर्थात् बड़े दीप के भक्षण के लिये शलभ [कीट विशेष] का दाह सुलभ नहीं है क्या ?

7. हरिं बिभ्रच्चेतस्यनतिसुभगोऽपि स्तुतिपदं
न सद्रूपोप्यन्तःकरणधृतनारीस्तनभरः ॥ 244 ॥

अर्थात् कुरूप मनुष्य भी हृदय में हरि को धारण करते हुए स्तुति का पात्र है, सुन्दर रूप-शील भी अन्तःकरण में नारी के स्तनसौन्दर्य को धारण करने वाला नहीं है ।

8. गङ्गा की तरङ्गावली और चन्द्र के अमृत प्रवाह से निरन्तर भीगे मस्तकवाले शिव का अभिषेक व्यर्थ ही लोग करते हैं क्योंकि -

शम्भोस्तृप्ताय तोयस्य ददत्यप: के ॥ 322 ॥

अर्थात् जल से तृप्त के लिए कौन जल देता है ।

9. आश्रयितव्यो नरपतिरार्जयितव्यानि भूरिवित्तानि ।
आरब्धव्यं वितरणमानेतव्यं यशो दशस्वपि दिशासु ॥ 16 ॥

अर्थात् राजा का आश्रय करना चाहिये, बहुत सा धन एकत्रित करना चाहिये, दान करना चाहिये, और यश दशों दिशाओं में प्राप्त करना चाहिये ।

10. इच्छेद्यस्तु सुखं निवस्तुमवनौ गच्छेत्स राज्ञ: सभां
कल्याणीं गिरमेव संसदि वदेत्कार्यं विदध्यात्कृती ।
अक्लेशाद्धनमर्जयेदधिपतेरावर्जयेद्वल्लभान्
कुर्वीतोपकृतिं जनस्य जनयेत् कस्यापि नापक्रियाम् ॥ 12 ॥

अर्थात् जो मनुष्य पृथिवी पर सुख पूर्वक रहने की इच्छा करे वह चतुर व्यक्ति राजा की सभा में जाये, उस सभा में हितकारिणी ही बात बोले, अपना कार्य सिद्ध करे, बिना क्लेश के ही धनोपार्जन करे, राजा के प्रिय जनों को सन्तुष्ट करे, उपकार करे, किसी व्यक्ति की भी बुराई न करे ।

11. कलियुग में संसार में असंख्य प्राणियों में कोई एक व्यक्ति वेद विहित मार्ग पर श्रद्धायुक्त होकर जो कुछ भी आचरण करता है, तो वह प्रशंसा का पात्र है । क्योंकि -

श्लाघ्यं मितापमपि किं न मरौ सरश्चेत् ॥ 95 ॥

अर्थात् मरूस्थल में थोड़े जल वाला भी तालाब प्रशंसनीय नहीं है क्या ?

12. हि 'सन्धिमिच्छन्ति साधवः' इति ॥ 99 वाँ गद्य ॥

अर्थात् साधुजन सन्धि चाहते हैं ।

13. तुङ्गप्रस्तरभङ्गलिप्सुरिह निश्शङ्कं तु टङ्कं त्यजन्
सङ्कल्पं कलयेन पङ्कजदलादाशप्रसङ्गाय कः ॥ 44 ॥

अर्थात् इस संसार में भला कौन कठोर पत्थर को तोड़ने का इच्छुक मनुष्य निर्भय होकर टांकी को छोड़कर कमल की कोमल पंखुड़ियों के विषय में विचार भी करेगा? ।

14. गव्यं दुग्धमपास्य पास्यति? जनः को वा यवागूरसम् ॥ 43 ॥

अर्थात् कौन ऐसा मनुष्य है 'जो' गो-दुग्ध को छोड़कर यवागू रस का पान करेगा? ।

15. कलिकालिका अपि मानुषा दूषणीया: । यत: सर्वकालमपि केचन सन्त्येव साधव: ॥ 11 वाँ गद्य ॥

सभी कलियुगी मनुष्य दोष देने योग्य नहीं, क्योंकि सभी काल में सज्जन होते ही हैं ।

16. कस्मिन् ग्रामें पुनरनडुहां कर्षणक्लेशहानि: ॥ 27 ॥

भला किस गाँव में बैलों को हल खींचने से छुटकारा है ।

17. क्लेशत्यागकृते पितेन करणव्यूहेन देहेन च

स्वानर्थं बत जन्तुरार्जयति चेन्मन्तुर्नियन्तु: कुत: ॥

शास्त्रे शत्रुजयाय नैजगुरुणा दत्तेथ तेनैव चेत्

पुत्रो हन्ति निजं वपु: कथय रे तत्रापराधी तु क:? ॥ 23 ॥

सांसारिक दु:खों के नाशार्थ समर्पित इन्द्रिय-समूह शरीर द्वारा प्राणी यदि अपने अनर्थों का संग्रह करता है तो ईश्वर का अपराध कहाँ? । अपने पिता द्वारा शत्रुविजय के लिये शस्त्र दे देने पर यदि पुत्र उसी से ही अपने शरीर का उच्छेदन करता है तो कृशानु ! वहाँ अपराधी कौन है? बताओ ।

18. उत्पाद्य स्वयमुत्तमान् फलतरूनुल्लास्य चारूदकै-

रून्मत्तोऽपि किमुच्छिनत्ति जगतिच्छित्वापि किं नन्दति? ॥ 15 ॥

संसार में पागल भी अच्छे-अच्छे फल देने वाले वृक्षों को उगा कर, स्वच्छ जलों से बड़ा करके, स्वतः उखाड़ देता है क्या? उखाड़ कर भी प्रसन्न होता है क्या ?

19. सङ्गः कस्य हि न स्वदेत मनसे माध्वीक-मृद्वीकयोः ॥ 4 ॥

मधु-द्राक्षा का संयोग किसके मन को रूचिकर नहीं लगता ।

20. व्याधिव्यूहप्रतिहतिकृतां व्यक्तमुग्रौषधानां
कायारोग्यप्रणयिहृदयैः काटवं मर्षणीयम् ॥ 145 ॥

रोग-समूह को नाश करने वाली, उग्र औषधियों की सुप्रसिद्ध कटुता, शरीर की स्वस्थता के अनुरागी हृदय द्वारा कथमपि सहनीय है ।

---------::0::---------

अध्याय - तृतीय

काव्य में वस्तु - वर्णन

काव्य में वस्तु-वर्णन

कवि अपने काव्य ग्रन्थों में कुछ विशेष वस्तुओं का यथोचित वर्णन करता है, और यही वर्णन काव्य का अति आवश्यक तत्त्व है। जिसके अभाव में काव्य का रोचक होना संभव नहीं है। काव्य को लोकरंजक बनाने के लिए ही कवि वर्णन कौशल का विशेष रूप से ध्यान रखता है। "यदि केवल कथा प्रवाह को ही ध्यान में रखकर पदार्थ का नाम मात्र के लिए उल्लेख कर दिया जाय, तो इतिहास और काव्य में क्या अन्तर होगा।[1] इसलिए उपर्युक्त दोष से काव्य को बचाने के लिए कवि अपने ग्रन्थ में विभिन्न वस्तुओं का वर्णन करता है, जिसके द्वारा सहृदय पाठकगण कवि द्वारा काव्य में वर्णित, वन, नदी, पर्वत, आश्रम आदि वस्तुओं के विषय में यथोचित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। और काव्याध्ययन में आनन्द की अनुभूति करते हैं।

वर्णन की दृष्टि से कवि वेङ्कटाध्वरि जी ने पर्वत, वन, नदी, गह्वर, आश्रम, रमणीक स्थलों का सूक्ष्मतापूर्वक यथोचित वर्णन किया है। किसी भी वस्तु या स्थल का वर्णन आप्रासङ्गिक नहीं प्रतीत होता। उनके वर्णन इतने

---

1. डॉ० किरण टण्डन, महाकवि ज्ञानसागर के काव्य - एक अध्ययन,
   - पृष्ठ संख्या - 197.

अधिक सजीव हैं कि ऐसा प्रतीत होता है वह सब नेत्रों के समक्ष घटित हो रहा है । उनकी यही वर्णन-चातुरी उन्हें महाकवियों की श्रेणी में अलङ्कृत करने के लिए पर्याप्त है ।

(क) प्राकृतिक सुषमा का चित्रण

विश्वगुणादर्श चम्पू के प्रणेता श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने प्रकृति का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्मता और सजीवता से किया है । अपनी कोमल भावनाओं को उन्होंने सुन्दर उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेषादि अलङ्कारों, रसों तथा छन्दों के माध्यम से व्यक्त किया है । उनके प्राकृतिक चित्रण चित्ताकर्षक और आह्लादक हैं । उन्होंने पर्वत, नदी, वन, गह्वर, तीर्थस्थान, आश्रम आदि को जो प्राकृतिक स्वरूप अपने काव्य में दर्शाया है तथा जितनी सूक्ष्मता पूर्वक उनको वर्णित किया है उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय वह कम है । उनके एक-एक वर्णन प्रासङ्गिक और सजीव हैं । उनके वर्णन में कहीं भी नीरसता नहीं आने पायी हैं । इनकी वर्णन चातुरी की एक विशेष बात यह है कि मैं जिस वस्तु का वर्णन करते हैं उसके साथ उससे सम्बन्धित किंवदन्तियाँ या घटनाओं की तरफ भी संकेत करते चलते हैं । जो इनके वर्णन को और भी अधिक सुन्दर तथा स्वभाविक बना देता है ।

सम्प्रति अपने आलोच्य चम्पू काव्य ग्रन्थ के प्राकृतिक स्थलों को पर्वत, वन, नदी, आश्रम, तीर्थ, देश, नगर आदि की दृष्टि से पृथक्-पृथक् विवेचन प्रस्तुत करेगें ।

पर्वत

कवि ने अपने चम्पू काव्य में लगभग सभी प्रसिद्ध पर्वतों का वर्णन किया है । जिनमें से वेङ्कटगिरि, यदुगिरि, घटिकाचल, करिशिख, हिमाद्रि, पन्नगनग, सह्याद्रि, कैलाश और सुवर्णभूधर विशेष हैं ।

"वेङ्कटगिरिवर्णनम्" में कवि ने वेङ्कटगिरि की विशेषताओं को श्लेष उत्प्रेक्षा अलङ्कार से मंडित कर पाठकों के हृदय को चमत्कृत कर दिया है । साथ ही उससे सम्बन्धित कथाओं और घटनाओं की ओर भी इंगित किया है । जो एक अनूठा प्रयास है-

सर्वोत्तुङ्ग: श्रितशुभगुह: साध्वभिख्यातशीलो
भास्वद्वंशोपचयजनक: सानुजस्फूर्तिकोऽयम् ।
एनं नूनं क्षितिभृतमियं जानती जानकीशं
कीशश्रेणी कलय शरणीकुर्वती वर्वरीति ॥ 205 ॥

उपर्युक्त श्लोक में जहाँ वेङ्कटगिरि की भव्यता वर्णित की गयी है वहीं निषादराज गुह द्वारा सेवित सूर्यवंश को बढ़ाने वाले सीतापति श्री रामचन्द्र जी की संभावना व्यक्त की गयी है क्योंकि वानर पंक्ति शरण बनाती हुई बार-बार घूम रही है ।

प्रस्तुत श्लोक में वेङ्कटगिरि के आश्चर्यों को "श्लेष मूलकविरोधाभासालंकार

के माध्यम से प्रदर्शित किया है-

प्रकाशबहुपादवत्यपि फणिक्ष्माभृत्यदः

प्रकाममवलोक्यते परममन्यदत्यद्भुतम् ।

निजोरसि पयोधरश्चिरमचञ्चलां विद्युतं

पयोधरमुरस्यसावपि बिभर्त्ति नित्यं निजे ॥ 206 ॥

अर्थात् जगमगाती हुई छोटी-छोटी पहाड़ियों से युक्त [स्पष्ट लक्षित बहुचरण युक्त], शेषशैल [सर्पराज] में इन बातों से भिन्न भी अत्यधिक आश्चर्य को हम यथेच्छ देखते हैं, जलद सदैव अपने वक्षःस्थल पर स्थिर विद्युत को धारण करता है, यह विद्युत् भी नित्य ही अपने वक्षःस्थल पर मेघ [कुच-द्वन्द्व] को धारण करता है ।

"घटिकाचलवर्णनम्" में कवि ने घटिकाचल पर्वत का उल्लेख किया है । नृसिंह भगवान् का निवास पर्वत घटिकाचल इस समय कण्ठ के ऊर्ध्वभाग में सिंह के शुभ्र दाँतों की कान्तिमयी विचित्रज्योत्स्ना द्वारा मणिमय पर्वत के सदृश विश्वावसु के नेत्रों को आनन्द दे रहा है-

कण्ठोपरि कण्ठीरवशुचिदंष्ट्रारुचिविचित्रचन्द्रिकया ।

स्फटिकाचल इव नयने घटिकाचल एष संप्रति धिनोति ॥ 211 ॥

अपि च -

घटिकाचलं वपुरवेक्ष्य तत्त्वतो घटिकाचलं समधिरूह्या भक्तितः ।

नरकेसरीन्द्रचरणौ विलोकयन् नरके सरिष्यति न जातु मानवः ॥ 218 ॥

"कर्णाटदेशवर्णनम्" में कवि ने यदुगिरि की महिमा का वर्णन किया है जो अवलोकनीय है-

दुरितमवनतानां दुर्निरोधं निरून्धन्

सितमतिभिरतन्द्रैः सेव्यमानो मुनीन्द्रैः ।

यदुगिरिरयमिन्धे यत्र नारायणात्मा

विलसति किल हर्षं नीलमेघः प्रवर्षन् ॥ 170 ॥

विनम्रजनों के दुर्निरोध पाप को नष्ट करते हुए, निर्मल बुद्धि वाले आलस्य रहित मुनीन्द्रों द्वारा सेवित यह यदुगिरि जगमगा रहा है, जिस पर्वत पर विष्णु रूप घनश्याम आनन्द की वर्षा करते हुए सुशोभित हो रहे हैं ।

यदुगिरितटागारा स्वाराजमौलिपरिस्फुर-

न्मणिगणमहोधारा नीराजिताङ्घ्रिसरोरूहा ।

नवजलधराकारा नारायणाह्वयभूषिता

निरवधिदयासारा सा राजते परदेवता ॥ 171 ॥

यदुगिरि के शिखर के निवासी, स्वर्गाधिपति इन्द्र के मस्तक में प्रकाशमान रत्नसमूहों की तेज परम्परा से प्रदीप्त चरणारविन्द, नूतन मेघ की आकृति वाले अपरिमित दया युक्त वह नारायण नाम से विभूषित परदेवता शोभित है ।

श्रीमदेकाम्रेश्वरवर्णनम् और वेदान्तिवर्णनम् में कवि ने कैलाश पर्वत का नामोल्लेख किया है ।

शशाङ्कमौलि: सहकारमूले कैलासवासो स इहाविरासीत् ।
यस्याग्निभूर्दृक च तनूभवश्च योषाऽपि भूषाऽपि च नागराजी ॥ 320 ॥

तद्विष्णो: परमं पदं हि तमस: पारे सदा पश्यता
सान्द्रं सूरिगणेन निर्मलमहानन्दात्मकं शाश्वतम् ।
अप्रेप्सन्त इमे समेतमनिशं वेतालभूतालिभि-
लोकं भीकरमञ्चितुं व्यवसिता माहेश्वरं नश्वरम् ॥ 519 ॥

"काञ्चीवर्णनम्" में कवि ने तीन-चार श्लोकों में करिशिखर का वर्णन किया है । उनमें से एक श्लोक उद्धृत है-

य एष राजत्कटक: सदालिभि: समाश्रित: शोभनदानसंपदा ।
स नित्यशुद्धं वरदं-तमुद्वहन्यथार्थनामा गजभूभृदीक्ष्यते ॥ 268 ॥

अर्थात् शोभन निम्नभाग युक्त (सुन्दर गण्डस्थल वाला), सज्जनों की पङ्क्तियों (भ्रमरावलियों) एवं कल्याणकारी दान-सम्पत्ति (सुन्दर दान मद की समृद्धि) से युक्त सामने वाला पर्वत सतत निर्मल (श्वेतवर्ण) प्रसिद्ध वरद नामक भगवान् (शोभन दातों) को धारण किये हुए अपने नाम को चरितार्थ करने वाला वह हस्तिशैल (गजराज) दिखाई दे रहा है ।

काञ्ची वर्णनम् में वेगवती नदी की प्राकृतिक सुषमा अवलोकनीय है-

माधुर्याध्ययनोपसन्नमधुनिष्यन्दानि मन्दानिल-

व्यालोलत्तटचारुभूरुहशिखानिष्पातिपुष्पाधिकैः ।।

डिण्डीरैः स्मितवन्ति पान्ति दुरिताद्वेगापगायाः स्फुर-

द्वेगोद्वेजितवाजिमेधमखकृद्धेधांसि पाथांसि नः ॥ 267 ॥

नदी : वेङ्कटाध्वरि जी ने अपनी कृति विश्वगुणादर्श चम्पू में कावेरी, वाहा, कृष्णा, करूडा, गोदावरी, ताम्रपर्णी, तुङ्गा, पयोनदी, पिनाकिनी, वेगवती, सरयू, सरस्वती व सिन्धु इन सभी नदियों का यथोचित वर्णन किया है किन्तु गङ्गा नदी, वाहा नदी, यमुना नदी, कावेरी तथा ताम्रवर्णी नदियों का पृथक-पृथक सोपानों में वर्णन किया है । यहाँ पर कुछ विशिष्ट नदियों के ही उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

"यमुना नदी वर्णनम्" में विश्वावसु यमुना नदी का वर्णन दोषद्रष्टा कृशानु के समक्ष कर रहा है-

कृष्णाश्लेषविशेषिताऽसितरुचे कालिन्दि तुभ्यं नमः

कुञ्जेभ्यः श्रिततावकाम्बुकणिकापुञ्जेभ्य एषोऽञ्जलिः ।

गोपीभ्यः परिरिप्सया मुररिपोस्तेषु स्थिताभ्यो नति-

र्नाथायाभिरूपासिताय च नमोवाकानधीयीमहि ॥ 123 ॥

यमुने ! कृष्ण के आलिङ्गन से बढ़ी हुई कृष्णवर्णा कान्तिवाली तुझे नमस्कार । लगे हुए तुम्हारे जलकण राशि से युक्त लतागृहों को यह नमस्क्रिया । मुरारि के

आलिङ्गन की इच्छा से उन कुञ्जों में स्थित गोपियों को नमस्कार तथा इन गोपियों द्वारा पूजित श्रीकृष्ण के लिए नमस्कार-वचन बार-बार कह रहा हूँ।

उपमा अलङ्कार के माध्यम से गङ्गा नदी के गुणों का कवि ने अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत श्लोक में किया है-

सरस्वत्याऽऽश्लिस्टा सवितृतनयालिङ्गितझरा

स्फुरद्गुच्छस्वच्छा प्रकृतिरिव भाति त्रिगुणभाक् ।

तथाप्येषा दोषापनयनपटुः स्वाकलनया

प्रगल्भं संसारं प्रशमयति कंसारिपदभूः ॥ 80 ॥

अर्थात् मधुरता का अध्ययन करने के लिए संलग्न मधुबिन्दुओं से उक्त मन्द पवन द्वारा चञ्चल दोनों किनारों के वृक्षों के अग्रभाग से झरते हुए पुष्पों से बढ़े हुए फेनों द्वारा मानों मुस्कुराते हुए अश्वमेधयज्ञ कर्त्ता ब्रह्मा को उढते हुए वेग से दुःखी करने वाले वेगवती के जल हमको पापों से बचायें।

सरस्वती ⟨नदी⟩ द्वारा आलिङ्गित, सूर्यपुत्री ⟨यमुना⟩ के सङ्गत-प्रवाह वाली, विकसित पुष्पगुच्छों की तरह स्वच्छ, विष्णु के चरण-कमल से उत्पन्न गङ्गा सत्त्व-रजस्तमोमयी प्रकृति की तरह ⟨शुक्ल-रक्त-कृष्ण तीनों गुणों से युक्त⟩ दिखाई देती है तथापि समस्त दोषों को दूर करने में समर्थ यह स्वकृत-सेवा द्वारा विस्तृत जगत् ⟨जन्मादि प्रपञ्च⟩ को शान्त कर देती है।

कावेरी नदी के तट भाग पर स्थित प्राकृतिक सुषमा का वर्णन इतना

हृदयग्राही और लोमहर्षक कवि से बन पड़ा है कि वह सहृदय पाठक गणों के चित्र को कुछ क्षण के लिए बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है । "कावेरीनदी वर्णनम्" से उद्धृत गद्य भाग द्रष्टव्य है-

एषा खलु दोषाकुलसकलमनुजकुलसकलकलुशोषणबद्धकङ्कणा, निजतटनिबिडतमबकु-लधवलकुलतिलकामलकाविरलसरलकुन्दचन्दनमन्दारसहकारकेरलकेसरसरलबदरकदम्बकगम्भीरजम्बीरजम्बूसंपूर्णपर्णकुसुमपलाशसमुद्धकपित्थलोध्रनीरन्ध्रशिलीन्ध्रपाटलपटलजटिलक्रमुक-प्रमुखविटङ्कविटपिमञ्जरीपुञ्जमञ्जरीजृम्भदुरुतरभ्रमभ्रामकरमकरन्दरससुग्रसनतात्पर्यपर्यट-दभ्रविभ्रमालम्बरोलम्बनिकुरम्बकरम्बिततया कलिन्दनन्दिनीप्रतिच्छन्दतामनुविन्दन्ती, निशाकलितविशालसुरतदशाभवश्रमशालिक्षितीशालिनिशान्तकृशाङ्गीजनमज्जनवेलादो-लायितपृथुलहारप्रत्युप्तमुक्ताफलरुचिनिचयपरिचयरचितया शुचितया पीताम्बरपदाम्बु-रुहसम्भवसरिदम्बुडम्बरं विडम्बयन्ती ॥ 166 गद्य भाग ॥

कावेरीनदी के तट पर स्थित पुष्पों से युक्त वृक्ष ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों मस्तक पर स्वच्छ वस्त्रों को बाँधे हुए पथिक नदी को पार करने के लिए उद्यत हो-

उद्गच्छदच्छतमगुच्छलसच्छिरस्का-

स्तीरद्वये पि तरवः प्रतिभान्त्यमुष्याः ।

एनां तरीतुमिह यत्नजुषः स्वशीर्ष-

बद्धावदातवसनाः पथिका इवामी ॥ 395 ॥

वन

कवि वेङ्कटाध्वरि जी छन्दों की योजना जहाँ पर्वत, नदी, आश्रम आदि के प्रसङ्ग में कविता कामिनी को सरसता और संगीतमयता प्रदान करने वाली, कर्णमधुर तथा मनमोहनी है वहीं वन वर्णन में भी कम चित्ताकर्षक नहीं है । उन्होंने वन की गहनता, भयानकता तथा प्राकृतिक स्वरूप को उजागर करने के लिए भयानकता, वीरता व ओज को प्रकट करने वाले पञ्चचामर छन्द तथा ओज व्यञ्जक वर्णों का अवलम्बन लिया है । जिससे वन वर्णन अत्यन्त रोमाञ्चक और स्वभाविक बन गया है ।

इस दृष्टि से वनवर्णनम् का यह श्लोक सराहनीय है-

पुर: पुरो घनं वनं वने वने महागिरि-

महागिरौ महागिरौ विराजते गुहागृहम् ।

गुहा गृह गुहागृहे विहारतत्परो हरि-

हरौ हरौ निरङ्कुश: कृतेभसाध्वसो ध्वनि: ॥ 207 ॥

अर्थात् आगे-आगे गहन जंगल, हरएक जंगल में बड़े-बड़े पहाड़, प्रत्येक पहाड़ों में गुफायें, हर गुहागृहों में क्रीडा-आसक्त सिंह, प्रति सिंहों में स्वच्छन्द, हाथियों का भय उत्पादक गर्जन सुशोभित हो रहा है ।

और भी-

गहनगुहाविहारिहरिपाणिरूहाभिहत-

द्विरदशिरस्तटोद्गलितमौक्तिकसंहतिभिः ।

अहह विभूषितैरिह चिरं विहरन्ति सुखं

सममबलाजनैरतिविलासपराः शबराः ॥ 210 ॥

अर्थात् यहाँ वनस्थित गुफाओं में विहरणशील सिंहों के नखों से विदारित हाथियों के गण्डस्थल से गिरते हुए मोतियों के समूह से अलङ्कृत स्त्रियों के साथ अत्यन्त विलास तत्पर ये शबर बहुत काल पर्यन्तसुखपूर्वक विहार करते हैं ।

प्रस्तुत श्लोक में कवि ने जंगल का अत्यन्त सजीव और स्वभाविक वर्णन किया है ऐसा प्रतीत होता है मानो हम अकस्मात् वन में पहुँच गये हों और हमारे नेत्र वन के वातावरण को निर्निमेष देख रहे हैं-

इतस्तावद्ग्रावव्यतिकर इतः सन्त्यजगरा

इतो लुण्टाकानां समुदय इतः कण्टकचयः ।

इतो व्याघ्रा उग्रा ज्वलनजनका वेणव इतो

वनं संलक्ष्यैतन्मन इदमहो भ्रांतिमयते ॥ 208 ॥

अर्थात् इधर तो पत्थरों का समूह, दूसरी जगह अजगर, इधर लुटेरों का जत्था, इधर काँटों का जमघट, अन्यत्र भयंकर व्याघ्र, इधर अग्नि का उत्पादक बाँस, इस तरह के जंगल को देखकर यह मेरा मन भ्रम में पड़ जाता है ।

वृक्ष वर्णन

कवि ने अपने इस चम्पूकाव्य में वृक्षों की भी मनोहर झाँकी प्रस्तुत की है। जो बरबस सहृदय पाठक वृन्द का मन आकृष्ट कर लेती हैं। कवि ने प्रकृति का मानवीकरण किया है तथा उसमें मानवीय भावनाओं को आरोपित किया है।
प्रकृति का दर्शन कवि ने सूक्ष्मतापूर्वक किया है। चोलदेशवर्णनम् में कवि ने नारियल वृक्षों की शोभा को नास्तिक साधुओं के रूप में वर्णित किया है-

लोलद्दीर्घदला बृहत्तरफला वातोल्ललद्धूलिभि-
श्छन्ना: प्रांशुतमा: स्फुरन्ति पुरतो ये नारिकेलद्रुमा:।
धूमास्वादनपात्रधारिण इमे द्राघिष्ठच कच्छटा
भस्मोद्धूलितमूर्तयो विवसना: पाखण्डिभेदा इव ॥ 449 ॥

वायुसंचालित लम्बे-लम्बे पत्तों से युक्त बड़े-बड़े फलो वाले, हवा से उड़ाई धूल से आच्छादित, अत्यन्त ऊँचे सामने जो नारियल के वृक्ष हैं, वे लम्बी-लम्बी चंचल जटावाले, चिलम पात्र धारी (हुक्का) शरीर पर भस्म लपेटे, दिगम्बर, नास्तिक साधुओं की तरह शोभायमान हो रहे हैं।

विश्वावसु गन्धर्व कुमार को नारियल वृक्षों की अवर्णनीय शोभा का रस पान कराते हुए कह रहा है कि "कावेरी नदी के किनारे पर उत्पन्न होने वाले बड़े-बड़े फलों से युक्त मानों सूर्यमण्डल के निवासी, उनकी ओर चले आते हुए

देव [नारायण] के लिए उक्ति पूर्वक नवीन उपहारों को लेकर खड़े हुए व्यक्ति की भाँति आकाश को स्पर्श करने वाले इन नारियल वृक्षों को देखो । कितनी मनमोहक छवि इस श्लोक में प्रतिविम्बित हो रही है-

अभ्रंलिहानिह पश्य मरूद्वृधाया
रोधोरूह: पृथुफलानिह नारिकेलान् ।
आगच्छते सवितृमण्डलमाश्रिताय
देवाय भक्तित इवात्तनवोपहारान् ॥ 448 ॥

सुन्दर नागवल्लियों से प्रगाढ़ अनुराग के होने के कारण मानों सुन्दरियों से आलिङ्गित कामी जनो की तरह पूगवृक्ष आनन्दित हो रहे हैं । कितना मनोहर दृश्य कवि ने उपमा अलङ्कार के द्वारा प्रदर्शित किया है-

नागवल्लीमतल्लीभि: सुमुखीभिरिवादरात् ।
परिरब्धा: प्रमोदन्ते क्रमुका: कामुका इव ॥ 447 ॥

इतना ही नहीं विषपान कर्त्ता भगवान् शंकर के मन्दिरों से अत्यन्त सघन मध्यभाग वाला वायु के सञ्चरण काल में झूमते हुए आम्र के नूतन पल्लवों से युक्त चोल देश जगमगा रहा है-

व्यालाधिपेशयशुभस्थलभूषितेला:
क्ष्वेडाशनायतनसान्द्रतरान्तराला: ।

चोला विभान्ति पवमानविहारवेला-

दोलायमानसहकारनवप्रवाला: ॥ 446 ॥

पुन्नाग वृक्षों की शोभा इस श्लोक में दर्शनीय है-

पद्मिन्याकर्षोचितगन्धप्रसवान् प्रपश्य पुन्नागान् ।

अतनूग्राशुगकलनात्सम्प्राप्तानधिकरेणुसम्पर्कम् ॥ 450 ॥

अर्थात् प्रखर एवं भयङ्कर वायु §कामदेव के बाणों§ के सम्बन्ध से अत्यधिक धूलि धूसरित §हस्तिनी-सुन्दरियों§ के सम्पर्क प्राप्त कमलिनी §पद्मिनी स्त्री§ के आकर्षण योग्य गन्ध उत्पन्न करने वाले पुन्नाग के वृक्षों §गुणों, उत्तम पुरुषों§ को देखो ।

वेगवती नदी का वर्णन कवि ने वृक्षों को ध्यान में रखते हुए किया है-

माधुर्याध्ययनोपसन्नमधुनिष्यन्दानि मन्दानिल-

व्यालोलत्तटचारुभूरुहशिखानिष्पातिपुष्पाधिकैः ॥

डिण्डीरैः स्मितवन्ति पान्ति दुरिताद्वेगापगायाः स्फुर-

द्वेगोद्वेजितवाजिमेधमखकुद्वेधांसि पाथांसि नः ॥ 267 ॥

वेङ्कटगिरि का वर्णन करते समय कवि ने जो प्राकृतिक छटा का निरूपण किया है वह अकथनीय है-

सुरभितमतमालस्तोमपुष्यद्रसाल-

प्रकरतिलकसालप्रेष्ठसुष्ठुद्रुजाल: ।

श्रितसमवनशील: श्रीशलीलानुकूल:

शिथिलितभवमूल: सेव्यतां शेषशैल: ॥ 191 ॥

अत्यन्त सुगन्धित तमालवृक्ष के समूह प्रतिदिन बढ़ते हुए आम के वृक्षों के समूह क्षुरक-साल आदि मुख्य सुन्दर वृक्ष समूह, आश्रितों के संरक्षण शील, विष्णु की क्रीडा के अनुकूल, संसार की माया को शिथिल करने वाले इस वेङ्कटाचल का आश्रय स्वीकार करो ।

<u>पक्षी वर्णन</u>

कवि वेङ्कटाध्वरि जी ने कहीं-कहीं पर पक्षियों का इतना अधिक सजीव वर्णन किया है ऐसा प्रतीत होता है कि उनका साकार रूप नेत्रों के समक्ष उपस्थित हो गया हो । और हम उसका रसास्वादन निर्निमेष नेत्रों से कर रहें हों । इस कथन की सत्यता का साक्षात्कार हमें श्रीरङ्गनगरी वर्णनम् के इस श्लोक में हो रहा है-

स्वज्येष्ठप्रेर्यहर्याश्रितरथघृणिमन्मण्डलस्थाच्युताप्यं

सन्मार्गं पक्षपातोद्गतधरणिरजश्छन्नमेतज्जवेन ।

कल्लोलैरुल्लसद्भि: प्रचलजलनिधे: क्षालयन्घूर्णदर्प:

प्रेङ्खड्डिण्डीरखण्डच्छलकुसुमकुलैर्मण्डयत्यण्डजेन्द्र: ॥ 434 ॥

अर्थात् पक्षों की हवा से उठे हुए पृथ्वी के रज कणों से आच्छादित, अपने ज्येष्ठ भ्राता (अरूण) द्वारा हाँके गये घोड़ों के आश्रित रथ वाले सूर्य के मण्डल में स्थित विष्णु भगवान् से प्राप्त आकाश मार्ग को इस पंख के वेग से अत्यधिक चञ्चल समुद्र की उठती लहरों द्वारा धोते हुए, क्षुब्ध समुद्र-जल से निकलते हुए फेन खण्ड के व्याज पुष्पवृन्दों से यह गरूड पक्षिराज शोभित हो रहा है ।

इसी प्रकार एक अन्य श्लोक में भी पक्षिराज गरूड का वर्णन दिखायी देता है-

> यद्वीक्षा धैर्यरक्षां किल पुलकभृतां दैवतानां
>
> सेवासंमर्दकाले गिरिशफणिगणाद्विभ्यतामभ्यतानीत् ।
>
> सोऽयं गाङ्गेयपृथ्वीधरवरशिखरच्छायदायादकाय-
>
> श्छिन्दन्वृन्दं रिपूणां कलयतु कुशलं छान्दसो नः शकुन्तः ॥ 435 ॥

सर्पों के समूह से डरते हुए भय से रोमाञ्चित पलायमान देवताओं की धैर्य पूर्वक रक्षा करता है । सुवर्ण-पर्वत के उत्तम शिखरों की छाया के सम्भागी शरीरयुक्त वह वेदप्रतिपाद्य प्रसिद्ध पक्षी गरूड हमारे शत्रु-समूह को छिन्न-भिन्न करते हुए कल्याण करें ।

(ख) काव्य में देश-बदरी-तीर्थ-पुरी-सेतु वर्णन

तीर्थ वर्णन

विश्वगुणादर्शचम्पू में कवि ने अनेकों प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों का यत्र-तत्र वर्णन

किया है । उनकी वर्णन शैली इतनी सरस, भावपूर्ण तथा अलौकिक है कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे-सहृदय पाठक गण उन तीर्थ स्थानों पर पहुँचकर बरबस उसके सौन्दर्य और माहात्म्य का नेत्रों द्वारा रसास्वादन कर रहें हों । कवि ने कल्पना द्वारा उनको साकार रूप प्रदान कर दिया हो ऐसा भ्रम पैदा हो जाता है । बदरीकाश्रम वर्णन में कवि ने वहाँ की जलवायु तथा प्राकृतिक वातावरण का ऐसा सजीव वर्णन किया है कि नेत्रों के समक्ष बदरीनाथ धाम का दृश्य उपस्थित हो जाता है-

"यदत्र जागर्ति शिलासमं हिमं सुशीतला गन्धवहाश्च दुःसहाः ॥
जलावगाहाच्चकितो जनस्ततः कुतस्त्वनुष्ठास्यति कर्म निर्मलम् ॥ 34 ॥

परमहिमयुतत्वात् प्राप्तवैकुण्ठसाम्यं
पदमिदमुपयान्तः पण्डिताः शान्तिमन्तः ॥
मुहुरिह समयेषु स्नानहेतोः सरोगा-
स्तदपि भ्रामरोगास्ताक्ष्र्यकेतोः प्रसादात् ॥ 35 ॥

इन श्लोकों में कवि ने बदरिकाश्रम का यथार्थ स्वरूप प्रतिपादित किया है । जगन्नाथ धाम का वर्णन भी अत्यन्त सजीव है। जगन्नाथ तीर्थ के माहात्म्य का द्योतक है-

यत्तीरे पुरुषोत्तमस्थलमिदं यक्षाप्सरः किन्नर-
श्रेष्ठैर्नित्यमधिष्ठितं भगवतः सान्निध्यसौख्यास्पदम् ।

अत्र त्यक्तवताम्सून् करगता मुक्तिस्तदास्तामहो

देहो दाहविनाकृतो प्यविकृत: काष्ठादिवत्तिष्ठति ॥ 112 ॥

अर्थात् जिसके किनारे पर यक्ष-अप्सरा किन्नरादि श्रेष्ठ देवों से नित्य सेव्यमान नारायण के सामीप्य से सुखों का स्थानभूत यह जगन्नाथ का स्थान है। इस क्षेत्र में प्राणों को छोड़ने वालों को मुक्ति हस्तगत है, इसे तो जाने दो, आश्चर्य है कि-शरीर अग्निदाह किये बिना भी विकृत न होता हुआ काष्ठ आदि की तरह स्थित रहता है।

कवि ने श्रीरंग क्षेत्र में स्थित भगवती तीर्थ का उल्लेख श्रीरङ्गनगरी वर्णन में किया है। जो यहाँ पर दर्शनीय है-

रङ्गक्षेत्रमिदं रमेशितुरभिव्यक्तिस्थलेष्वादिमं

तीर्थं सैव मरूद्वृधा भगवती यां तोष्ठवीति श्रुति: ।

सर्वात्मा नगरस्य जगतां निर्वाहको नायको

वासश्चेदिह लभ्यते जगति को वैकुण्ठमुत्कण्ठते ? ॥ 407 ॥

देश वर्णन

श्रीवेङ्कटाध्वरि-जी ने अपने विख्यात इस चम्पू काव्य के स्थान-स्थान पर अनेक देशों का उल्लेख किया है। बङ्ग, अङ्ग, मिथिला, गौड, कलिङ्ग, कश्मीर, कैकय, यवन आदि अनेक देशों का तो उन्होंने अपने श्लोकों में मात्र नामोल्लेख

किया है किन्तु अयोध्या, काशी, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्णाट, आन्ध्र आदि देशों का विस्तृत वर्णन किया है । इन देशों के वर्णन में कवि ने वहाँ के रहन-सहन, आचार-विचार, वेषभूषा, पूजा-पाठ, देवताओं आदि का अत्यन्त स्वाभाविक यथार्थ चित्रण किया है जिससे प्रतीत होता है कवि ने उन देशों को काफी समीप से देखा है और समझा है । जो उनके भौगोलिक ज्ञान का परिचायक है । महाराष्ट्र देश के लोग अतिथि सेवा परायण हैं ऐसा इस श्लोक से ज्ञात हो रहा है-

महाराष्ट्राभिख्यो मधुरजलसान्द्रो निरूपमः
प्रकाशो देशोऽयं सुरपुरनिकाशो विजयते ।
गृहस्था यत्रामी गुणजलधयः केऽपि विभवैः
समृद्धाः श्रद्धातो मुहुरतिथिपूजां विदधते ॥ 132 ॥

महाराष्ट्र देश की सेना का वर्णन निम्न श्लोकों में कवि ने किया है जिससे स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है कि महाराष्ट्रदेशीय सेना अत्यन्त शक्तिशाली और शत्रुओं का विनाश करने वाली है-

मायाचुञ्चुतया भयावहगतिः प्रत्यर्थिपृथ्वीभुजां
माहाराष्ट्रभटच्छटा रणपटुर्नो पर्यटाद्येत चेत् ।
देव-ब्राह्मणवर्गनिग्रहकृतो देशांस्तुरुष्का इमे
निष्प्रत्यूहमनोरथा वितनुयुर्निर्देव-भूमीसुरान् ॥ 144 ॥

अर्थात् युद्धकुशल शत्रुभूत राजाओं में भय की उत्पादक गति वाली महाराष्ट्र

देश की वीरों की छटा छल व्यापार से बारम्बार विचरण न करती रहे तो देवब्राह्मणों को नष्ट करने वाले, निर्विघ्न-मनोरथ, ये तुरुष्क देशीय राजा 'सभी देश को' देव ब्राह्मणविहीन कर दें ।

गुर्जरदेशीयवर्णन में कवि ने गुजरात देशीय अङ्गनाओं के यौवन-सौन्दर्य का अप्रतिम वर्णन किया है जो काव्य सौन्दर्य को द्विगुणित कर रहा है-

तप्तस्वर्णमङ्गकमिदं ताम्रो मृदुश्चाधर:
पाणी प्राप्तनवप्रवालसरणी वाणी सुधाधोरणी ।
वक्त्रं वारिजमित्रमुत्पलदलश्रीसूचने लोचने
के वा गुर्जरसुभ्रुवामवयवा यूनां न मोहावहा:? ॥ 116 ॥

अर्थात् गुर्जर देश की अङ्गनाओं के ये अङ्ग तप्त काञ्चन की तरह, अधरोष्ठ लाल एवं मधुर और हाथ नये पल्लवों के सदृश सुकुमार, कमल की तरह मुख, जलज के पत्ते की शोभा वाले नेत्र ऐसे कौन अवयव हैं जो तरूण जनों को मोह नहीं उत्पन्न करते ?

गुर्जर देश की रमणियाँ ही नहीं वरन् युवक भी कमआकर्षक और सुन्दर नहीं हैं-

सकर्पूरस्वादुक्रमुकनववीटीरसलस-
न्मुखा: सर्वश्लाघापदविविधदिव्याम्बरधरा: ।

लसद्रत्नाकल्पा घुमघुमितदेहाश्च घुसृणै-

युर्वनो मोदन्ते युवतिभिरमी तुल्यरतिभिः ॥ 115 ॥

अर्थात् कर्पूरयुक्त मधुर पूगीफल के सहित नूतन पान-पट्टी के रस से सुशोभित मुख युक्त, सभी लोगों से प्रशंसनीय दिव्य वस्त्रों को धारण करने वाले, सुन्दर मणियों के आभूषण से युक्त कुंकुम से सुवासित शरीर वाले ये तरूण समान अनुरागवाली युवतियों के साथ आनन्द ले रहे हैं ।

कर्णाट देश का वर्णन करते समय कवि ने वहाँ के समस्त सौन्दर्य को इन श्लोकों में मानों मोतियों के सदृश गूँथ दिया हो । इस सन्दर्भ में दो श्लोक यहाँ पर प्रस्तुत हैं-

प्रसवाः प्रतिक्रमुकमप्युत्सर्पंति मधुततिः प्रतिप्रसवम् ।

प्रतिनगरमिहारामाः प्रत्यारामं पचेलिमाः क्रमुकाः ॥ 166 ॥

प्रतिमधुबिन्दु मिलिन्दाः प्रेङ्खन्ति प्रतिमिलिन्दमारावाः ॥

प्रत्यारावं सुदृशां मदा उदाराः प्रतिमदं मदनः ॥ 167 ॥

यहाँ हरेक नगरों में उपवन, प्रत्युपवन में पाकाभिमुख सुपारी के वृक्ष, प्रत्येक पूगी के वृक्षों पर पुष्प, हर पुष्पों पर मकरन्द-बिन्दु-कदम्ब फैल रहा है । प्रत्येक मधुविन्दु पर मधुप घूम रहे हैं, हर भ्रमरों में गुञ्जार, प्रति गुञ्जारों में रमणियों के मधुर विलास, हर विलासों में मनसिज 'जग' रहा है ।

कर्णाट देश वाली आस्तिक जनों का वर्णन कवि ने अपने इस श्लोक में किया है जो वर्णनीय है-

आबालस्थविरं स्थिरं हरिदिने शुद्धोपवासव्रतं
निष्प्रत्यूहमहर्निशं विजयते नारयणाराधनम् ।
श्लाघ्या भागवतेषु भक्तिरमिता श्रद्धा च येषां दृढा
शास्त्रे स्वीयगुरूदिते न चरितं साध्वेषु माध्वेषु किम् ॥ 183 ॥

<u>पुरी वर्णन</u>

देश, नगर, ग्राम आदि के वर्णन के साथ ही साथ कवि ने अनेक स्थानों पर चञ्जीपुरी, रङ्गपुरी, भूतपुरी आदि का दिव्य वर्णन किया है । जो उनकी वर्णन कुशलता का परिचायक है । श्रीरङ्गनगरीवर्णन 'प्रसङ्ग' में कवि ने इस नगरी की कितनी मनोहर झाँकी प्रस्तुत की हैं जो सहृदय जन के हृदय को रसाप्लावित कर रही है-

सारङ्गडिम्भनयनानवकेलियोग्यनारङ्गमुख्यतरूपुष्कलनिष्कुटेयम् ।
श्रीरङ्गदिव्यनगरी प्रथते नयाब्धिपारंगततैर्बुधजनैः परिसेव्यमाना ॥ 396 ॥

अन्यत् च-

हंसा निष्कुटदीर्घिकावसतयः प्रक्रान्ततकविहा
लीलोद्यानचरः पतञ्जलिगिरा पुंस्कोकिलः खेलति ।

द्वैताद्वैतकथा यथा विदधति क्रीडामयूरा इह

स्वैरं तान्त्रिककारिका: परिपठन्त्येता मुहु: सारिका: ॥ 397 ॥

मृगशावकनयनी रमणीयों के नूतन-विहार योग्य नारंगी आदि के वृक्षों से सम्पन्न गृहारामयुक्त, नीति-सागर के पारङ्गत् विद्वानों द्वारा सेव्यमान यह श्रीरङ्गनाथ की अलौकिक नगरी सुशोभित हो रही है । इस नगरी में गृहोद्यानों की बावलियों में निवास करने वाले न्यायशास्त्र में कुशल हंस हैं, क्रीडा उपवनों में विचरण करने वाले कोकिल पुरूष 'व्याकरण महाभाष्य' पतञ्जलि की वाणी मे खेल करते हैं, क्रीडा-मयूर जीव-ईश्वर भेद या दोनों के ऐक्य की स्पष्ट कथायें कहते हैं । ये सारिकायें यथेच्छ बार-बार मीमांसाशास्त्र की कारिकायें पड़ती हैं ।

कुरूकापुरी का वर्णन कवि ने इन दो श्लोकों में किया है-

चकास्ति कुरूकापुरी शुचिनि ताम्रपर्णीतटे-

विरक्तिपरिपक्त्रिमत्रियुगभक्तिभिर्वैष्णवै: ।

दृढव्रतशठारिउरोबकुलसंपतद्भ्रमर-

ध्वनिद्विगुणजृम्भणद्रविडवेदघोषोज्ज्वला ॥ 488 ॥

अर्थात् पवित्र ताम्रपर्णी के तट पर दृढ़व्रत 'वैष्णव-गुरू' शठारि के उर: - स्थित बकुलमाला पर लड़खड़ाते हुए भ्रमरों की ध्वनि के कारण दुगुने ध्वनि-विस्तार युक्त, द्रविडों के वेदघोष से सुशोभित कुरूकापुरी विषय-त्याग के कारण फलाभिमुखा

विष्णुभक्ति करने वाले वैष्णवों से प्रकाशित है ।

ननु शठकोपाय त्वं प्रणतिं प्राप्ताय भावुकोपायत्वम् ।

विमलमते! कुरु कायान्निरसितुमंहो विराजते कुरुकायाम् ॥ 496 ॥

सभी नारियों के हृदय को अभिमान शून्य कर देने वाली कामिनी-रत्नों के नूपुर के मधुरतम गुञ्जन से प्रसन्न होने वाली तरुणों के समूह से भरी हुई, शङ्कर द्वारा भस्म किये गये कामदेव को चेतना प्रदान करने वाली यह चञ्जीपुरी सुशोभित हो रही है । कितना मनोरम वर्णन है माधुर्यगुण युक्त यह श्लोक प्रस्तुत है-

खञ्जीकृताखिलहृदां रमणीमणीनाम्

मञ्जीरमञ्जुतरशिञ्जितरञ्जितेन ।

चञ्जीपुरी युवगणेन चकास्ति पूर्णा

संजीवितोग्रपरिवञ्चितपञ्चबाणा ॥ 373 ॥

कवि ने इसी प्रकार से अन्य स्थलों पर भूतपुरी, लंकापुरी, मरूत्पुरी आदि का भी अद्भुत वर्णन किया है जो उनके ज्ञान भण्डार का परिवर्धन करने के साथ ही साथ सहृदयजनों के ज्ञान की वृद्धि भी करती है

सेतु वर्णन

कवि श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने अपने प्रसिद्ध विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य में

सेतु का वर्णन किया है। इस वर्णन का नाम ही उन्होंने "सेतुवर्णनम्" रख दिया है। उन्होंने नल सेतु व काकुत्स्थसेतु का वर्णन इस प्रसङ्ग में किया है। विश्वावसु कृशानु के समक्ष सेतु की महिमा का वर्णन करते हुए कह रहा है कि "शरणहीन पापियों की रक्षा, अज्ञान रूपी समुद्र के पाने के लिये, राक्षसों की नगरी [लङ्का] में जाने के लिये, रावणादि शत्रुओं को युद्ध में जीतने के लिये, विरहिणी सीता को हर्ष के सहित लाने के लिये, शाश्वत-यश की प्राप्ति के लिये, आनन्द प्रदान करने के लिये, श्री रामचन्द्र के द्वारा निर्मित सेतु को हम नमस्कार करते हैं।" तत्सम्बन्धित श्लोक यहाँ द्रष्टव्य है-

पातुं पातकिनो जनानशरणान् पातुं तमःसागरं
यातुं यातुपुरीमरीन् रणमुखे जेतुं दशास्यादिकान्।
नेतुं भूतनयां मुदं विरहिणीमेतुं यशः शाश्वतं
दातुं शर्म च राघवेण रचितं सेतुं नमस्कुर्महे ॥ 474 ॥

समुद्र के मध्य में तैरते हुए, लहरों के वेग से उठे हुए फेनों से लाञ्छित शरीर वाले ये नल सेतु के पहाड़ समुद्र में छिपे हुए मन्दराचल पर मानों हँस रहे हैं क्या? कितने सुन्दर ढंग से कवि ने इस बात को निम्न श्लोक में वर्णित किया है-

पयोधिमध्ये प्लवमानमूर्तयस्तरङ्गवेगार्पितफेनचिन्हिताः।
हसन्ति किं मन्दरमन्तरर्णवं निमग्नमेते नलसेतुभूधराः ॥ 476 ॥

उत्प्रेक्षा के माध्यम् से कवि ने सेतु का कितना रमणीय वर्णन किया है-

चिराद्धराभूरिभरार्तमूर्तिर्हरित्करिष्वर्पितनैजकृत्यः ।

श्रमक्षयायार्णववारि शीते शेते स किं सेतुमिषेण शेषः ॥ 485 ॥

अर्थात् बहुत देर से पृथ्वी के बड़े बोझ से दुःखित शरीर वाले, दिग्गजों को अपना कर्त्तव्य भार सौंप कर वह शेष श्रम मिटाने के लिए सेतु के ब्याज से ठंडे समुद्र जल में मानों सो रहा है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हमारे कवि वस्तु वर्णन में अतीव पारङ्गत हैं । उनकी अद्भुत वर्णन चातुरी उनके वस्तु वर्णन की प्रतिभा व काव्य सौन्दर्य को मुखर करती प्रतीत होती है जो कि सहृदय पाठक वृन्द को काव्यानु-भूति कराने में पूर्णतः सक्षम हैं । श्रीवेङ्कटाध्वरि जी ने प्रकृति एवम् वस्तु चित्रण अत्यन्त सूक्ष्मता और सजीवता से किया है । अपनी कोमल भावनाओं को उन्होंने अति सरस, भावपूर्ण एवम् अलौकिक ढंग से प्रस्तुत किया है । जो उनके प्राकृतिक चित्रण को यथार्थ चित्ताकर्षक, आह्लादक एवम् प्रासङ्गिक बनाने में पूर्ण रूपेण समर्थ है ।

---------::0::---------

अध्याय चतुर्थ

भाषा-शैली

प्रस्तुत चम्पूकाव्य ग्रन्थ में भाषागत क्लिष्टता

(क) भाषा एवं शैली

भाषा के माध्यम से कवि अपने विचारों एवं भावनाओं को अभिव्यक्त करता है । किसी भी काव्यकृति में भाषा जितनी सरस तथा सुबोध होती है, वह रचना उतनी ही अधिक ग्राह्य होती है । भाषा में अभिव्यक्ति क्षमता होनी अत्यन्त आवश्यक है जिस कवि की भाषा में जितना अधिक अभिव्यक्ति कौशल होगा उसकी रचना उतनी ही अधिक सहज, स्वाभाविक तथा सुबोध होगी । अतः कवि द्वारा अपने अभीष्ट भावों को कम से कम शब्दों में अभिव्यक्त करना कवि तथा काव्य दोनों की श्रेष्ठता का द्योतक है ।

अस्मद् आलोच्य चम्पूकाव्य ग्रन्थ की भाषा क्लिष्ट तथा शब्दाडम्बरों से भरी हुई है । यद्यपि अलङ्कार वैविध्य है । तथापि श्लेष, यमक, अनुप्रास अलङ्कारों का बाहुल्य होने के कारण विश्वगुणादर्शचम्पूकाव्य ग्रन्थ की भाषा दुरूह हो गयी है किन्तु भाषा की दृष्टि से श्रुतिकटुत्व, क्लिष्टता इत्यादि भाषा को कमजोर करती प्रतीत होती है । इसके अतिरिक्त कवि ने अपने काव्यग्रन्थ में गौडी रीति का अधिकांशतः प्रयोग किया है जिससे उनकी लेखन शैली बड़े-बड़े समासान्त पदों वाली श्रुतिकटु शब्दों से परिपूर्ण,ओज प्रदायिनी हो गयी है जो उनकी भाषा को और भी क्लिष्ट बना देती है । यद्यपि कवि ने वैदर्भी और पञ्चाली रीति का भी समुचित प्रयोग किया है । कवि वेङ्कटाध्वरि प्रणीत

चम्पूकाव्यग्रन्थ में छन्द बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है । कवि ने अपने ग्रन्थ के विभिन्न वर्णनों के भिन्न-भिन्न श्लोकों में पृथक्-पृथक् छन्दों का प्रयोग किया है । कवि की आसक्ति विशेषतः शार्दूल विक्रीडित, मन्दाक्रान्ता, पृथ्वी, मालिनी, स्त्रग्धरा आदि कठिनतम् छन्दों के प्रति रही है । जो उनकी भाषा को कठिनतम् बनाने में समर्थ हैं । भाषा-शुद्धि के लिए व्याकरण शास्त्र का पूर्ण ज्ञान नितान्त आवश्यक होता है । श्रीवेङ्कटाध्वरि का व्याकरण शास्त्रीय ज्ञान प्रशंसनीय है । कवि के सुभाषित वचन आज भी लोक व्यवहार में खरे उतरते हैं ।

किसी काव्य रचना की भाषा-शैली का निर्धारण उस शैली में उपलब्ध होने वाले गुणों और वृत्तियों के आधार पर होता है । इसके अतिरिक्त उसमें प्रयुक्त होने वाले छन्दों के माध्यम से भी उस काव्य रचना की भाषा-शैली की पहचान होती है । अतः रीति, (वृत्ति), गुण तथा छन्दों के स्वरूप एवं प्रस्तुत चम्पूकाव्य में उनकी स्थिति पर विचार करना अपेक्षित है । इनका विवेचन पृथक्-पृथक् अध्याय में विस्तार से किया जाएगा । सम्प्रति प्रस्तुत अध्याय में रीति का विवेचन किया जाएगा ।

(ख) विश्वगुणादर्श चम्पू काव्य की शैली

सामान्यतः अपनी बात को सरलतापूर्वक दूसरों के मनोमस्तिष्क तक पहुँचाने के तौर-तरीके को शैली या रीति कहते हैं । 'रीति' शब्द "रीङ् गतौ" धातु से

क्तिन् प्रत्यय लगने पर निष्पन्न होता है । काव्य की विशेष प्रकार की शैली रीति अथवा वृत्ति कहलायी है । रीति के लिए मार्ग, संघटना तथा वृत्ति शब्द भी प्रचलित है । प्राचीन साहित्य में वृत्ति शब्द का ही प्राय: प्रयोग हुआ है । आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में वृत्तियों की चर्चा की है । वहाँ उन्होंने नाट्यशास्त्रीय आरभटी, कौशिकी आदि को वृत्ति नाम से सम्बोधित किया है । काव्य शास्त्र में वृत्ति शब्द का प्रयोग रीति अर्थ में हुआ है । और इस वृत्तियों का सम्बन्ध रस के साथ प्रतिपादित हुआ है ।

साहित्यशास्त्रियों में रीति शब्द का प्रयोग करने वाले सर्वप्रथम आचार्य वामन हैं । वे रीति को काव्य के आत्मतत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं ।[1] उन्होंने विशिष्ट पद रचना (माधुर्यादि गुण युक्त) को रीति माना है ।[2] वे वैदर्भी, गौडी और पाञ्चाली नामक रीति के तीन भेद मानते हैं ।[3] किन्तु अग्निपुराण में लाटी नामक एक अन्य भेद को प्रस्तुत कर रीतियों की संख्या चार कर दी गई है ।[4] पाञ्चाली, गौडी, वैदर्भी तथा लाटी ।[4]

---

1. रीतिरात्मा काव्यस्य । (काव्यालङ्कार सूत्र) 1/2-6.
2. विशिष्टपदरचना रीति: । विशेषो गुणात्मा (तत्रैव) 1/2-7-8.
3. सा च त्रिधा वैदर्भीगौडीयापाञ्चाली चेति । (तत्रैव) 1/2-9.
4. वाग्विधा सम्प्रतिज्ञाने रीति: सापि चतुर्विधा ।
   पाञ्चाली गौडदेशीया वैदर्भी लाटजा तथा ॥ (अग्निपुराण) 340-1.

इसी प्रकार महाराज भोज अपने सरस्वती कण्ठाभरण परिच्छेद में अवन्तिका और मागधी नामक दो अन्य भेदों को जोड़कर छः प्रकार की रीति प्रतिपादित करते हैं ।[1]

आचार्य कुन्तक ने रीति के लिए 'मार्ग' शब्द का प्रयोग किया है तथा तीन प्रकार के काव्यमार्ग बताये हैं- 1. सुकुमारमार्ग 2. विचित्रमार्ग तथा 3. उभयात्मक-मध्यममार्ग ।[2] ये तीनों ही मार्ग वामन द्वारा निर्धारित वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली रीतियों के ही क्रमशः नामान्तर हैं किन्तु वक्रोक्ति जीवितकार रीति भेदों का आधार देश भेद को स्वीकार करने को तैयार नहीं है क्योंकि इस प्रकार देशों के अनन्त होने से रीतियाँ (वृत्तियाँ) भी असंख्य हो जायेंगी ।[3]

ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने रीति का आधार समास को माना है । लेकिन उन्होंने 'रीति' के स्थान पर 'संघटना' शब्द का प्रयोग किया है । उन्होंने तीन संघटनाओं का विवेचन किया है- (1) असमासा 2. मध्यमसमासा तथा 3. दीर्घसमासा ।[4] उनके मतानुसार संघटना माधुर्यादि गुणों के आश्रित

---

1. वैदर्भी साथ पाञ्चाली गौडीयावन्तिका तथा ।
   लाटीया मागधी चेति षोढारीतिर्निगद्यते ॥ (सरस्वती परिच्छेद)-2/52.
2. सम्प्रति तत्रये मार्गाः कविप्रस्थानहेतवः ।
   सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमश्चोभयात्मकः ॥ वक्रोक्तिजीवितम् 1/24.
3. देशभेदनिबन्धनत्वे रीतिभेदानां देशानामानन्त्यादसंख्यत्वं प्रसज्यते (तत्रैव) .
4. असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता ।
   तथा दीर्घसमासेतित्रिधा सङ्घटनोदिता ॥ ध्वन्यालोके - 3/5.

होकर रसों को अभिव्यक्त करतीहै । वक्ता एवं वाच्य का औचित्य तथा विषया-श्रित औचित्य भी संघटना का नियमन करता है ।[1] उद्भटाचार्य[2] और मम्म-टाचार्य जी ने वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली रीतियों को ही क्रमशः उपनागरिका, परषा एवं कोमला 'वृत्ति' कहा गया है-।[3] उद्भटाचार्य जी के मतानुसार कोमलावृत्ति ही ग्राम्यावृत्ति कहलाती है । मम्मटाचार्य जी ने वृत्तियों को गुणाभिव्यञ्जक मानते हुए माधुर्यादि तीन गुणों के अनुसार ही उपनागरिका आदि तीन वृत्तियों का निरूपण किया है । उन्होंने रीतियों का देश-आधारित विभा-जन नहीं किया है । साहित्य दर्पण कार आचार्य विश्वनाथ ने अपने काव्य ग्रन्थ में पदों के मेल को रीति कहा है तथा उसे अङ्गसंस्थान के समान माना है । उन्होंने चार प्रकार की रीतियाँ मानी हैं- वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली तथा लाटी ।[4]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक ही वस्तु

---

1. गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ती माधुर्यादीन् व्यनक्ति सा ।
   रसान् तन्नियमे हेतुरौचित्यं वक्तृवाच्ययोः ॥
   विषयाश्रयमप्यन्यदौचित्यं तां नियच्छति । - तत्रैव 3/6-7.
2. काव्यालङ्कारसारसङ्ग्रहे
3. माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते ।
   ओजः प्रकाशकैस्तैस्तु परषा कोमला परैः - काव्यप्रकाशे 9/80.
4. पदसङ्घटना रीतिरङ्गसंस्था विशेषवत् ।
   उपकर्त्री रसादीनां सा पुनःस्याच्चतुर्विधा ॥
   वैदर्भी चाथ गौडी चा पाञ्चाली लाटिका तथा । - साहित्यदर्पण 9/1-2.

को पृथक्-पृथक् आचार्यों ने रीति, वृत्ति, मार्ग तथा संघटना आदि भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित किया है । आचार्य मम्मट ने इस बात की पुष्टि हेतु कहा है कि ये तीनों वृत्तियाँ (उपनागरिकादि) हाँ किन्हीं के मत में वैदर्भी आदि वृत्तियाँ मानी गयी हैं ।[1] रीति, वृत्ति, मार्ग आदि नामों में अन्तर के पीछे शास्त्रज्ञोंमेंकुछ मन्तव्य अवश्यमेव है । वैदर्भी इत्यादि रीति भेदों, उपनागरिकादि वृत्ति भेदों एवं असमासा आदि संघटना भेदों की परिभाषाओं के द्वारा रीति, वृत्ति एवं संघटना के सूक्ष्म अन्तर का पता चलता है । काव्य रचना को वर्ण और पद की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । वर्णों के प्रयोग की दृष्टि से रचना के उपनागरिका परुषा तथा कोमला (ग्राम्या) ये तीन विभाजन उद्भट आदि ने किये हैं और उन्हें 'वृत्ति' नाम दिया है । किन्तु पदों की दृष्टि से रचना के असमासा, मध्यसमासा एवं दीर्घसमासा ये तीन भेद किये जा सकते हैं । ध्वन्यालोककारआनन्दवर्धनाचार्य जी ने इन्हीं भेदों को 'संघटना' नाम से व्यवहित किया है । अतः पदस्थिति प्रदान रचना हेतु'संघटना' और वर्णस्थिति प्रधान रचना हेतु 'वृत्ति' शब्द का प्रयोग किया गया है । आचार्य वामन का इस सम्बन्ध में मत है कि रीतियों का सम्बन्ध माधुर्योजादि गुणों से है । उन्होंने 'रचना प्रकार' के सन्दर्भ में 'रीति' शब्द का प्रयोग किया है ।

---

1. केषाचिदेता वैदर्भीप्रमुखा रीतयो मता: । - काव्यप्रकाश 9/8।

गुणों को अभिव्यक्त करने के लिये वर्ण और पद दोनों की ही उपयोगिता है । अत: वामनोक्त रीति में संघटना एवं वृत्ति दोनों का अन्तर्भाव हो जाता है । वामन के पश्चात् रूद्रट, विश्वनाथ आदि द्वारा की जो विवेचना प्रस्तुत की गयी, उसके अन्तर्गत रीति के प्रत्येक भेद में उसकी वर्णगत तथा पदगत दोनो ही प्रकार की विशेषताओं को बताया गया है । अत: 'वृत्ति' तथा 'संघटना' ये दोनों ही "रीति" के अंग हैं और इन दोनों की समष्टि को 'रीति' कहते हैं ।

कतिपय आचार्यों ने लाटी रीति को भी मान्यता दी है किन्तु अनेक आचार्य इसे स्वीकार नहीं करते हैं । भामह को छोड़कर अधिकतर सभी आचार्यों ने वैदर्भी, गौडी एवं पाञ्चाली रीतियों को कुछ नामान्तर के साथ स्वीकार किया है । इस प्रकार मुख्यरूप से वैदर्भी, गौडी एवं पाञ्चाली रीति पर विचार करना अधिक उपयुक्त एवं तर्कसंगत है ।

रीति-विभाजन का आधार

किसी आचार्य ने इन चारों रीतियों-वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली एवं लाटी का सामुदायिक वर्णन निम्नलिखित श्लोक में इस प्रकार से किया है-

> गौडी डम्बरबद्धा स्याद् वैदर्भी ललितक्रमा ।
> पाञ्चाली मिश्रभावेन लाटी तु मृदुभि: पदै: ॥

ये चारों रीतियाँ अपने देश के नाम के अनुसार चली हैं । वैदर्भी रीति

विदर्भ देश ॥बरार॥ के नाम पर, पाञ्चाली रीति पाञ्चाल देश ॥गङ्गा-यमुना का दोआब॥ के नाम पर तथा लाटी रीति लाटदेश ॥आधुनिक बड़ौदा, अहमदाबाद आदि का प्रदेश जो नर्मदा नदी के पश्चिम में स्थित है॥ के नाम पर प्रचलित हुई है ।

विश्वगुणादर्शचम्पूकाव्य में रीतिनिरूपण

विश्वगुणादर्शचम्पूकाव्य के प्रणेता कविराज वेङ्कटाध्वरि जी का भाषा पर असाधारण अधिकार है । उनके काव्य में प्रतिभा एवं वैदुष्यकामणिकाञ्चन संयोग है । कवि ने विश्वगुणादर्शचम्पूकाव्य मुख्यतः गौडी रीति में उपनिबद्ध किया है । वैदर्भी रीति का प्रयोग भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है । पाञ्चाली रीति का प्रयोग गौडी रीति की अपेक्षाकृत कम हुआ है । कवि ने लाटी रीति का भी सुप्रयोग अपने काव्य में किया है । इस चम्पूकाव्य ग्रन्थ के सन्दर्भ में उक्त चारों रीतियों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है-

॥अ॥ वैदर्भी रीति

समासरहित अथवा अत्यल्प समास वाली माधुर्यव्यञ्जक वर्णों से युक्त ललित रचना को वैदर्भी रीति कहते हैं ।[1]

---

1. माधुर्यव्य जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका ।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥ - साहित्यदर्पण 9/2,3.

प्रस्तुत काव्य में वैदर्भी रीति के सुललित छन्दों का प्रयोग यत्र-तत्र अनेक स्थलों में दृष्टिगोचर होता है । आलोच्य चम्पूकाव्य से कतिपय वैदर्भी विभूषित श्लोक उद्धृत है-

चिराय संसृत्युदधौ समज्जनं
नमज्जनं मज्जन इत्यधोक्षज: ॥
दयापयोधि: परिगृह्य दुर्लभं
निजं पदं प्रापयति स्वयं प्रभु: ॥ 17 ॥

जह्नोरपत्यं जगत: पवित्रं
कलत्रमब्धेस्तनय: कलात्मा ।
कन्या तु धन्या कमला बिभर्ति
जामातृभावं जगदीश एव ॥ 111 ॥

पुर: पुरो घनं वनं वने वने महागिरि-
महागिरौ महागिरौ विराजते गुहागृहम् ।
गुहागृहे गुहागृहे विहारतत्परो हरि-
र्हरौ हरौ निरङ्कुश: कृतेभसाध्वसो ध्वनि: ॥ 207 ॥

इन पद्यों में कवि ने सूर्य, समुद्र तथा वन वर्णन की अपूर्व छटा प्रस्तुत की है । लघु समास, सुललित पद विन्यास एवं माधुर्य व्यञ्जक वर्णों के प्रयोगों के कारण यहाँ वैदर्भी रीति स्पष्ट है ।

मध्य समास एवं मधुर वर्णों के कारण वैदर्भी रीति दृष्टिगोचर हो रही है -

सुशोभनक्रमकरैः सेवितो जीवनार्थिभिः ।
मध्यस्थवाडवो राजत्यान्ध्रदेशो नदीशवत् ॥ 153 ॥

देशे देशे लम्पटाः पर्यटन्तो भञ्जं भञ्जं ब्राह्मणादीनशेषान् ।
हारं हारं हन्त सर्वस्वमेषां पापा एते स्वोदरं पूरयन्ति ॥ 143 ॥

दुःखं च जन्मदुरितं च दृढामविद्यां
हा हन्त परमा हरिभक्तिरेका ।
एकोऽपि राघवशरः किल सप्त तालान्
शैलं रसातलमपि त्वरया बिभेद ॥ 150 ॥

गङ्गा नदी की महिमा का वर्णन करते हुए कवि ने अत्यन्त माधुर्य व्यञ्जक वर्णों एवं अल्पसमास का प्रयोग किया है-

भागीरथीं प्राप्य बुधाः पितृभ्यो
जलाञ्जलिं सादरमर्पयन्ति ।
पापानि सर्वाणि ततः पितृणां
भवन्त्यहो दत्तजलाञ्जलीनि ॥ 78 ॥

भागीरथीं यः पटुधीरूपास्ते

यथाक्रतुन्यायत एष धन्यः ।

देवत्वमेत्य त्रिदिवे सुधायां

भागीरथीति व्यपदेशमेति ॥ 79 ॥

श्रीरङ्गनगरी वर्णन में भी वैदर्भी रीति का प्रयोग दर्शनीय है-

श्रीरङ्गे शोभते यस्य श्रीरङ्गे शोभते च यः ।

नमोऽहं कलये तस्मै न मोहं कलये ततः ॥ 400 ॥

प्रस्तुत श्लोक में कवि ने वैदर्भी रीति का प्रयोग अत्यन्त कुशलता के साथ करते हुए अपने पांडित्य का प्रदर्शन किया है-

हन्तुर्बन्धुजनान् धनार्थमनघान् गन्तुः परस्त्रीशतं

रन्तुर्जन्तुविहिंसकैः सह जनैः संतुष्यतो वञ्चनैः ।

वक्तुस्तीक्ष्णमयुक्तमेव वचनं पक्तुर्मितं चौदनं

नित्यं नृत्यसि मन्दिरेषु कमले! कृत्यं तवैतन्मतम्? ॥ 421 ॥

अधोलिखित श्लोकों में समासरहित अथवा लघुसमासोपेत पदों, माधुर्य व्यञ्जक वर्णों तथा सुललित पदावली के योग से वैदर्भी रीति का उत्कृष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है-

नागवल्लीमतल्लीभिः सुमुखीभिरिवादरात् ।
परिरब्धाः प्रमोदन्ते क्रमुकाः कामुका इव ॥ 447 ॥

चोरस्य चौर्यं जगति प्रतीतं
चौर्यस्य चौर्यं न तु दृष्टपूर्वम् ।
चौर्याधिकार्याणि बत श्रुतानि
कृष्णस्य मुष्णन्तितमां तमांसि ॥ 128 ॥

चित्रं चित्रं जृम्भते कृष्णमेघे
कंसं प्राप्ता प्राप लोपं समृद्धिः ।
आसीद्युक्तं हानिदाघप्रशान्ति-
र्हंसोहिंसां मानसे कीर्तिरुत्था ॥ 129 ॥

अङ्गान् वङ्गान् कलिङ्गानथ मगध-कुरून् कोसलान् केकयान् वा
काश्मीरान् कुन्तलान् वा यवनजनपदान् किंच पाञ्चालदेशान् ।
नेपालान् केरलान्वा कतिचन कृतिनः पाण्डय-तुण्डीरचोलान्
कर्नाटान् गौड-लाटान् परगतिघटनालम्पटाः पर्यटन्ति ॥ 146 ॥

ग्रामे ग्रामे निवसति चिरात्स्वामिभावेन शूद्रो
भृत्यो भूत्वा पठति गणनां ब्राह्मणस्तस्य पार्श्वे ।

वेदाध्यायी सर इव मरौ क्वापि कश्चिद्यदि स्या-

दत्रामन्त्रप्रकरकरणे वर्तते सौ नियुक्तः ॥ 154 ॥

गायत्रीं सहसा जहद्भगवतीं यज्ञोपवीतं त्यजन्

मुञ्चन् किंच शिखां विरक्त इव यः संप्राप्ततुर्याश्रमः ।

आरूढश्चतुरन्तयानमभयो हा हन्त देशान्तरे-

ष्वर्थानामुपसंग्रहाय विचरत्येषोऽप्यमीषां गुरुः ॥ 178 ॥

पन्नगेषु च नगेषु खगेषु द्वीपिराजत् पृषत्सु दृषत्सु ।

वल्लरीषु च दरीषु झरीषु प्रार्थयन्ति जनिमत्र मुनीन्द्राः ॥ 192 ॥

विविधनिगमसारे विश्वरक्षैकधीरे

वृषशिखरिविहारे वक्षसाऽऽश्लिष्टदारे ।

भगवति यदुवीरे भक्तबुद्धेरदूरे

भवतु चिरमुदारे भावना निर्विकारे ॥ 193 ॥

दिशत् श्रितानाममृतात्मकं फलं

विलक्षणो भाति स तिन्तिडीतरुः ।

सहस्रशाखं द्रविडागमं सृजन्-

स यस्य मूलं समुपाश्रितो मुनिः ॥ 491 ॥

कावेरी नदी वर्णन में कवि द्वारा प्रयुक्त वैदर्भी रीति उनकी अद्भुत काव्य रचना शैली को प्रकट कर रही है-

प्रात: प्रात: पयसि विमले पावने सह्यपुत्र्या:
स्नायं स्नायं सकलविषयत्यागिनो योगिनोऽमी ।
वारं वारं भुजगशयनं लोचनाभ्यां पिबन्त:
क्षेमं क्षेमं क्षपितदखिलं कालमत्र क्षिपन्ति ॥ 398 ॥

वेङ्कटगिरिवर्णन से वैदर्भीयुक्त एक श्लोक उद्धृत है-

प्रियसहचरी लक्ष्मी: स्थानं सहस्रवसु: स्वयं
कुवलयपति: श्यालो रत्नाकर: श्वशुरो हरे: ।
तदपि हरति द्रव्यं पूर्णो जगत्पतिरेव एव
तदिह भजतां कर्त्तुं नृणामुदग्रमनुग्रहम् ॥ 200 ॥

ब. गौडी-रीति

जिस रचना में कठोर एवं ओजगुण के अभिव्यञ्जक वर्णों का प्रयोग होता है तथा सुदीर्घ समासों से युक्त पदावली रहती है वहाँ गौडी रीति होती है ।[1]

---

1. ओज: प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बर: पुन: ॥
समासबहुला गौडी ------------ ।
- साहित्यदर्पण 9/3, 4.

गौडी रीति का प्रयोग प्राय: वीर, बीभत्स, रौद्र, रसों में होता है ।

विश्वगुणादर्शचम्पू में गौडी रीति की रचना भी पाठकों को अतिशय आनन्द की अनुभूति कराती है । जिसके निम्न स्थल दर्शनीय है-

प्रस्तुत चम्पूग्रन्थ का वेङ्कटगिरिवर्णन गौडी रीति में किया गया है । जिसके कुछ पद्य अवलोकनीय है-

प्रचण्डविश्वकण्टकप्रखण्डनैकपण्डित:
पतङ्गमण्डले वसन् य एष पाण्डवप्रिय: ।
अकुण्ठरीतिक: प्रसन्नपुण्डरीकलोचन:
स कुण्डलीन्द्रभूधरप्रकाण्डमण्डनायते ॥ 203 ॥

गाम्भीर्यैकावलम्बे गरिमनिवसतौ कान्तिकुल्यातटाके
कल्याणाम्भोजकल्ये निरवधिकरुणासारकल्लोलराशौ ॥
चातुर्यौदार्यलक्ष्मीविहरणसरणे सद्गुणौघान् बभूवे
देवे श्रीवेङ्कटेशे न जिगणयिषता केन वा ग्लानवाचा ॥ 201 ॥

अव्यादाश्रयतामनश्वरपदप्रासादनि:श्रेणिका
हर्षादूर्ध्वमुदञ्चित: स चरणस्त्रैविक्रमो न: क्रमात् ।
त्रैलोक्यार्पणत: सितं शुभयशश्छत्रं यदासीद्बले-
र्दाधिष्ठो हरिनीलदण्ड इव यस्तद्धारणायोद्धृत: ॥ 307 ॥

सूर्यवर्णन में कवि ने सूर्य की महिमा का वर्णन गौडी रीति के सहारे किया है जिसका प्रस्तुत पद्य प्रत्यक्ष उदाहरण है-

वैकुण्ठो महताहताखिलमहारम्भं मदेनोच्चकै-

श्चण्डं खण्डयितुं हिरण्यकशिपुं बेतण्डमुत्कण्ठया ॥

सैहं वेषमशेषभीषणमहो गृह्णंस्त्वरागौरवात्

प्रह्लादव्यसनासहिष्णुरुदगादाकण्ठकण्ठीरवः ॥ 19 ॥

महाकवि वेङ्कटाध्वरि अपने चम्पूकाव्य के वनवर्णन में प्रसङ्गानुकूल भयानक रस से ओत-प्रोत गौडी रीति का प्रयोग करते हैं। जिससे वर्णन और भी सजीव, शक्त तथा प्रवाहपूर्ण हो गया है। प्रस्तुत पद्य में गौडी रीति की अद्भुत छटा हृदयग्राहिणी है-

इतस्तावद्ग्रावव्यतिकर इतः सन्त्यजगरा

इतो लुण्टाकानां समुदय इतः कण्टकचयः ।

इतो व्याघ्रा उग्रा ज्वलनजनका वेणव इतो

वनं संलक्ष्यैतन्मन इदमहो मोहमयते ॥ 208 ॥

गहनगुहाविहारिहरिपाणिरुहाभिहत-

द्विरदशिरस्तटोदगलितमौक्तिकसंहतिभिः ॥ 210 ॥

इन विकट रचनाओं में ट, ड, श, ष इत्यादि कटु वर्ण, रेफ, 'द्व' च्छ, ज्झ इत्यादि में वर्ण के क्रमशः प्रथम तथा तृतीय वर्णों के साथ द्वितीय और चतुर्थ वर्णों का योग होने के कारण यहाँ गौडी रीति स्पष्ट है ।

प्रस्तुत चम्पूकाव्य में यूँ तो कवि ने सभी रीतियों का प्रयोग किया है किन्तु गौडी रीति में उनकी कुछ विशेष ही रूचि रही है तभी तो उन्होंने यत्र-तत्र प्रसङ्गानुकूल गौडी रीति का समुचित प्रयोग किया है । श्रीरामानुजवर्णन में कवि ने गौडीरीति का प्रयोग किया है-

उच्छिष्टान्यतिदूरतः परिहरन्त्युज्झन्त्यसत्सङ्गतिं

प्राणापत्स्वपि बान्धवेतरगृहे प्राश्नन्ति नापोऽप्यमी ॥ 239 ॥

भाले शुद्धमृदूर्ध्वपुण्ड्रतिलकः पद्माक्षमाला गले

दिव्यं शङ्खरथाङ्गचिह्नमनिशं दीप्तं भुजामूलयोः ।

वक्त्रे शौरिगुणैकवर्णनपरा वाचस्तदेनोमुचा-

मेतेषां हरिभक्तितुन्दिलहृदां वीक्षापि मोक्षावहा ॥ 240 ॥

चन्द्रालोकचयान्धकारभरयोश्चाम्रेय-किम्पाकयो

राजत्कुण्डलिराज-राजिलकयो राजीव-धत्तूरयोः ।

खेलत्कोकिललोक-काककुलयोः क्षीरार्णवान्ध्वोरिव

व्यक्तं पण्डित-मूर्खयोः समदृशो व्रात्या इहत्या अमी ॥ 190 ॥

इष्टात्स्वबान्धवधनादितरैरदृष्टं
यद्भुञ्जतेऽन्नमिह लक्ष्मणपक्षनिष्ठाः ।
दोषः किमेष दुरितापहरो गुणो वे-
त्येवं विविच्य परिपृच्छ गुणागुणज्ञान् ॥ 241 ॥

प्रस्तुत पद्यों के अतिरिक्त इस काव्य में अनेक स्थलों में गौडी रीति की संघटना अनायास ही दृष्टिगत होती है । जैसे-गरुड़ पक्षिराज का वर्णन भी गौडी रीति के अनुकूल हुआ है-

स्वज्येष्ठप्रेर्यहर्यश्रितरथघृणिमन्मण्डलस्थाच्युताप्त्यं
सन्मार्गे पक्षपातोद्गतधरणिरजश्छन्नमेतज्जवेन ।
कल्लोलैरुल्लसद्भिः प्रबलजलनिधेः क्षालयन्घूर्णदर्पः
प्रेङ्खड्डिण्डीरखण्डच्छलकुसुमकुलैर्मण्डयत्यण्डजेन्द्रः ॥ 434 ॥

गौडी रीति के कतिपय उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

अगूढगाढस्तनकुम्भिकुम्भसम्भोजदम्भोदयजैत्रनेत्रम् ।
चित्ते विधत्ते बत चोलदेशस्त्रैणं प्रवीणं रतिकान्तबाणम् ॥ 455 ॥

प्रातर्हन्त कृताप्लवोऽपि रजकस्पृष्टाञ्जडो रासभै-
रूढान् धारयते पटाननुदिनं धृत्वा बहिर्गच्छति ।

गत्वा म्लेच्छमुखाशुचीन् स्पृशति च स्पृष्ट्वापि न स्नात्यहो

नस्नातोऽप्यथ भुङ्क्ते एष चपलो भुक्त्वापि न व्रीडति ॥ 90 ॥

डिण्डीरखण्डान्वयपाण्डुराभं द्राघिष्ठमुच्चैः परिणाहवन्तम् ।

काकुत्स्थसेतुं कलये गुणाढ्यं धौतोत्तरीयं धृतमर्णवेन ॥ 484 ॥

चिराद्धराभूरिभरार्तमूर्तिर्हरित्करिष्वर्पितनैजकृत्यः ।

श्रमक्षयायार्णववारि शीते स किं सेतुमिषेण शेषः ॥ 485 ॥

विरक्तेरास्थानी मधुमथनभक्तेर्नटनभू-

र्विमुक्तेर्निःश्रेणी सुकृतपरिपक्तेः फलमसौ ।

प्रपत्तेस्थानक्षितिरकृतकोक्तेः प्रियसखी

चिदङ्कूरक्षोणी वकुलधरवाणी विजयते ॥ 498 ॥

सूर्यादारोग्यमिच्छेत्कमपि हुतवहात्सम्पदुल्लासमिच्छे

दीशानाज्ज्ञानमिच्छेदनवधिमिभवं मोक्षमिच्छेन्मुकुन्दात् ।

इत्याद्याः सत्यवाद्यादिममुनिभणितीराकलय्यापि विष्णोः

सेवां शैवास्त्यजन्तो बत भवहतये भावयन्ते भवं ते ॥ 518 ॥

अपरीक्षितलक्षण-प्रमाणैरपरामृष्टपदार्थसार्थतत्त्वैः ।

अवशीकृतजैत्रयुक्तिजालैरमेतैरनधीततर्कविद्यैः ॥ 558 ॥

अद्भुतस्तर्कपाथोधिरगाधो यस्य वर्धकः ।
अप्रमादो तमःस्पृष्टस्त्वकलङ्कः कलानिधिः ॥ 559 ॥

भगवदनभ्युपगमनं दैवतचैतन्यनिह्नवश्चैषाम् ।
कर्मश्रद्धावर्धकतत्प्राधान्यप्रदर्शनायैव ॥ 565 ॥

टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ङसिङसोस्तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिब्-
वस्-मस् तानचि च ष्टुना ष्टुरत इञ् शश्छोऽटि यचोऽन्त्यादि टि ।
लोपो व्योर्वलि वृद्धिरेचि यचि भं दाधा घ्वदाप्नाज्झला-
वित्येते दिवसान्नयन्ति कतिचिच्छब्दश्च पठन्तः कटून् ॥ 568 ॥

सूत्रैः पाणिनिकीर्तितैर्बहुतरैर्निष्पाद्य शब्दावलिं
वैकुण्ठस्तवमक्षमा रचयितुं मिथ्याश्रमाः शाब्दिकाः ।
पक्त्वाऽन्नं महता श्रमेण विविधापूपाग्र्यसूपान्वितम्
पन्दाग्नीननुरुन्धते मितबलानाघ्रातुमप्यक्षमान् ॥ 570 ॥

दार्ढ्याय गुणसमृद्धेर्दूषणभणितिः समस्तवस्तूनाम् ।
अस्माभिस्समनिबद्धा सिद्धान्तस्येव पूर्वपक्षोक्तिः ॥ 593 ॥

स्वानुज्ञामनवाप्य दर्पभरतः स्वाज्ञां विलङ्घेत य-
स्तस्यैवेह तनोति लौकिकनृपश्चण्डोऽपि दण्डं स्वयम् ॥

अन्तर्याम्यपथे प्रवर्त्य भविनो हन्त स्वयं नारके

यस्तान् पातयति क्रुधा स तु न किं ? नारायणो निर्घृणः ॥ 16 ॥

कृतत्रिदशपोषणं कृशरथाङ्गसंतोषणं

पिशाचकुलभीषणं पृथुनमज्जनापेषणम् ॥

विनम्रगदशोषणं विहितवारिजोन्मेषणं

नमस्कुरुत पूषणं ननु नभःस्थलीभूषणम् ॥ 12 ॥

वृष्टिं घृष्टिभिरारचय्य जगतस्तुष्टिं सरीसर्ष्टि यः

पुष्टिं द्राग् विशिनाष्टि दृष्टिषु नृणां ध्वान्तं पिनष्टि स्थिरम् ।।

प्राज्ञानामपवर्गमार्गदममुं पद्मागृहोल्लासिनं

को न स्तौति ? समस्तलोकसुहृदं द्योभूषणं पूषणम् ॥ 9 ॥

इसी प्रकार से गौडी रीति के अन्य अनेक उदाहरण प्रस्तुत चम्पूकाव्य ग्रन्थ में दिखलायी देते हैं। यद्यपि गौडी रीति के विषय में विद्वानों का मत है कि इसमें कठिन वर्णों के साथ ही साथ समासों का बाहुल्य होना चाहिए। पुरूषोत्तम आदि आचार्यों ने बहुत समासों से व्याप्त अनुप्रास, यमक आदि के शब्दाडम्बरों एवं महाप्राण प्रयत्न वाले अक्षरों से युक्त रचना को गौडी रीति के अन्तर्गत स्वीकार किया है।[1]

---

1. बहुतरसमासयुक्ता सुमहाप्राणाक्षरा च गौडी या ।
   रीतिरनुप्रासमहिमपरतन्त्रा स्तोकवाक्या च ॥

उपर्युक्त मतानुसार प्रस्तुत चम्पूकाव्य ग्रन्थ में गौडीरीति की प्रधानता स्वीकार की जा सकती है । क्योंकि इसमें अनुप्रास, श्लेष, यमक आदि का शब्दाडम्बर तो सर्वत्र विद्यमान है ही, महाप्राण वर्णों तथा अन्य परुष वर्णों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । यद्यपि गौडीरीति के लिए आवश्यक दीर्घ समासों का प्रयोग इसमें मिलता है तथापि कुछ प्रसङ्गों में मध्यमसमासोपेत, अल्पसमासोपेत एवं समासविहीन रचनाओं में परुष वर्णों आदि का प्रयोग अधिक मिलता है । अतः 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' के अनुसार यहाँ गौडी रीति के मानना ही उचित है क्योंकि समासराहित्य होने पर भी कटुवर्णों की उपस्थिति के कारण वैदर्भी रीति हो नहीं सकती है । पाञ्चाली रीति में माधुर्यव्यञ्जक वर्णों तथा ओज प्रकाशक वर्णों दोनों का ही परित्याग किया जाता है, अतः यहाँ पाञ्चाली रीति भी नहीं हो सकती है । अतः इसे गौडी रीति मानना ही अधिक युक्ति संगत है ।

स. पाञ्चाली रीति

यह वैदर्भी एवं गौडी रीति के अवशिष्ट वर्णों का मिश्रित रूप है । प्रसाद गुण के प्रकाशक वर्ण शब्द और अर्थ के सुन्दर गुम्फन तथा पाँच-छः पदों तक समासों वाली शैली को पा चाली रीति कहते हैं ।[1] किन्तु आचार्य वामन के अनुसार

---

1. ------------- वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः ।
समस्तपञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिका मता ॥ - साहित्यदर्पण 9/4.

माधुर्य और सौकुमार्य गुणों से युक्त रीति का नाम पाञ्चाली है ।[1] आचार्य मम्मट ने अपने काव्यग्रन्थ काव्य प्रकाश में 'पाञ्चाली रीति' को ही 'कोमला वृत्ति' कहा है तथा उसका लक्षण विश्वनाथ द्वारा दिये गये पाञ्चाली रीति के लक्षणानुसार ही किया है ।[2] उद्भटाचार्य के कथनानुसार- 'कोमला वृत्ति ही ग्राम्या वृत्ति' कहलाती है ।[3] विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य में वेङ्कटाध्वरि ने वैदर्भी तथा गौडी रीति का तो सुललित ढंग से अनेक स्थानों में परिपाक किया है, किन्तु पाञ्चाली रीति का भी यदा-कदा समुचित प्रयोग करने से काव्य की छटा में चार चाँद लग गए हैं-

कवि ने गङ्गानदी वर्णन में गङ्गा नदी के उद्भव पर प्रकाश डालने के लिए पाञ्चाली रीति का अवलम्बन लिया है-

सा सर्वतोमुखवती तटिनी सरागां

मूर्तिर्विधेरिव बिभर्ति सरस्वतीं च ।

---

1. माधुर्यसौकुमार्योपपन्ना पाञ्चाली ॥ - काव्यालङ्कारसूत्रे 1/2/13.

2. कोमला परैः ॥ परैः शेषैः । - काव्यप्रकाशे 9/80.

3. शेषैर्वर्णैर्यथायोगं कथिता कोमलाख्यया ।

ग्राम्यां वृत्तिं प्रशंसन्ति काव्येष्वादृतबुद्धय ॥

- काव्यालङ्कारसारसङ्ग्रह 1/7.

भेदस्त्वयान् बलिभिदश्चरणारविन्दा-

दाद्या बभूव चरमा किल नाभिपद्मात् ॥ 77 ॥

गाङ्गानि वारि गरुडध्वजपादपद्मा-

दाविर्बभूवुरपुनन् पुनरिन्दुमौलिम् ।

निन्युर्विचित्रममृतं सगरान्वयं च

नेतोऽधिकं भुवि पवित्रतमं समं वा ॥ 76 ॥

अल्पसमासों से युक्त एवं मधुरवर्णों तथा कठिनवर्णों से हीन होने के कारण यहाँ पाञ्चाली रीति के दर्शन होते हैं-

प्रतिनगरमिहारामाः प्रत्यारामं पचेलिमाः क्रमुकाः ।

प्रसवाः प्रतिक्रमुकमप्युत्सर्पति मधुततिः प्रतिप्रसवम् ॥ 166 ॥

प्रतिमधुबिन्दु मिलिन्दाः प्रेङ्खन्ति प्रतिमिलिन्दमारावाः ।

प्रत्यारावं सुदृशां मदा उदाराः प्रतिमदं मदनः ॥ 167 ॥

काञ्चीवर्णन मे कवि ने यत्र-तत्र पाञ्चाली रीति का प्रयोग किया है । जिसके कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं-

तापत्रयप्रशमनादमृतं ग्रहीतुं

तामेव वैधहयमेधवपामुपासे ।

अम्भोधिजाधरसुधारसवासितेन
या चुम्बिता वरदराजमुखाम्बुजेन ॥ 271 ॥

पद्धिमन्याकर्षोचितगन्धप्रसवान् प्रपश्च पुन्नागान् ।
अतनुग्राशुगकलनात्सम्प्राप्तानधिकरेणुसम्पर्कम् ॥ 450 ॥

ओजव्यञ्जक वर्णों, रेफ इत्यादि का अभाव तथा अल्पसमासोपेत होने के कारण यहाँ कोमला वृत्ति अथवा पाञ्चाली रीति स्पष्ट परिलक्षित हो रही है-

वरदं भो भज सततं शरदम्भोरुहविलोचनं देवम् ॥
परदम्भोपहतिकरं हर-दम्भोलिधर-मुखामरवाशनुतम् ॥ 270 ॥

इयं काञ्ची काञ्ची करिशिखरिणः कापि नगरी-
गरीयस्यां यस्यां विहरणजुषां पङ्कजदृशाम् ।
मुखं दर्शं दर्शरजनिकरमादर्शममल-
स्वरूपं के पङ्केरुहमपि न निन्दन्ति रसिकाः ॥ 265 ॥

सुमनोजनतास्थानं स्थाने सद्रूपशोभनी सेयम्
सुरताभ्युदयविधात्री शुभकाञ्ची साधु रञ्जयति चेतः ॥ 266 ॥

पिनाकिनी गरुड़ नदी श्रीदेव नायकवर्णनम् कवि ने पाञ्चाली रीति में किया है-

पिनाकिनीं पश्य घनाघनाशिनीं

जलाच्च गस्ह्यापगामपि ।

इदंतटे राजति देवनायक:

परोऽत्र सर्गादिव देवनायक: ॥ 381 ॥

प्रस्तुत पद्यों के अतिरिक्त कवि ने श्रीमुष्णक्षेत्रयज्ञवराहवर्णन पाञ्चाली रीति में किया है जिसके कतिपय पद्य श्लाघनीय हैं-

अद्य प्रत्नं परिक्रमं सच्चरित्रं देव: प्रीत: सुप्रभाता निशा मे ।

श्रीमुष्णं यन्मुष्णदंह:सहस्रं क्षेत्रं प्राप्तं नेत्रयो: पात्रभावम् ॥ 382 ॥

अपि च-

वरा वराहरूपिणी चराचरान्तरस्थिता-

सुरासुरानुसेविता धराधरादिदेवता ।

सदा सदावलिस्तुता मुदामुदारशेवधि-

हिता हि तार्क्ष्यकेतना नता न तापतां नयेत् ॥ 383 ॥

पाञ्चाली रीति युक्त कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है-

प्रशस्तगुणसिन्धवे प्रपदनस्पृशां बन्धवे

स्वतोऽपहतपाप्मने सकलदेहिनामात्मने ॥

नम: कमलवासिनीनयनसौहृदयसंदायिने

तम: शमविधायिने तरणिमण्डलस्थायिने ॥।3 ॥

भानुभानुदलदब्जलोचनं भक्तलोकभवपाशमोचनम् ॥
धाम तामरसवासिनीसखं हेमवर्णमिह सौति मे सुखम् ॥ 14 ॥

लक्ष्मीं वक्षसि बिभ्रदप्यविरतं रामाकृतिः श्रीपति-
वृत्तिं कामपि मानुषीमभिनयन्वीराग्रयायी प्रियाम् ।
कल्याणीं तु वनीमनीनयदहो कस्याप्यमृष्यन्वचो
मेदिन्यामवलोकितः किमपरो मानी पुमानीदृशः ॥ 48 ॥

गातुं क ईष्टे श्रितरामभद्रान् गणान् गुणानां गणनादरिद्रान् ।
प्राचेतसाद्याः कवयोऽनवद्या यदेकदेशाकलनेऽपि नेशाः ॥ 49 ॥

विद्याविहरणोद्यानं विनयास्थानमण्डपः ।
सौलभ्यप्राभवोत्कर्षसमावेशनिवेशनम् ॥ 54 ॥

स्तुवद्भवनिवर्तके सति हरौ कविः सूक्तिभिः
करोति वरवर्णिनीचरितवर्णनं गर्हितम् ।
अनीतिरवनीपतिर्गृहशुनीतनुं मौक्तिकै-
र्विभूषयति देवतामुकुटभागयोग्यैर्यथा ॥ 543 ॥

प्रौढपङ्क्तिरथागारपरिष्कारहरिन्मणिः ।
जानकीलोचनद्वन्द्वचकोरानन्दचन्द्रमाः ॥ 51 ॥

संसारमार्गसंचारश्रान्तच्छायामहीरुहः ।
सर्वराक्षसवेतालसमुच्चाटनमान्त्रिकः ॥ 52 ॥

कस्णारसकल्लोलकदम्बवरुणालयः ।
तपोधनजनाकाङ्क्षातटाकनवतोयदः ॥ 53 ॥

सौजन्यवादान्ययोः सामानाधिकरण्यभूः ।
सौमुख्य-मुख्यभवनं सौहार्दैकवितर्दिका ॥ 55 ॥

अद्भुतोत्साहशक्तीनामसाधारणजीविका ।
प्रसादलक्ष्म्याः प्रासादः प्रतापस्य परा गतिः ॥ 56 ॥

जम्भशासनजीवातुर्जन्मगेहं जयश्रियः ।
दुर्वारघोरदारिद्र्यदर्वीकरखगेश्वरः ॥ 58 ॥

गृध्रराजस्य नाकादिलोकाक्रमणवर्तनी ।
कबन्धमयकासारकवलीकरणातपः ॥ 62 ॥

शबरीचित्तकुमुदशारदज्योत्स्नकोदयः ।
पावमानियशःकाशप्रकाशशारदागमः ॥ 63 ॥

प्रगल्भवालिजीमूतप्रोत्सारणसमीरणः ।
सुग्रीवराज्यसामग्री सुदिनं काननौकसाम् ॥ 64 ॥

पाञ्चाली रीति का अत्यन्त सुललित श्रुतिमधुर अस्मिन् श्लोक की छटा चित्ताकर्षक है-

नन्दत्कंदर्पदर्पक्षपणनिपुणदृग्वह्निसम्पन्नभाला-
स्रग्य: फण्यग्रगण्यप्रकरमयतया भीषणैर्भूषणैर्य: ।
कान्त:सान्त:पुरस्सन्कवलितगरलो राजते राजतेऽद्रौ-
मह्यां सह्यात्मजाग्रे विहरति सुचिरं शंकर: शङ्खरोचि: ॥ 443 ॥

कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

व्यालाधिपेशयशुभस्थलभूषितेला:
क्ष्वेडाशनायतनसान्द्रतरान्तराला: ।
चोला विभान्ति पवमानविहारवेला-
दोलायमानसहकारनवप्रवाला: ॥ 446 ॥

अभ्रंलिहानहह पश्य पयस्द्वृधाया
रोधोरुह: पृथुफलानिह नारिकेलान् ।
आगच्छते सवितृमण्डलमाश्रिताय
देवाय भक्तित इवात्तनवोपहारान् ॥ 448 ॥

ढ. लाटी रीति

वैदर्भी और पाञ्चाली इन दोनों के लक्षणों से कुछ-कुछ युक्त रीति को

लाटी रीति कहते हैं ।[1] भाव यह है कि लाटी रीति में वैदर्भी एवं पाञ्चाली रीति के मध्यम मार्ग का अनुसरण है । इसमें पदरचना बड़ी ही मृदुल होती है ।

विश्वगुणादर्श चम्पू में वेङ्कटाध्वरि जी ने लाटी रीति का भी कहीं-कहीं पर समुचित प्रयोग किया है । सूर्यवर्णनम् में लाटी रीति के स्पष्ट दर्शन हो रहे हैं-

आशापालेषु पाशायुध-यम-बलभिन्मारुतेशादिकेषु
प्रायो भूयस्सु जाग्रत्स्वपि च शुचितया भासुरा भूसुराद्याः ॥
यस्मै कालत्रयेऽपि प्रतिदिवसममी कुर्वते ह्यर्घ्यप्रदानं
सैषा त्रय्येव विद्या तपति रविमयी सर्वलोकान् पुनाना ॥ 11 ॥

भूलोक वर्णन में कवि श्री ने वैदर्भी और पाञ्चाली रीति में मध्यम मार्ग का अनुगमन करने वाली इस लाटी रीति का सुन्दर, मृदुल पदरचना वाले इस श्लोक में हरिणी वृत्त के माध्यम से उपनिबद्ध किया है-

दुरितभरितक्षोणीक्ष्मापप्रसादनिरादराः
कमलनयनस्वैरक्रीडागृहायितहृद्गुहाः ॥
निगमपदवीनिर्वाहाय क्षितावुदिताः स्वयं
कति न कृतिनः संदृश्यन्ते ? कलावपि निर्मलाः ॥ 32 ॥

---

1. लाटी तु रीतिर्वैदर्भीपाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता । - साहित्यदर्पण 9/5.

अर्थात् पापों से परिपूर्ण उन्मत्त राजाओं की प्रसन्नता का अपमान करने वाले कमलनयन के स्वेच्छा-विहार के लिये हृदय के मन्दिर बनाने वाले, वेद मार्गों की रक्षा के लिए पृथ्वी पर स्वयं उत्पन्न हुए, शुद्ध अन्तःकरण वाले सज्जन कलियुग में भी कितने नहीं दिखायी देते ?

'अयोध्यावर्णन' में कवि ने श्रीराम के गुणों की महिमा का वर्णन लाटी रीति युक्त प्रसाद गुण का रसास्वादन कराने वाले इस श्लोक से किया है जो लाटी रीति की अतिमधुर पदरचना का उत्कृष्ट उदाहरण है-

कल्याणोल्लाससीमा कलयतु कुशलं कालमेघाभिरामा

काचित्साकेतधामा भवगहनगतिक्लान्तिहारिप्रणामा ॥

सौन्दर्यह्नीणकामा धृतजनकसुतासादरापाङ्गदामा

दिक्षु प्रख्यातभूमा दिविषद्भिनुता देवता रामनामा ॥ 38 ॥

अन्यद् च -

ध्यायामि राममभिरामगिरा मरन्द-

धारामदभ्रमितराममरोर्विरामम् ।

आराममद्भुततरामलसद्गुणानां

धोरामयघ्नममुरामरवन्दिताङ्घ्रिम् ॥ 69 ॥

लाटी रीति के कतिपय उद्धरण यहाँ पर उद्धृत किये जा रहे हैं-

लक्ष्मीं वक्षसि बिभ्रदप्यविरतं रामाकृतिः श्रीपति-

वृत्तिं कामपि मानुषीमभिनयन्वीराग्रयायी प्रियाम् ।

कल्याणीं तु वनीमनीनयदहो कस्याप्यमृष्यन्वचो

मेदिन्यामवलोकितः किमपरो मानी पुमानादृतः ॥ 48 ॥

सरस्वत्याऽऽश्लिष्टा सवितृतनयालिङ्गितङ्करा

स्फुरद्दुच्छस्वच्छा प्रकृतिरिव भाति त्रिगुणभाक् ।

तथाप्येषा दोषापनयनपटुः स्वाकलनया

प्रगल्भं संसारं प्रशमयति कंसारिपदभूः ॥ 80 ॥

कन्यां कामप्युदूह्य प्रविजहदुदयद्यौवनामङ्ग एनां

द्रव्याशापाशकृष्टो भ्रमति चिरतरं हन्त देशान्तरेषु ।

अन्योन्याश्लेषवाञ्छाविगलितवयसोरात्तमालिन्यमत्यो-

र्दम्पत्योर्व्याकृतैवं हतविधिरुभयोर्लोकयोः शोकयोगम् ॥ 92 ॥

हर्म्यस्थानमधर्मकर्मविततेर्दुर्मानिधर्मासनं

शास्त्रस्तोमललाटभूलिपिलयः शान्तिः सवानामपि ।

सर्वाम्नायवचस्समापनदिनं संस्था सदर्चाविधे-

रर्थाशाजनिभूरभूदिह महानर्थावहो यं कलिः ॥ 94 ॥

सकर्पूरस्वादुक्रमुकनववीटीरसलस-

न्मुखाः सर्वश्लाघापदविविधदिव्याम्बरधराः ।

लसद्रत्नाकल्पा घुमघुमितदेहाश्च घुसृणै-

युवानो मोदन्ते युवतिभिरमी तुल्यरतिभिः ॥ 115 ॥

कृष्णाश्लेषविशेषिताऽसितरुचे कालिन्दि तुभ्यं नमः

कुञ्जेभ्यः श्रितताविकाम्बुकणिकापुञ्जेभ्य एषोऽञ्जलिः ।

गोपीभ्यः परिरिप्सया मुररिपोस्तेषु स्थिताभ्यो नति-

र्नाथायाभिसमासिताय च नमोवाकानधीयीमहि ॥ 123 ॥

नमामि गिरिनन्दिनीरमणपादपूजाहृता-

मिताघनिकरान् कराञ्चितवराक्षमालान् सदा ।

अमूनमलचेतसश्शम-दमादियोगावहान्

श्रुतेर्गुणनिकानिकामपरिपूतवक्त्राम्बुजान् ॥ 159 ॥

दनुजभिदभिषेकैः सत्पुराणावलोकैः

पुनरपहतमोहैः पुण्यतीर्थावगाहैः ।

भवकथनविदूरैर्ब्रह्मविद्याविचारैः

क्षणमिव शुभचर्याः कालमेते नयन्ति ॥ 184 ॥

कामादिवैरिगणभीमानवद्यनिजनामाभिलाषगरिमा

वैमानिकार्यसमभूमा मतौ वचनसीमातिलङ्घिमहिमा ।

श्रीमाननूनकलसोमाननो विमलधामावमानितरविः

क्षेमाणि जृम्भयतु भूमावमुत्र च स रामानुजो यतिप

उपर्युक्त सभी श्लोकों में कवि ने वैदर्भी-पाञ्चाली रीति मिश्रित सुललित पदावली का प्रयोग किया है। जो उन्हें लाटी रीति के सुप्रयोग में सिद्धहस्तता प्रदान करती है।

ये तोयैर्नादेयैरभिषिक्तास्ते हि तापमुज्झन्ति ॥
प्रत्युत जहाति तापं कावेरी शंकराभिषेकेण ॥ 444 ॥

गङ्गानुषङ्गाद्यमुना सदर्पेत्यसह्यतापा बत सह्यकन्या ।
गङ्गाधरे स्वैरभिषिच्यमाने तोयैः स्वयं तापमियं जहाति ॥ 445 ॥

लोलद्दीर्घदला बृहत्तरकला वातोल्ललद्धूलिभि-
श्छन्नाः प्रांशुतमाः स्फुरन्ति पुरतो ये नारिकेलद्रुमाः ।
धूमास्वादनपात्रधारिण इमे द्राघिष्ठचञ्चज्जटा
भस्मोद्धूलितमूर्तयो विवसनाः पाखण्डिभेदा इव ॥ 449 ॥

स्नान्ति प्रातरधिस्रवन्ति विधिवत्संध्यादि कर्माचर-
न्त्यग्नीनादधते मखान्विदधते शास्त्राणि चाधीयते ।
अभ्यर्चन्ति सुरान्पराध्यकुसुमैरर्चन्ति किंचातिथी-
नन्नैः किंतु पुरातनैस्तनुममी पुष्यन्ति दूष्यन्त्यतः ॥ 453 ॥

अपि हन्त चोलवासस्थैर्यवतीनां चिराय युवतीनाम् ।
अपक चुलिकाबन्धौ कुचकुम्भाविति विरुद्धमुपलब्धम् ॥ 454 ॥

लाटी रीति युक्त शैली में विरचित यह पद्य प्रशंसनीय है-

परिगतसहकारैः प्रांशुभिर्नारिकेलै-

दिनकरकरधारादुष्प्रवेशान्तरेभ्यः ।

चुलुकितदुरितेभ्यश्चोलदेशस्थितेभ्यो-

नम इदमखिलेभ्यो नाथदिव्यस्थलेभ्यः ॥ 465 ॥

अपि च-

वारस्त्रीकुचमर्दिभिर्विरचयन्त्यर्घ्यादिदानं करै-

स्तद्वीटीरसवासितैश्च वदनैर्जल्पन्ति मन्त्रानमी ।

द्रव्यं देवलका हरन्त्यचकिता देवस्य तत्पूजिता-

स्वेतासु प्रतिमासु हन्त भविता किं देवतासंनिधिः ॥ 466 ॥

कावेरी नदी वर्णन में भी कवि ने इस रीति का समुचित प्रयोग किया है-

स्वर्णवन्तं विदुः कान्तं रामा हेमापगामिमाम् ।

दाम्पत्यमनयोरेतदनुरूपं विशोभते ॥ 392 ॥

परिशोभितामुभपार्श्वा मध्यमहितरङ्गराजतः स्फुरिता ।

कथमिव दधाति कीर्तिं कावेरी कनकनिम्नगेत्येषा ॥ 393 ॥

---------::0::---------

अध्याय पञ्चम्

गुण निरूपण

गुण निरूपण

काव्य में गुणों की स्थिति अपरिहार्य है। गुण काव्य को सरस, सुमधुर एवं रूचिकर बनाते हैं। जिस प्रकार से भौतिक प्रसाधन मनुष्य के शरीर की श्री वृद्धि करते हैं, और शूरता-वीरता उस शरीर की आत्मा का उत्कर्ष [1] ठीक उसी प्रकार अलङ्कार काव्य शरीर की सुन्दरता को बढ़ाते हैं तथा गुण काव्यात्मा रस के उत्कर्ष को गुणों के अभाव में कविता-कामिनी की सरस्ता, गतिशीलता प्रसादात्मकता तथा स्वभाविकता में कमी आ जाती है। और उपेक्षा का पात्र हो जाता है। अतः अपने काव्य में चारूता लाने के लिए एक सफल कवि को माधुर्योजादि गुणों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान होना परम् आवश्यक होता है। जिससे वह सहृदय सामाजिकों के हृदयों को सरलतापूर्वक आनन्दानुभूति करा सके। अतः गुण काव्य में कान्तिमत्ता एवं स्निग्धता का संचार करते हैं। काव्य शोभा की उत्पत्ति हेतु काव्य में गुणों का होना अनिवार्य है। अग्निपुराणों के अनुसार जो साधन काव्य में महती शोभा लाता है उसे 'गुण' कहते हैं।[2] गुणों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए अग्निपुराण में कहा गया है कि गुणों से रहित काव्य अलङ्कृत

---

1. काव्यशोभाया: कर्तारो धर्मा: गुणा: ।
   तदतिशयहेतवस्त्वलङ्कारा: ॥ - काव्यालङ्कारसूत्र - 3/1/1/2.

2. य: काव्ये महती छायामनुगृहणात्यसौ गुण: ।
   - अग्निपुराण - 346/3.

होने पर भी उसी प्रकार प्रीतिजनक नहीं होता जिस प्रकार से स्त्री के हारादि आभूषण केवल भार स्वरूप होते हैं ।[1] महाराज भोज के अनुसार निर्गुण काव्य अलङ्कृत भी श्रवणीय नहीं होता । गुणयुक्त काव्य की प्रशंसा भोज कवि करते हैं ।[2]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि ओज, प्रसाद आदि गुण काव्य में अनिवार्य एवं अचल स्थिति से रहते हैं । ठीक इसके विपरीत अलङ्कार ‡अनुप्रास, यमक, उपमादि‡ काव्य के लिए अनिवार्य नहीं हैं । अतः काव्य में गुणों का स्थान अलङ्कारों की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण है ।

गुण और अलङ्कार

साहित्य में अलङ्कारों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है । अग्निपुराण के अनुसार अलङ्कार रहित कवि की वाणी उसी प्रकार सुशोभित नहीं होती है, जैसे विधवा स्त्री समाज में सुशोभित नहीं होती है । इसके अतिरिक्त ध्वनिवादी आचार्यों ने भी अलङ्कारों के महत्त्व का अनुभव करके अलङ्कार ध्वनि को स्वीकार करके अलङ्कारों की महत्ता को व्यक्त किया है ।

---

1. निर्दोषं गुणवत् काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम् ।
   रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ॥ -सरस्वतीकण्ठाभरण-1/2.
2. अलङ्कृतमपि प्रीत्यै न काव्यं निर्गुणं भवेत् ।
   वपुष्यललिते स्त्रीणां हारो भारायते परम् ॥ - अग्निपुराण - 346/3.

गुण और अलङ्कारों के भेद के विषय में पूर्ववर्ती आचार्यों के दो प्रकार के मत पाये जाते हैं । आचार्य भामह के काव्य ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार' के व्याख्याकार भट्टोद्भट ने अपने 'भामह विवरण' में गुण और अलङ्कार के भेद को मिथ्याकल्पना माना है । उद्भट के मतानुसार लौकिक गुण ‌(शूरता, उदारता, दयालुता) आदि का अलङ्कार (हार, अंगूठी आदि में तो भेद होता है) क्योंकि शूरता आदि गुणों का आत्मा के साथ समवाय सम्बन्ध होता है तथा हारादि आभूषणों का शरीर के साथ संयोग सम्बन्ध होता है किन्तु काव्य के गुण (ओज, माधुर्य, प्रसाद) और अलङ्कार (शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार व उपमालङ्कार) आदि काव्य में ये दोनों (गुण और अलङ्कार) समवाय सम्बन्ध से रहते हैं । अतः काव्य में गुण (ओज प्रसादादि) अलङ्कारों (अनुप्रासोपमा आदि में भेद नहीं किया जा सकता है और जो लोग गुण और अलङ्कारों में भेद मानते हैं वह तो केवल भेड़चालमात्र है । निम्नस्थ पंक्तियों में भट्टोद्भट का यही भाव लक्षित हो रहा है ।
"समवायवृत्तया शौर्यादयः संयोगवृत्त्या तु हारादयः गुणालङ्काराणां भेदः ओजः प्राट्टीनाम् अनुप्रासोपमादीनां चोभयेषामपि समवायवृत्त्या स्थितिरिति गड्डलिकाप्रवाहेणैवैषां भेदः (भामहविवरण) अतः भट्टोद्भट का मत अभेदवादी है ।

दूसरा मत 'काव्यालङ्कार' के प्रणेता वामनाचार्य का है । आपका मत भेदवादी है । वामनाचार्य गुण और अलङ्कार दोनों में भेद स्वीकार करते हैं । अपने-अपने अक्षयग्रन्थ "काव्यालङ्कारसूत्र" में गुण-अलङ्कार के भेद का निरूपण

करते हुए लिखा है-काव्य की शोभा करने वाले उत्पादक धर्म गुण कहलाते हैं ।[1] अर्थात् काव्य या अर्थ के जो धर्म काव्य की शोभा के आधायक होते हैं वे गुण कहलाते हैं तथा वे गुण ओज प्रसादादि ही होते हैं । यमक आदि शब्दालङ्कार एवं उपमा आदि अर्थालङ्कार उस काव्य की शोभा के उत्पादक न होने से गुण नहीं कहे जा सकते हैं । क्योंकि ओज, प्रसाद आदि गुणों के अभाव में केवल यमक अथवा उपमा आदि अलङ्कार काव्य की शोभा को बढ़ाने वाले नहीं हो सकते हैं और ओज, प्रसादादि गुण तो यमक, उपमा आदि के अभाव में भी काव्य के शोभाधायक हेतु हो सकते हैं । इसलिये वे ही गुण कहे जा सकते हैं ।

काव्य की शोभा वृद्धि करने वाले धर्म अलङ्कार होते हैं-जैसे- सुन्दर शोभा-युक्त रमणी के अंगों की शोभा वृद्धि तभी आभूषण कर सकते हैं जबकि रमणी में सौन्दर्यादिगुण पहले ही से विद्यमान होते हैं । उसी प्रकार काव्य में शोभाधायक गुणों के (ओज, प्रसाद आदि के) विद्यमान होने पर ही अनुप्रासादि अलङ्कार शोभा वृद्धि करने में समर्थ हो सकते हैं ।[2] अत: वाक्य के गुण काव्य के स्वरूप

---

1. काव्यशोभाया: कर्त्तारो धर्मा: गुणा: ।
तदतिशयहेतवस्त्वलङ्कारा: ॥ - काव्यालङ्कारसूत्र-3/1/1/2.

2. युवतेरिव रूपमङ्ग काव्यं स्वदते शुद्धगुणे तदप्यतीव ।
विहितप्रणयं निरन्तराभि: सदलङ्कारविकल्पनाभि: ॥

- काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ-3/1/1.

यदि भवति वचश्च्युतं गुणेभ्यो वपुरिव यौवनवन्ध्यमङ्गनाया: ।
अपि जनदयितानि दुर्भगत्वं नियतमलङ्करणानि संश्रयन्ते पूर्वे नित्या: ॥
- काव्यालङ्कारसूत्र-3/1/3.

आधायक होते हैं तथा अलङ्कार उत्कर्षाधायक होते हैं तथा गुण काव्य के लिये अनिवार्य होते हैं और अलङ्कार अनिवार्य नहीं होते हैं। क्योंकि अलङ्कारों के बिना भी काव्य में काव्यत्व विद्यमान रहता है। इसके विपरीत ओज प्रसादादि गुणों के विद्यमान न रहने पर काव्य में काव्यत्त्व नहीं रहता है। इससे स्पष्ट है कि काव्य गुण अनिवार्य होते हैं और अलङ्कार अनिवार्य नहीं होते हैं।

वामन की गुण सम्बन्धी इस मान्यता के आधार पर ही मम्मट ने अपने काव्य लक्षण में 'सगुणौ' कहकर काव्य में गुणों की अनिवार्यता तथा 'अनलङ्कृती पुनः क्वापि' से अलङ्कारों की अपरिहार्यता के अभाव का निर्देश किया है।

उपर्युक्त दो मतों के अतिरिक्त गुण-सम्बन्धी मान्यता के विषय में ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धनाचार्य का भी एक मत है। आनन्दवर्धन ने गुण और अलङ्कारों में भेद प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि "काव्य के आत्मभूत रसादिरूप ध्वनि के आश्रित रहने वाले धर्म को गुण कहते हैं और काव्य को शरीररूप शब्द और अर्थ के आश्रित रहने वाले धर्म को अलङ्कार कहते हैं।" अर्थात् गुण, काव्य की आत्मा स्वभाव आदि के आश्रित होते हैं और अलङ्कार काव्य के शरीर शब्द और अर्थ दोनों के आश्रित रहने वाले अलङ्कार होते हैं।

आचार्य मम्मट की गुण सम्बन्धी मान्यता ध्वनिवाद के प्रवर्तक और प्रतिस्ठापक आचार्य आनन्दवर्धन और वामनाचार्य की गुण-सम्बन्धी मान्यता का समर्थन है। अतः वामन के मत से काव्य में गुणों की अपरिहर्यता और आनन्दवर्धन

के मतानुसार काव्य की आत्मा रस-भाव आदि की रस धर्मता को ग्रहण करके गुण और अलङ्कार के स्वरूप का निरूपण करते हुए काव्य प्रकाशकार मम्मटाचार्य ने लिखा है ।[1] "जैसे शरीर में प्रधानतया विराजमान ‹चिरस्वरूप› आत्मा के शौर्यादि धर्म आत्मा के साथ अपृथक् सिद्ध अथवा नियतावस्थित रहा करते हैं और आत्म-तत्त्व की ही श्री-वृद्धि किया करते हैं उसी प्रकार काव्य में प्रधानतया विराजमान ‹आनन्दरूप› रस के भी माधुर्य, ओज तथा प्रसाद रूप धर्म, रस के साथ अपृथक सिद्ध किया नियमत: अवस्थित रहते हुये, रस-तत्त्व की ही शोभा-वृद्धि किया करते हैं और इसीलिये नये रस के गुण कहे जाते हैं ।[2]

इसके अतिरिक्त जो काव्य में रहने वाले काव्य के अङ्गभूत शब्द और अर्थ के कभी-कभी उत्कर्ष के हेतु होते हैं जैसे-हार, कटक, कुण्डलादि आभूषण वाच्यभूत शरीर का कभी-कभी उत्कर्षण करते हैं उन्हें काव्य में ‹अनुप्रासादि को› अलङ्कार कहते हैं ।

अत: निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि अलङ्कार ‹अनुप्रासोपमादि› काव्य

---

1. तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणा: स्मृता: ।
   अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्या: कटकादिवत् ॥ -ध्वन्यालोक-पृ०सं०-204.

2. ये रसस्याङ्गिनो धर्मा: शौर्यादिय इवात्मन: ।
   उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणा: ॥
   उपकुर्वन्ति तं सन्त येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।
   हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादय ॥ - काव्यप्रकाश - 8/66.

के शरीररूप काव्य और अर्थ की शोभा वृद्धि करते हैं तथा कभी-कभी रस के उपकारक होते हैं । तथा कभी-कभी नहीं भी होते हैं तथा गुण काव्य का आत्मा रस के स्थिर धर्म होते हैं तथा गुण काव्यात्मा रस के साथ रहकर रस के साक्षात् उपकारक होते हैं .

गुणों की संख्या

अग्निपुराण में उन्नीस गुणों का निरूपण हुआ है जिनमें से सात शब्द गुण छ. अर्थ गुण तथा छ: शब्दार्थ गुण है ।[1] भरतमुनि ने श्लेष, प्रसाद, समाधि, माधुर्य, ओज, पद सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता व कान्ति में दस गुण माने हैं ।[2]

मम्मटाचार्य ने गुण तीन स्वीकार किये हैं जो इस प्रकार हैं- 1. माधुर्य 2. ओज 3. प्रसाद ।

---

1. श्लेषो लालित्यगाम्भीर्ये सौकुमार्यमुदारता ।
   सत्येत यौगिणी चेति गुणाः शब्दस्य सप्तधा ॥ - अग्निपुराण-346/5, 6.
   माधुर्य संविधानं च कोमलत्वमुदारता ।
   प्रौढिसामयिकत्वं च तद्भेदाः षट् चकासति ॥ - तत्रैव-346/12.
   तस्य प्रसादः सौभाग्यं यथासंख्यं प्रशस्यता ।
   पाको राग इति प्राज्ञैः षट् प्रपञ्चविपञ्चितः ॥ - तत्रैव-346/18, 19.
2. श्लेषः प्रसादः समता समाधिः माधुर्योजः पदसौकुमार्यम् ।
   अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते ॥
   - नाट्य शास्त्र-17/95.

रीतिवाद के प्रवर्त्तक आचार्य भट्ट वामन ने 'गुण' को जो कि उनके अनुसार नित्य शब्दार्थ धर्म हैं दस प्रकार का माना है । ये दस शब्दगुण ही दस अर्थ गुण होते हैं । जो इस प्रकार हैं- 1. ओज, 2. प्रसाद, 3. श्लेष, 4. समता, 5. समाधि, 6. माधुर्य, 7. सौकुमार्य, 8. उदारता, 9. अर्थ-व्यक्ति और 10. कान्ति ।

शब्दगुण और अर्थगुण के नाम तो एक ही हैं किन्तु उनके लक्षण पृथक्-पृथक् हैं । वे लक्षण निम्नवत् हैं-

क्रमसं०	शब्द गुणों का लक्षण	क्रमसं०	अर्थ गुणों का लक्षण
1.	गाढबन्धत्वमोज: 3/1/5.	1.	अर्थस्य प्रौढिरोज: 3/2/2.
2.	शैथिल्यं प्रसाद: 3/1/6.	2.	अर्थवैमल्यं प्रसाद: 3/2/3.
3.	मसृणत्वं श्लेष: 3/1/10.	3.	घटना श्लेष: 3/2/4.
4.	मार्गाभेद: समता 3/1/11.	4.	अवैषम्यं समता 3/2/5.
5.	आरोहावरोहक्रम: समाधि: 3/1/12.	5.	अर्थदृष्टि: समाधि: 3/2/6.
6.	पृथक्पदत्वं माधुर्यम् 3/1/20.	6.	उक्तिवैचित्र्यं माधुर्यम् 3/2/10.
7.	अजरठत्वं सौकुमार्यम् 3/1/21.	7.	अपारुष्यं सौकुमार्यम् 3/2/11.
8.	विकटत्वमुदारता 3/1/22.	8.	अग्राम्यत्वमुदारता 3/2/12.
9.	अर्थव्यक्तिहेतुत्वमर्थव्यक्ति: 3/1/23.	9.	वस्तुस्वभावस्फुटत्वमर्थव्यक्ति: 3/2/13
10.	औज्ज्वल्यं कान्ति: 3/1/24.	10	दीप्तरसत्वं कान्ति: 3/2/14.

ध्वनिवादी आचार्य इस 'दशगुणवाद' को निराधार सिद्ध करते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में 'गुण' रस-धर्म है और तीन ही हैं क्योंकि रसास्वाद में सामाजिक हृदय की तीन ही अवस्थायें- 1. द्रुति, 2. दीप्ति, 3. प्रसन्नता सम्भव हैं। माधुर्य गुण श्रृंगारादि रसास्वाद में सहृदय की 'द्रुति' से सम्बद्ध है, ओज गुण रौद्रादि रसास्वाद में सामाजिक चित्त की 'दीप्ति' से सम्बन्धित है तथा प्रसाद गुण सर्व रससाधारण गुण है क्योंकि मन की प्रसन्नता सभी रसों के आस्वादन में सिद्ध हैं।

मम्मटाचार्य ने वामनोक्त दस गुणों का खण्डन करते हुए अपने तीन गुणों का प्रतिपादन किया है। उन्होंने वामनोक्त दस गुणों का खण्डन करते हुए लिखा है कि-

"इन (वामनोक्त दस गुणों) में से कुछ इन तीन गुणों (माधुर्य, ओज, प्रसाद) में अन्तर्भूत हो जाते हैं और कुछ दोष परिहार रूप होते हैं तथा कुछ कहीं पर गुण न होकर दोषरूप हो जाते हैं। इस प्रकार से दस गुण कहीं नहीं होते हैं।"[1]

---

1. केचिदन्तर्भवन्त्येषु दोषत्यागात्परे श्रिताः ।
   अन्ये भजन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश ॥ -काव्यप्रकाश - 8/72.

   पदार्थे वाक्यरचनं वाक्यार्थे च पदाभिधा ।
   प्रौढिव्यासिसमासौ च साभिप्रायत्वमस्य च ॥
   - काव्यप्रकाश - 8/39.

वामन के द्वारा निर्दिष्ट 1. श्लेष, 2. समाधि, 3. उदारता तथा 4. प्रसाद इन चार शब्द गुणों का अन्तर्भाव 'ओज' गुण के अन्तर्गत हो जाता है। वामन सम्मत 5. माधुर्य गुण को मम्मट आचार्य ने भी 'माधुर्य' के नाम से स्वीकार किया है तथा वामन के 6. अर्थव्यक्ति नामक गुण को मम्मट ने प्रसाद गुण के अन्तर्गत स्वीकार किया है। 7. वामन का 8. समता गुण कहीं दोष हो जाता है। अतः समता को गुण नहीं मानाजा सकता है। 9. सौकुमार्य तथा 10. कान्ति गुण को इसलिए गुण स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि कष्टत्व तथा ग्राम्यत्वदोष का परिहार रूप होने से सौकुमार्य तथा कान्ति गुण की सत्ता नहीं रह जाती है। अतः केवल तीन-माधुर्य, ओज व प्रसाद गुण ही स्वीकार करने योग्य हैं। शेष सात शब्द गुण स्वीकार्य नहीं हैं।

इस प्रकार मम्मट ने वामनोक्त दस शब्द गुणों का तीन गुणों में अन्तर्भाव स्वीकार करके तीन गुणों की मान्यता स्वीकार की है। तत्पश्चात् वामनोक्त दस अर्थगुणों का खण्डन करते हुए प्रकृत प्रकरण में स्पष्टतः उल्लेख किया है जो इस प्रकार से हैं- 1. पद के प्रतिपाद्य अर्थ (के बोधन) में वाक्य की रचना 2. वाक्य के प्रतिपाद्य अर्थ में पद का कथन करना 3. विस्तार या 4. संक्षेप करना और 5. अर्थ का (विशेषरूप से) साभिप्रायत्व। यह पाँच प्रकार की प्रौढ़ि होती है।

इस कथन के द्वारा मम्मट ने वामन के 1. ओजगुण (अर्थस्यप्रौढिरोजः) अर्थात् अर्थ की प्रौढि को ओज कहते हैं। किन्तु यहाँ प्रौढि का अर्थ, अर्थप्रति-

पादन कुशलता है । अत: प्रौढि केवल विचित्रतामात्र है । गुण नहीं हैं, क्योंकि प्रौढि के बिना भी काव्यत्व होता है । साभिप्रायत्वरूप ओज को अपुष्टार्थरूप दोष का अभाव माना जा सकता है । 2. अर्थवैमल्यरूप प्रसाद गुण को भी अधिक पदत्वरूप दोष के अभाव में माना जाता है । उक्ति की विचित्रता रूप 3. माधुर्य अनवीकृतत्व दोष के अभाव रूप में स्वीकार किया जा सकता है । अपारूष्यरूप 4. सौकुमार्य गुण को अमंगल और अश्लील रूप दोष के अभावरूप में मानकर अग्राम्य-त्वरूप 5. उदारता गुण को ग्राम्यत्व दोष के अभावरूप में स्वीकार किया है । 6. अर्थ व्यक्ति नामक गुण को वस्तु के स्वभाव को स्पष्ट करने वाले स्वभावोक्ति अलङ्कार का ही रूप माना है । अत: अर्थव्यक्ति पृथक्-पृथक् गुण नहीं हो सकता है । 7. श्लेष नामक गुण भी उक्ति वैचित्र्यरूप है, गुण नहीं है । 8. अर्थ की अविषमता रूप समता गुण को भी भग्नप्रक्रमता दोष का अभाव मात्र माना है । 9. रीतिरसत्व कान्ति गुण को रस अथवा गुणीभूत व्यङ्ग्य के अन्तर्गत स्वीकार किया जा सकता है । कवि के हृदय में रहने वाला ज्ञानरूप काव्य का कारण माना जाता है गुण ही नहीं अत: 10. समाधि को भी गुण नहीं मान सकते हैं । वह तो कवि के हृदय में रहने वाला ज्ञानरूप काव्य कारण है गुण नहीं है ।

इस प्रकार से वामनोक्त दस शब्द गुणों का और दस अर्थ गुणों का खण्डन करके मम्मटाचार्य ने तीन ही मुख्य गुण स्वीकार किये हैं । साहित्य जगत् में मम्मट की गुणत्रय की मान्यता एक अनुपम देन है, परवर्ती आचार्य विश्वनाथ, जगन्नाथ पण्डितराज आदि आचार्यों ने इन्हीं तीन गुणों को मान्यता प्रदान की है ।

अतः मम्मटोक्त तीन गुणों का ही काव्यात्मा रस के उत्कर्षाधायक होते हैं ।

इस प्रकार काव्यशास्त्रियों के इन विचारों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काव्य में गुणों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । निर्गुण काव्य, काव्य-रसिकों के द्वारा कथमपि श्लाघ्य नहीं हो सकता । यही कारण है कि संस्कृत महाकवियों ने अपने महाकाव्यों में गुणत्रय की योजना की है । महाकवि वेंकटा-ध्वरि ने भी अपने प्रसिद्ध विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य में माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण की सुन्दर योजना की है । जो सराहनीय है अब विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रयुक्त माधुर्य, ओज एवं प्रसाद गुण की विवेचना प्रस्तुत की जायगी ।

माधुर्य गुण

चित्त को द्रवीभूत करने वाला तथा संयोग श्रृंगार का आश्रित आह्ला-दात्मक गुण माधुर्य कहलाता है । विप्रलम्भ, करुण एवं शान्तरस में इसकी उत्त-रोत्तर चमत्कारिता परिलक्षित होती है ।[1]

---

1. आह्लादकत्वं माधुर्यं श्रृङ्गारे द्रुतिकारणम् ॥
   - काव्यप्रकाश - 8/68.

माधुर्य गुण में टवर्गादि श्रुतिकटु वर्णों को छोड़कर वे स्पर्शसंज्ञक वर्ण जो कि अपने वर्ग के अन्त्यवर्ण से संयुक्त होकर मधुर ध्वनि के उत्पादक हुआ करते हैं, उनका प्रयोग होता है । रचना या तो समास रहित होती है या स्वल्पसमास युक्त होती है ।[1]

आलोच्य महाकाव्य में प्रचुर मात्रा में माधुर्य गुण से ओत-प्रोत उदाहरण दिखायी पड़ते हैं । जिसके कतिपय उद्धरण प्रस्तुत हैं-

सा सर्वतोमुखवती तटिनी सरागां
मूर्तिर्विधेरिव बिभर्ति सरस्वतीं च ।
भेदस्त्वयान् बलिभिदश्चरणारविन्दा-
दाद्या बभूव चरमा किल नाभिपद्मात् ॥ 77 ॥

उपर्युक्त श्लोक में माधुर्य अभिव्यञ्जक वर्णों एवं छोटे-छोटे पदों के प्रयोग से वर्णन और भी अधिक सरस एवं रूचिकर हो गया है ।

कर्णाट देश वर्णन में कवि ने कर्नाटक देश का जो अनुपम वर्णन किया है

---

1. मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू ।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा ॥
- काव्यप्रकाश - 8/74.

वह सहृदय पाठकों को सहसा माधुर्य गुण की अभिव्यक्ति कराके हृदय को आह्-लादित करा रहा है-

प्रतिनगरमिहारामाः प्रत्यारामं पचेलिमाः क्रमुकाः ।
प्रसवाः प्रतिक्रमुकमप्युत्सर्पन्ति मधुततिः प्रतिप्रसवम् ॥ 166 ॥

प्रतिमधुबिन्दु मिलिन्दाः प्रेङ्खन्ति प्रतिमिलिन्दमारावाः ।
प्रत्यारावं सुदृशां मदा उदाराः प्रतिमदं मदनः ॥ 167 ॥

अपि च -

रजतपीठपुरं ननु काञ्चनश्रियमिद्धं वहते महदद्भुतम् ।
इह वसन् शुभरीतिवहो बुधः परमयोगत एव विराजते ॥ 175 ॥

श्रीकामाक्षीदेवी वर्णन में कवि का कथन माधुर्य गुण की निष्पत्ति करा रहा है-

इयं हि सर्वमङ्गला स तु श्मशानमन्दिरो
विभाति हैमवत्यसौ स याति दिक्षु भिक्षुकः ।
इयं तु कुङ्कुमाङ्किता स भस्मराशिरूषित-
स्त्वरालकुन्तला च सा जटाभिरेष भीषणः ॥ 315 ॥

काञ्चीनगरविभूषा कामाक्षी कल्पमञ्जरी भजताम् ।

रक्षा सुरसेनानां राजति शर्वस्य सर्वस्वम् ॥ 312 ॥

प्रस्तुत चम्पूकाव्य में कवि ने अधिकांशतः माधुर्य गुण युक्त पद्यों की रचना की है जिनकी सरसता कर्णप्रियता तथा मधुरता पाठकों को सहज ही आकर्षित कर लेती हैं। जिसके कतिपय छन्द द्रष्टव्य है-

इयं काञ्ची कञ्ची करिशिखरिणः कापि नगरी-

गरीयस्यां यस्यां विहरणजुषां पङ्कजदृशाम्।

मुखं दर्शं दर्शं रजनिकरमादर्शममल-

स्वरूपं के पङ्केरुहमपि न निन्दन्ति रसिकाः ॥ 265 ॥

सुमनोजनतास्थानं स्थाने सद्रूपशोभनी सेयम्।

सुरताभ्युदयविधात्री शुभकाञ्ची साधु र जयति चेतः ॥ 266 ॥

वरदं भो भज सततं शरदम्भोरुहविलोचनं देवम्।

परदम्भोपहतिकरं हर-दम्भोलिधर-मुखपखाशनुतम् ॥ 270 ॥

तापत्रयप्रशमनादमृतं ग्रहीतुं

तामेव वैधहयमेधवपामुपासे।

अम्भोधिजाधरसुधारसवासितेन

या चुम्बिता वरदराजमुखाम्बुजेन ॥ 271 ॥

रक्षा सुरसेनानां राजति शर्वस्य सर्वस्वम् ॥ 312 ॥

प्रस्तुत चम्पूकाव्य में कवि ने अधिकांशतः माधुर्य गुण युक्त पद्यों की रचना की है जिनकी सरसता कर्णप्रियता तथा मधुरता पाठकों को सहज ही आकर्षित कर लेती हैं। जिसके कतिपय छन्द द्रष्टव्य है-

इयं काञ्ची काञ्ची करिशिखरिणः कापि नगरी-
गरीयस्यां यस्यां विहरणजुषां पङ्कजदृशाम्।
मुखं दर्शं दर्शं रजनिकरमादर्शममल-
स्वरूपं के पङ्केरुहमपि न निन्दन्ति रसिकाः ॥ 265 ॥

सुमनोजनतास्थानं स्थाने सद्रूपशोभनी सेयम्।
सुरताभ्युदयविधात्री शुभकाञ्ची साधु रजयति चेतः ॥ 266 ॥

वरदं भो भज सततं शारदम्भोरुहविलोचनं देवम्।
परदम्भोपहतिकरं हर-दम्भोलिधर-मुखपखाशनुतम् ॥ 270 ॥

तापत्रयप्रशमनादमृतं ग्रहीतुं
तामेव वैधहयमेधवपामुपासे।
अम्भोधिजाधरसुधारसवासितेन
या चुम्बिता वरदराजमुखाम्बुजेन ॥ 271 ॥

<u>ओजगुण</u>

काव्य प्रकाशकार के अनुसार "ओज वह गुण है जिसे सामाजिक हृदय का प्रज्वलन-धधक उठना कहा जा सकता है जो कि वीररस में स्वभावत. हुआ करता है और जिससे ऐसा लगा करता है जैसे-चित्त की सारी शीतलता अकस्मात् नष्ट हो गयी और बदले में चित्त उदीप्त हो उठा है । जैसे-चित्त की सारी शीतलता अचानक नष्ट हो गयी और बदले में चित्त उदीप्त हो उठा हो ।"[1]

आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार 'ओज का स्वरूप चित्त की दीप्ति का ही स्वरूप है । चित्त की दीप्ति का आशय है चित्त की उज्ज्वलता-चित्त के जल उठने का ।[2]

"वीररस तो ओजस्वी है ही किन्तु उससे अधिक ओजस्वी है बीभत्सरस और बीभत्सरस से भी अधिक ओजस्वी रस है रौद्ररस"[3] इसका कारण यह है

---

1. दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति ॥
   - काव्य-प्रकाश - 8/69.

2. दीप्ति: प्रतिपत्तुर्हृदये विकासविस्तारप्रज्वलस्वभावा ।
   सा च मुख्यतया ओज:शब्दवाच्या ॥
   - ध्वन्यालोकलोचन - 2/9.

3. बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च ।
   - काव्य-प्रकाश - 8/69.

कि-वीर रस की अपेक्षा बीभत्स में और बीभत्स की अपेक्षा रौद्र में सामाजिक जन का चित्त अधिक धधक उठा करता है । साहित्य दर्पणकार का मत इस विषय में काव्यप्रकाशकार के मत का समर्थन करता है।[1]

ओजगुण के जो अभिव्यंजन - साधन हैं वे ये हैं-

1. वर्ण : जैसे कि कवर्ग आदि वर्गों के प्रथम अर्थात् (क, च, ट, त, प) और तृतीय अर्थात् (ग, ज, ड, द, न) वर्णों का उनके अपने-अपने अन्त्य (वर्गों के प्रथम वर्णों के अन्त्यवर्ण (ख, छ, ठ, थ, फ) और वर्गों के तृतीय वर्णों के अन्त्य वर्ण (घ, झ, ढ, ध, भ) वर्णों से संयोग अथवा नैरन्तर्य (जैसे कि 'पुच्छ,', 'बद्ध') आदि में, रेफ का नीचे, ऊपर अथवा दोनों ओर से किसी वर्ण से संयोग जैसे कि वक्र, निर्ह्राद आदि, समान वर्णों का परस्पर संयोग (जैसे कि वित्त, चित्त आदि में), ट, ठ, ड और ढ वर्ण तथा शकार और षकार ।

2. वृत्ति : जैसा कि दीर्घवृत्ति और दीर्घसमास और

3. रचना : जैसे कि उपर्युक्त वर्णादि वाली उद्धत पदसंघटना ।[2]

---

1. उनोजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते ।
   वीरबीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु ॥ - साहित्य दर्पण - 8/4.

2. योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः ।
   टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि ॥ - काव्यप्रकाशे 8/75.

दर्पणकार की भी यही अवधारणा है-

"वर्गस्याद्यतृतीयाभ्यां युक्तौ वर्णौ तदन्तिमौ" - साहित्य दर्पण 8/5.

उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफौ टठडढै: सह ।

शकारश्च षकारश्च तस्य व्यञ्जकतां गता: ॥ - साहित्य दर्पण 8/6.

तथा समासो बहुलो घटनौद्धत्यशालिनी ।

अस्मद् आलोच्य चम्पूकाव्य में कवि ने ओजगुण का प्रयोग प्रचुर मात्रा में यत्र-तत्र किया है जिससे उनकी यह कृति संस्कृत वाङ्मय की अनूठी कृति के रूप में विद्वत् समाज में आदृत है ।

ओजव्यञ्जक वर्णों से युक्त होने के कारण इन श्लोकों में ओजगुण स्पष्ट अभिव्यञ्जित हो रहा है-

प्रचण्डविश्वकण्टकप्रखण्डनैकपण्डित:

पतङ्गमण्डले वसन् य एष पाण्डवप्रिय: ।

अकुण्ठरीतिक: प्रसन्नपुण्डरीकलोचन:

स कुण्डलीन्द्रभूधरप्रकाण्डमण्डनायते ॥ 203 ॥

इतस्तावद्ग्रावव्यतिकर इत: सन्त्यजगरा

इतो लुण्टाकानां समुदय इत: कण्टकचय: ।

इतो व्याघ्रा उग्रा ज्वलनजनका वेणव इतो

वनं सलक्ष्यैतन्मन इदमहो मोहमयते ॥ 208 ॥

अपुण्यधौरेयहिरण्यदूनत्रिलोकशोकक्षपणाय शौरिः ।
कायाध्वायासनिरासदम्भः स्तम्भादिहाजृम्भत संभ्रमेण ॥ 216 ॥

एषा भूतपुरी निरीक्षितचरी दोषापहन्त्री मया
श्रीमानत्र गुणाब्धिराविरभवद्रामानुजार्यो मुनिः ।
त्रय्यन्तामृतसिन्धुमन्थनभवद्धैयङ्गवीनात्मकं
विज्ञानं यदुपज्ञमेव विदुषामद्यापि विद्योतते ॥ 223 ॥

भाले शुद्धमृदूर्ध्वपुण्ड्रतिलकः पद्माक्षमाला गले
दिव्यं शङ्खरथाङ्गचिह्नमनिशं दीप्तं भुजामूलयोः ।
वक्त्रे शौरिगुणैकवर्णनपरा वाचस्तदेनोमुचा-
मेतेषां हरिभक्तितुन्दिलहृदां वीक्षापि मोक्षावहा ॥ 240 ॥

इष्टात्स्वबान्धवधनादितरैरदृष्टं
यद्भुञ्जतेऽन्नमिह लक्ष्मणपक्षनिष्ठाः ।
दोषः किमेव दुरितापहरो गुणो वे-
त्येवं विविच्य परिपृच्छ गुणागुणज्ञान् ॥ 241 ॥

इष्टं बन्धितरैः सतामनदतां दोषो य एषोऽपरैः
शिष्टैः स्पृष्टमनश्नतामिह महाराष्ट्रादिकानां समः ।

एषां दूषयिता न कोऽपि नियताहार: परन्तु द्विज:

सर्वाशी नतु दूषणं हितभुजां तेषामिदं भूषणम् ॥ 242 ॥

वेदान्तार्यगिर: प्रसूनमृदवो मोदं दधाना: सताम्-

प्रौढग्रावकठोरकाण्यपि परं भिन्दन्ति हृन्दि द्विषाम् ।

नन्दाद्यार्यजनाभिनन्दितमृदुस्पर्शोऽपि पादो हरे-

दुर्भेदे शकटासुरे तु शतकोटयाकारमागान्न किम् ? ॥ 299 ॥

दर्पाविष्टकुदृष्टिदुष्टसमयोत्सादाय बोधाङ्कुरो-

द्भेदाय प्रबले कलावपि जयोत्पादाय वेदाध्वन: ।

श्रीमल्लक्ष्मणपक्षरक्षकबुधामोदाय पापाटवी-

च्छेदायार्थिमरुविजयतां वेदान्तविद्यागुरु: ॥ 300 ॥

वीर रस से अभिप्रेत इस श्लोक में सहृदय सामाजिक का चित्त प्रदीप्त हो उठता है-

वैकुण्ठो महताहताखिलमहारम्भं मदेनोच्चकै-

श्चण्डं खण्डयितुं हिरण्यकशिपुं बेतण्डमुत्कण्ठया ॥

सैहं वेषमशेषभीषणमहो प्रह्लादव्यसनासहिष्णुस्दगादाकण्ठकण्ठीरव: ॥ 19 ॥

अयोध्यावर्णनम् में वीर रस से ओत-प्रोत श्लोकों का प्रयोग कवि ने श्री राम के शौर्य को प्रकट करने हेतु किया है, जो ओज गुण को प्रकट करते हैं ।

इस सन्दर्भ में कतिपय श्लोक दर्शनीय हैं-

अभीष्टघटक. क्षितावतुलदीप्तकोदण्डभा-

गिति क्षमामिदं पुन: परममद्भुतं ब्रूमहे ॥

विधूतपरमार्तिको विघटितारिचक्र: स्वयं

स कुम्भजनकं प्रभु: शकलयाम्बभूव क्रुधा ॥ 42 ॥

धिक्कृत्यैव दशास्यदर्पशमनं धीशालिनं वालिनं

सोऽयं राक्षसवर्गनिग्रहकृते सुग्रीवमन्वग्रहीत् ।

तुङ्गप्रस्तरभङ्गलिप्सुरिह निश्शङ्कं त्यजन्

सङ्कल्पं कलयेत पङ्कजदलादाशप्रसङ्गाय क: ॥ 44 ॥

तत्ताट्क्ताटकादेहध्वान्तराजीवबान्धव: ।

सुबाहुमत्तमातङ्गसंहारवरकेसरी ॥ 59 ॥

भार्गवाग्रहदावाग्निपरिमार्जननिर्झर: ।

विराधाख्यदुरातङ्कविद्रावणमहौषधम् ॥ 60 ॥

खर-दूषणकिम्पाकखण्डनैकपरश्वध: ।

दुर्मोचनीचमारीचकीचकप्रबालानल: ॥ 61 ॥

गृध्रराजस्य नाकादिलोकाक्रमणवर्तनी ।

कबन्धमयकासारकवलीकरणातप: ॥ 62 ॥

दुर्निरोधधुनानाथजाड्यरोगचिकित्सक: ।
दुष्टनक्तंचरस्तोमधूमकेतुविजृम्भणम् ॥ 65 ॥

कुम्भकर्णनदाम्भोधिस्तम्भने कुम्भसंभव: ।
बलीयोरावणप्राणपाषाणदलनाशनि: ॥ 66 ॥

[तेजस्वी राम: मम हृदि रमते]

श्री कृष्ण की स्तुतिविषयक अस्मिन् श्लोक में वीर रस से परिपूर्ण ओज प्रकाशक वर्णों का संगम द्रष्टव्य है-

कंसं ध्वंसयते मुरं तिरयते हंसं तथा हिंसते
बाणं क्षीणयते बकं लघयते पौण्ड्रं परं लुम्पते ।
भौमं क्षामयते बलाद्बलभिदो दर्पं पराकुर्वते
क्लिष्टं शिष्टगणं प्रपन्नमवते कृष्णाय तुभ्यं नम: ॥ 13 ॥

'महाराष्ट्रवर्णनम्' में महाराष्ट्रदेशीय सेना का वर्णन भी ओज गुण का प्रकटन कर रहा है-

मायाचुञ्चुतया भयावहगति: प्रत्यर्थिपृथ्वीभुजां
महाराष्ट्रभटच्छटा रणपटुर्नो पर्यटाद्येत चेत् ।

देव-ब्राह्मणवर्गानिग्रहकृतो देशास्तुरुष्का इमे

निष्प्रत्यूहमनोरथा वितनुयुर्निर्दैव-भूमीसुरान् ॥ 144 ॥

अपि च -

देवक्षोणीसुरहितकृते दारितम्लेच्छपङ्के-

र्मह्यां सह्या कथमपि महाराष्ट्रयूथस्य चेष्टा ।

व्याधिव्यूहप्रतिहतिकृता व्यक्तमुग्रौषधानां

कायारोग्यप्रणयिहृदयैः कार्टवं मर्षणीयम् ॥ 145 ॥

सहृदय पाठक जन के हृदय में उत्साह नामक स्थायी भाव को जाग्रत करने वाला ओज व्यञ्जक यह श्लोक प्रस्तुत है-

युद्धाय प्रमिलन्तु हन्त पटवो योधाः सहस्त्राधिका

यद्येकोऽपि बलात्तुरुष्क-यवनेष्वारूढघोटो भटः ।

निस्त्रिंशं परिकम्पयन् स्वकटकान्निष्कामति क्रोधतः

सर्वे ते कृपणास्तृणान्यशरणाः खादन्ति सीदन्ति च ॥ 163 ॥

बीभत्स रस को प्रदर्शित करने वाला यह श्लोक ओज गुण का विलक्षण उदाहरण है-

नैतद्विभाति नगरं नगरम्यदुर्ग-

प्रागारसाधनदशात् विशां पतीनाम् ।
युद्धोन्मदभट शिरस्तट निस्सृतासृक्-
स्रोतः ततत्रभरविस्त्रपलास्थिसान्द्रम् ॥ 375 ॥

रक्ते भटे रणमुखे रुधिरेण तस्मिन् रक्ता भवत्यनरयो ऽपिदनुव्रतेव ।
शूरः स वेदतनुलायकखण्डिताङ्गः साऽप्युच्चकैरतनुसायकखण्डितेव ॥ 379 ॥

दीप्रोतिप्रभनाश्रितक्षितितलं दिव्ये विमाने स्थितो-
गाढाश्लिष्टकृपाणपाणि च करग्रस्तामरस्त्रीस्तनः ।
तत्संदत्तनखक्षतो बहुरप्रत्यर्थिबाणक्षतं
युद्धाग्नौ दुतजीवितं निजमपुर्वीरो मुदा वीक्षते ॥ 380 ॥

ओज गुण की अभिव्यक्ति इन श्लोकों में भी हो रही है-

नन्दत्कंदर्पदर्पक्षपणनिपुणदृग्वह्निसम्पन्नभाला-
रण्य: फण्यग्रगण्यप्रकरमयतया भीषणैर्भूषणैर्यः ।
कान्तः सान्तःपुरस्सन्कवलितगरलो राजते राजते द्रौ-
मह्यां मह्यात्मजाग्रे विहरति सुचिरं शंकरः शङ्खरोचिः ॥ 443 ॥

द्राघिष्ठं कुहनावराह ! भगवन्दंष्ट्रात्मकं ते दृढ-
स्तम्भं संप्रति चिन्तयामि जलधिस्नेहौघसंपूरिता ।

यस्मिन्विन्दति दीपभाजनविधामामोदिनी मेदिनी

चित्रस्तत्र च रत्नतानुरयते निष्कम्पदीपाकृतिम् ॥ 388 ॥

प्रसादगुण

"जिसे प्रसाद गुण कहते हैं वह सभी रसों में रहने वाला एक ऐसाधर्म है जिससे सामाजिक हृदय इस प्रकार भर उठता है जिस प्रकार अग्नि के द्वारा सूखा ईंधन अथवा जल के द्वारा स्वच्छ कपड़ा ।"[1] अर्थात् जिस प्रकार से सूखे ईंधन में अग्नि सहसा व्याप्त हो जाती है अथवा साफ धुले हुए वस्त्रों में जल सहसा व्याप्त हो जाता है उसी प्रकार जो चित्र में सहसा व्याप्त हो जाता है वह प्रसाद गुण कहलाता है और वह सभी रसों और समस्त रचनाओं में विद्यमान रहता है ।

अग्नि और जल इन दो उदाहरणों का आशय यह है कि जब रौद्र, वीरादि उग्र [ओजस्वी] रसों में प्रसाद गुण होता है तब वह सूखें ईंधन में अग्नि के समान हृदय में अनायास ही व्याप्त हो जाता है और जब श्रृंगार, करुण आदि कोमल [सरस] रसों में प्रसाद गुण होता है तब साफ वस्त्र में जल के समान हृदय में व्याप्त हो जाता है ।

इस सम्बन्ध में ध्वनिकार ने भी कहा है-

समर्पकत्वं काव्यस्य यत्तु सर्वरसान् प्रति ।

स प्रसादो गुणो ज्ञेय: सर्वसाधारणक्रिय: ॥ - ध्वन्यालोक 2/10

लोचनकार ने भी प्रसाद गुण के सम्बन्ध में यही अवधारणा प्रस्तुत की है-

"समर्पकत्वं सम्यगर्पकत्वं हृदयसंवादेन प्रतिपत्तृन् प्रति स्वात्मावेशेन झटिति शुष्ककाष्ठाग्निदृष्टान्तेन अकलुषोदकदृष्टान्तेन च । तदकालुष्यं प्रसन्नत्वं नाम सर्वरसानां गुण: उपचारात्तु तथाविधे व्यङ्ग्येऽर्थे यच्छब्दार्थयो: समर्पकत्वं तदपि प्रसाद: ।

- ध्वन्यालोक लोचन 2/10

साहित्य दर्पणकार व काव्यप्रकाशकार दोनों का प्रसाद गुण सम्बन्धी मतैक्य हैं-

चित्तं व्याप्नोति य: क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानल: ।
स प्रसाद: समस्तेषु रसेषु रचनासु च शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थ बोधका: श्रुतिमात्रत: ॥ - साहित्य दर्पण 8/7,8.

---

1. शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव य: ।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थिति: ॥
- काव्यप्रकाश 8/70.

"जिस [शब्द, समास या रचना] के द्वारा श्रवणमात्र शब्द से अर्थप्रतीति हो जाय, वह सब [वर्णों, समासों तथा रचनाओं] में रहने वाला प्रसादगुण माना जाता है ।"[1] अर्थात् प्रसादगुण के अभिव्यञ्जक ये हैं -

1. <u>वर्ण</u> : वे सुकुमार अथवा विकट वर्ण शब्द जिनके श्रवणमात्र से ही अर्थ प्रतीति हो जाय ।

2. <u>वृत्ति</u> : वह समास अथवा वृत्ति जिनके श्रवणमात्र से अर्थ का प्रतीति हो जाय ।

3. <u>रचना</u> : वह रचना जो श्रवणमात्र से अर्थ की प्रतीति करा दें । 'समग्रणां' अर्थात् सभी रसों और रचनाओं का साधारण धर्म प्रसादगुण होता है ।

विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य में कवि ने प्रसादगुण युक्त अनेक श्लोकों की रचना की है । जो उनकी काव्य प्रतिभा की परिचायक है । प्रसादगुण युक्त यह श्लोक दर्शनीय है-

कल्याणोल्लाससीमा कलयतु कुशलं कालमेघाभिरामा
काचित्साकेतधामा भवगहनगतिक्लान्तिहारिप्रणामा ॥

---

1. श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः ॥
- काव्यप्रकाश 8/76.

सौन्दर्यहत्रीणकामा धृतजनकसुता[illegible]ङ्गदामा

दिक्षु प्रख्यातभूमा दिविषद[illegible] देवता रामनामा ॥ 38 ॥

अर्थात् मङ्गलमय उल्लास [illegible] मेघ [illegible] तरह अति मनोहर, संसार रूपी वन के विचरण[illegible] गुणाम से युक्त, सौन्दर्य से काम को लज्जित करने वाले, सीता [illegible] के सादर धारणकर्त्ता, सभी दिशाओं में प्रख्यातकीर्ति, देवताओं द्वारा संस्तुत अयोध्या के निवासी, अनिर्वचनीय रामनाम से प्रसिद्ध देव कल्याण करें ।

यहाँ माधुर्योचित वर्ण, समास किंवा अनुद्धत गुम्फ सभी के सभी प्रसाद गुण का ही अभिव्यञ्जन करते प्रतीत हो रहे हैं ।

भयानक रस का आस्वादन कराने वाला यह श्लोक प्रसाद गुण का अभिव्यञ्जक है-

पुरः पुरो घनं वनं वने वने महागिरि-

महागिरौ महागिरौ विराजते गुहागृहम् ।

गुहागृहे गुहागृहे विहारतत्परो हरि-

र्हरौ हरौ निरङ्कुशः कृतेभसाध्वसो ध्वनिः ॥ 207 ॥

काञ्चीवर्णनम् में प्रसादगुण विरचित श्लोक दर्शनीय है जिसके श्रवणमात्र से तथा शब्द से ही अर्थ की प्रतीति सहसा हो जाती है-

शतमखमणिस्तोमश्यामं श्यानमहोश्वरे

शशिसखमुखं राजीवाक्षं समुन्नतनासिकम् ।

महितचरणं धातुः पत्न्या महस्तमसः परं

हृदि लगतु मे बिम्बोष्ठं तद्यथोक्तकृदाह्वयम् ॥ 28- ॥

"इन्द्रनील मणियों की राशि की तरह श्याम, शेषशायी, चन्द्रमुख, कमलनयन, सुन्दर रूप से उभरी हुई नासिका वाली, बिम्बोष्ठ, विधाता की पत्नी द्वारा पूजितचरण, यथोक्तकारी नाम से प्रसिद्ध, अज्ञान से परे वह वैष्णव तेज मेरे अन्तःकरण में वास करे ।"

यहाँ पर श्रवणमात्र से ही अर्थ की प्रतीति करा देने वाले प्रसादगुण युक्त कतिपय श्लोक अवतरित हैं-

रमणीयः स हि पुरुषो रमणी यत्रैव रज्यति विदग्धा ।

श्लोकः स एव सुभगश्चितं सक्तं हि यत्र रसिकस्य ॥ 317 ॥

कुम्भीभनाथवक्त्रः पुत्रः प्रथमो हिमाद्रितनयायाः ।

पञ्चास्यात्पितुरधिकः षडाननो नन्दनो द्वितीयो स्याः ॥ 319 ॥

शशाङ्कमौलिः सहकारमूले कैलासवासी स इहाविरासीत् ।

यस्याग्निभूर्दृक् च तनूभवश्च योषाऽपि भूषाऽपि च नागराजी ॥ 320 ॥

स प्रसादो गुणो ज्ञेय: सर्वसाधारणक्रिय: ॥ - ध्वन्यालोक 2/10

लोचनकार ने भी प्रसाद गुण के सम्बन्ध में यही अवधारणा प्रस्तुत की है-

"समर्पकत्वं सम्यगर्पकत्वं हृदयसंवादेन प्रतिपत्तॄन् प्रति स्वात्मावेशेन झटिति शुष्ककाष्ठाग्निदृष्टान्तेन अकलुषोदकदृष्टान्तेन च । तदकालुष्यं प्रसन्नत्वं नाम सर्वरसानां गुण: उपचारात्तु तथाविधे व्यङ्ग्येऽर्थे यच्छब्दार्थयो: समर्पकत्वं तदपि प्रसाद: ।

- ध्वन्यालोक लोचन 2/10

साहित्य दर्पणकार व काव्यप्रकाशकार दोनों का प्रसाद गुण सम्बन्धी मतैक्य हैं-

चित्तं व्याप्नोति य: क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानल: ।
स प्रसाद: समस्तेषु रसेषु रचनासु च शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थ बोधका: श्रुतिमात्रत: ॥ - साहित्य दर्पण 8/7,8.

---

1. शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव य: ।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थिति: ॥
- काव्यप्रकाश 8/70.

"जिस [शब्द, समास या रचना] के द्वारा श्रवणमात्र शब्द से अर्थप्रतीति हो जाय, वह सब [वर्णों, समासों तथा रचनाओं] में रहने वाला प्रसादगुण माना जाता है ।"[1] अर्थात् प्रसादगुण के अभिव्यञ्जक ये हैं -

1. वर्ण : वे सुकुमार अथवा विकट वर्णी शब्द जिनके श्रवणमात्र से ही अर्थ प्रतीति हो जाय ।

2. वृत्ति : वह समास अथवा वृत्ति जिनके श्रवणमात्र से अर्थ का प्रतीति हो जाय ।

3. रचना : वह रचना जो श्रवणमात्र से अर्थ की प्रतीति करा दें । 'सममरणां' अर्थात् सभी रसों और रचनाओं का साधारण धर्म प्रसादगुण होता है ।

विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य में कवि ने प्रसादगुण युक्त अनेक श्लोकों की रचना की है । जो उनकी काव्य प्रतिभा की परिचायक है । प्रसादगुण युक्त यह श्लोक दर्शनीय है-

कल्याणोल्लाससीमा कलयतु कुशलं कालमेघाभिरामा
काचित्साकेतधामा भवगहनगतिक्लान्तिहारिप्रणामा ॥

---

1. श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः ॥
- काव्यप्रकाश 8/76.

सौन्दर्यह्रीणकामा धृतजनकसुतासादराभाङ्गदामा

दिक्षु प्रख्यातभूमा दिविषदभिनुता देवता रामनामा ॥ 38 ॥

अर्थात् मङ्गलमय उल्लास की मन्दिर वर्षाकालीन मेघ की तरह अति मनोहर, संसार रूपी वन के विचरणगत श्रम के नाशक प्रणाम से युक्त, सौन्दर्य से काम को लज्जित करने वाले, सीता की कराञ्जलियों के सादर धारणकर्त्ता, सभी दिशाओं में प्रख्यातकीर्ति, देवताओं द्वारा संस्तुत अयोध्या के निवासी, अनिर्वचनीय रामनाम से प्रसिद्ध देव कल्याण करें ।

यहाँ माधुर्योचित वर्ण, समास किंवा अनुकूल गुम्फ सभी के सभी प्रसाद गुण का ही अभिव्यञ्जन करते प्रतीत हो रहे हैं ।

भयानक रस का आस्वादन कराने वाला यह श्लोक प्रसाद गुण का अभिव्यञ्जक है-

पुर: पुरो घनं वनं वने वने महागिरि-

महागिरौ महागिरौ विराजते गुहागृहम् ।

गुहागृहे गुहागृहे विहारतत्परो हरि-

र्हरौ हरौ निरङ्कुश: कृतेभसाध्वसो ध्वनि: ॥ 207 ॥

काञ्चीवर्णनम् में प्रसादगुण विरचित श्लोक दर्शनीय है जिसके श्रवणमात्र से तथा शब्द से ही अर्थ की प्रतीति सहसा हो जाती है-

शतमखमणिस्तोमश्यामं शयानमहीश्वरे

शशिसखमुखं राजीवाक्षं समुन्नतनासिकम् ।

महितचरणं धातुः पत्न्या महस्तमसः परं

हृदि लगतु मे बिम्बोष्ठं तद्यथोक्तकृदाह्वयम् ॥ 280 ॥

"इन्द्रनील मणियों की राशि की तरह श्याम, शेषशायी, चन्द्रमुख, कमलनयन, सुन्दर रूप से उभरी हुई नासिका वाली, बिम्बोष्ठ, विधाता की पत्नी द्वारा पूजितचरण, यथोक्तकारी नाम से प्रसिद्ध, अज्ञान से परे वह वैष्णव तेज मेरे अन्तःकरण में वास करे ।"

यहाँ पर श्रवणमात्र से ही अर्थ की प्रतीति करा देने वाले प्रसादगुण युक्त कतिपय श्लोक अवतरित हैं-

रमणीयः स हि पुरुषो रमणी यत्रैव रज्यति विदग्धा ।

श्लोकः स एव सुभगश्चितं सक्तं हि यत्र रसिकस्य ॥ 317 ॥

कुशलीभनाधवक्त्रः पुत्रः प्रथमो हिमाद्रितनयायाः ।

पञ्चास्यात्पितुरधिकः षडाननो नन्दनो द्वितीयो स्याः ॥ 319 ॥

शशाङ्कमौलिः सहकारमूले कैलासवासी स इहाविरासीत् ।

यस्याग्निभूर्दंक च तनूभवश्च योषाऽपि भूषाऽपि च नागराजी ॥ 320 ॥

सुरयौवपोपगीत: प्रात: पद्माननो मुनिध्यात: ।
व्यासकृतौ य: ख्यात: पाण्डवदूत: स दृक्पथं नीत: ॥ 342 ॥

कवित्वस्य गाम्भीर्यमौदार्यमृद्धे: प्रभुत्वस्य शौर्यं गुरुत्वस्य विद्याम् ।
महावंश्यताया: सदाचारपूर्ति महत्त्वस्य सौलभ्यमाकल्पमाहु: ॥ 344 ॥

विश्रुताश्रितवात्सल्यं वीरं विजयराघवम् ।
नमस्कुरुत यो गृध्रं समस्कुरुत दाहत: ॥ 347 ॥

श्रीरङ्गे शोभते यस्य श्रीरङ्गे शोभते च य: ।
नमोऽहं कलये तस्मै न मोहं कलये तत: ॥

प्रसादगुण के अभिव्यञ्जक श्लोक विश्वगुणादर्शचम्पू में यत्र-तत्र दृष्टिगत होते हैं । समुद्रवर्णन में कवि द्वारा प्रसादगुण मयी यह रचना देखिए-

जह्नोरपत्यं जगत: पवित्रं
कलत्रमद्धेस्तनय: कलात्मा ।
कन्या तु धन्या कमला बिभर्ति
जामातृभावं जगदीश ए ॥

यह श्लोक श्रवणमात्र से ही अर्थ की प्रतीति कराने में सहायक हैं । साथ ही शब्दों का सरल प्रयोग अर्थ को प्रकट करने में सक्षम है मध्यम समास ये सभी

गुण प्रसाद गुण की अभिव्यञ्जना कर रहे हैं ।

प्रसादगुण से ओत-प्रोत माधुर्य वर्णों से संयुक्त, मध्यम समास युक्त व श्रवण और शब्द मात्र से ही अर्थ का बोध कराने वाला यह श्लोक प्रशंसनीय है-

वरगुणगणसीमा वारिदश्यामधामा-

सततममररामासंघसंगीतनामा ।

परिहृतभवदामा भासिताकल्पहेमा-

मम कलयतु भूमा मङ्गलं रङ्गधामा ॥ 415 ॥

अर्थात् अच्छे गुण समुदाय की सीमा, मेघों की तरह श्याम शरीर, सदैव देवरमणियों के समुदाय द्वारा प्रगीत नाम वाले, संसार के बन्धनपाश के निवारक, चमकीले आभूषणों के सुवर्ण से युक्त रङ्गक्षेत्र के निवासी भगवान् मेरे कल्याण को बढ़ायें ।

----------::0::----------

अध्याय षष्ठ

छन्दो विचार

छन्दोविचार

छन्द वेद का पाँचवा अङ्ग है। इस प्रकार छन्दः शास्त्र वेद का पाद-स्थानीय है। वैदिक मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण तथा लय आदि को जानने के लिये छन्दों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

1. छन्दःशास्त्र की परम्परा

संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रसिद्ध छन्दों के नाम मिलते हैं जिससे यह स्पष्ट है कि छन्दःशास्त्र अत्यन्त प्राचीन है। छन्दःसूत्र की एक टीका में छन्दः शास्त्र के आचार्यों का क्रम इस प्रकार दिया गया है - "छन्दःशास्त्र के सर्वप्रथम आचार्य देवाधिदेव महादेव हैं, उनसे देवराज इन्द्र को यह शास्त्र मिला, इन्द्र से दुश्च्यवन को, दुश्च्यवन से तुरगुरु को, तुरगुरु से माण्डव्य ऋषि को, माण्डव्य से सैतव को, सैतव से यास्क को, यास्क से पिङ्गल को तथा पिङ्गल से समस्त जगत् को यह शास्त्र मिला।"[1] परन्तु आजकल छन्दःशास्त्र पर जितने ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ पिङ्गलकृत 'पिङ्गलसूत्र' ही है। अन्य उपलब्ध ग्रन्थ पिङ्गलसूत्र के आधार पर ही निर्मित हैं तथा उनके रचयिताओं ने पिङ्गल को ही छन्दःशास्त्र का प्रवर्तक माना है। पिङ्गल के अतिरिक्त वृत्तरत्नाकर के रचयिता

---

1. यादवप्रकाश

केदारभट्ट, श्रुतबोध के रचयिता कालिदास, छन्दोमञ्जरी के रचयिता गङ्गादास तथा सुवृत्ततिलक के रचयिता क्षेमेन्द्र भी छन्दःशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य हैं ।

निरूक्तकार यास्क ने छन्दस् का निर्वचन "छद्" धातु से किया है ।[1] "छन्दासि छादनात्" अर्थात् छन्द भावों को आच्छादित करके सन्निहित रूप प्रदान करते हैं । "वृत्तरत्नाकरम्" के अनुसार - "वेद निःश्रेयस का मूल है और छन्दः शास्त्र उसके अङ्गों में चरण (छन्दः पादौ तु वेदस्य) स्थानीय है । छन्दशास्त्र के बिना वेद पङ्गु है । जिस प्रकार पैरों से रहित मनुष्य चल नहीं सकता, उसी प्रकार छन्दों के ज्ञान के बिना वेद भी नहीं चल सकता उसके उच्चारण की गति तथा लय ठीक से नहीं चल सकते हैं ।"[2]

डॉ० दीक्षित के शब्दों में -"छन्द तो कानों को प्यारा लगने वाला एक संगीत है, एक साज है, एक सुरीली और साधी हुई आवाज है । अगर वह स्वयं में सही हो तो किसी भी प्रतिपाद्य अर्थ की अभिव्यञ्जना में कोई रूकावट आ ही नहीं सकती ।"[3]

---

1. निरूक्त - 7/19.

2. वृत्तरत्नाकरम् की भूमिका पृष्ठ संख्या - 3.

3. तिलकमञ्जरी - एक समीक्षात्मक अध्ययन -

-पृष्ठ संख्या - 272.

सुमित्रानन्दन पन्त जी के शब्दों में -"जिस प्रकार संगीत में सात स्वर तथा उनकी श्रुति में मूर्च्छनाएं केवल राग की अभिव्यक्ति के लिए होती है उसी प्रकार कविता में भी विशेष अलङ्कारों, लक्षणा, व्यंजना आदि विशेष शब्द शक्तियों तथा विशेष छन्दों के सम्मिश्रण और सामंजस्य से [illegible] भाव की अभिव्यक्ति करने में सहायता मिलती है।"[1]

क्षेमेन्द्र कृत सुवृत्ततिलक के व्याख्याकार के अनुसार -"रचना की सफलता के लिए छन्दों के नियम का पालन ही केवल पर्याप्त नहीं होता अपितु सुष्ठुता की अपेक्षा रहती है। कभी-कभी नियमानुसार योजना रहने पर भी विस्वरता आ टपकती है। स्पृहणीयता की दृष्टि से जिसका निराकरण अत्यावश्यक है होता है, क्योंकि श्रव्यता छन्दों का आवश्यक गुण है। उसके अभाव में कवि की हीनता तो प्रकट होती ही है। तथा काव्य भी अनुपादेय बन जाता है। सुन्दर से सुन्दर भाव इसके बिना प्राणहीन लगने लगता है। कवि और काव्य की सफलता के लिए छन्दों का ज्ञान अत्यावश्यक है।"[2]

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि छन्द पद्य काव्य

---

1. हिन्दी गीत गोविन्द की भूमिका -
   - पृष्ठ संख्या - 6.

2. सुवृत्ततिलक, की भूमिका - पृष्ठ संख्या - 16.

जगत् में कविता या श्लोकों को सीमाबद्ध का एक अत्यावश्यक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है पाणिनि ने लौकिक भाषा के लिये 'भाषा' शब्द का प्रयोग किया है किन्तु वैदिक भाषा के लिये 'छन्दस्' का प्रयोग किया है । वैदिक छन्दों में अक्षर-गणना का नियम रहता है, उनमें अक्षरों के गुरु लघु के क्रम का कोई विशेष नियम नहीं है । इसी कारण कात्यायन की सर्वानुक्रमणी में कहा गया है - 'यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः' । लौकिक छन्दों की उत्पत्ति वैदिक छन्दों से ही हुई है परन्तु लौकिक छन्दों में अक्षरों की गुरुता और लघुता निश्चित कर दी गई है । इसके अतिरिक्त लौकिक छन्दों में सदैव चार चरण [पाद] होते हैं जबकि वैदिक छन्दों में कहीं तीन चरण, कहीं चार चरण तथा कहीं पाँच चरण होते हैं । लौकिक छन्द मुख्यरूप से दो प्रकार के होते हैं - 1. वर्णवृत्त 2. जाति । जिन छन्दों के प्रत्येक पाद [चरण] में गणानुसार वर्णों की गणना की जाती है उन्हें 'वर्णवृत्त' कहते हैं । जिन छन्दों के प्रत्येक पाद में मात्रागणों के अनुसार मात्राओं की गणना की जाती है उन्हें 'मात्रिक' या 'जाति' कहा जाता है । वर्णवृत्तों को सामान्यतः 'वृत्त' भी कहते हैं, यथा - उपजाति, वंशस्थ आदि ।

संस्कृत साहित्य के काव्यकार छन्दों के भाव के अनुरूप प्रयोग करने में निरन्तर जागरूक रहे हैं । क्षेमेन्द्र के सुवृत्ततिलक, भोजदेव के सरस्वती कण्ठाभरण आदि ग्रन्थों में छन्द के प्रयोग आदि के विषय में अति सूक्ष्म विचार किया गया है ।

प्रस्तुत चम्पूकाव्य में उपलब्ध छन्दों का विवेचन

आलोच्य चम्पू में छन्दों की योजना कविता कामिनी को सरसता और संगीतमयता प्रदान करने वाली, कर्णप्रिय तथा चित्ताकर्षक है। श्री वेंकटाध्वरि ने सम्पूर्ण चम्पू काव्य का निर्माण जिन छन्दों के माध्यम से किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं- शार्दूलविक्रीडित, अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, उपजाति, शिखरिणी, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, स्त्रग्धरा, पृथ्वी, इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, शालिनी, आर्या, हरिणी, औपच्छन्दसिकं, भुजङ्गप्रयातं, पञ्चचामरं, मञ्जुभाषिणी, स्वागता, नर्दटकं, उपेन्द्रवज्रा, द्रुतविलम्बित, अश्वघाटी, इन्दुवदना, गीति छन्द, रथोद्धता। इन छन्दों का प्रयोग अस्मदालोच्य महाकाव्य के पाँच सौ सत्तानबें श्लोकों में हुआ है।

महाकवि का सर्वाधिक प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित रहा है। इस छन्द का प्रयोग कवि ने अपने ग्रन्थ में अन्य छन्दों की अपेक्षा प्रचुर मात्रा में किया है। तत्पश्चात् अनुष्टुप, वसन्ततिलका, तथा उपजाति आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। जिनमें से कतिपय छन्दों के लक्षण प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

शार्दूलविक्रीडितम्

"सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्"

- वृत्तरत्नाकर - 3/99.

जिस पद्य के प्रतिचरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और

एक गुरु हो, उसे 'शार्दूलविक्रीडित' कहते हैं । यति बारह और सात वर्णों पर होती है ।

अस्मद् चम्पूकाव्य में कवि ने सर्वाधिक श्लोकों में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है । अतः कवि का प्रिय छन्द होने के कारण समग्र चम्पूकाव्य में इस छन्द का प्रयोग कवि ने स्थान-स्थान पर किया है जो उनकी अद्भुत काव्य प्रतिभा का परिचायक है ।

"श्रीरङ्गनगरीवर्णनम्" में विश्वावसु शार्दूलविक्रीडित छन्द के माध्यम से दोषदृष्टा कृशानु के समक्ष श्रीरङ्गनगरी की प्रशंसा कर रहे हैं -

म स ज स त त गु
S S S I I S I S I I I S S S I S S I S
मातस्ते मधुसूदनप्रणयिनि । प्रातः सरोजच्छटा

मुष्टीमुष्टिविचक्षणे शुभगुणे दृष्टी नमस्कुर्महे ।

अष्टाभिः किल दृष्टिभिश्च तिसृभिर्जुष्टाः सहस्रेण वा-

देवा द्वादशभिश्च यद्विषयतामेवार्थयन्ते क्षणम् ॥ 430 ॥

"काशीवर्णनम्" में कवि ने इस छन्द के द्वारा काशी नगरी के निवासियों का भोजन-विषयक नियम का बड़े ही सुरुचि पूर्ण ढंग से व्यक्त किया है -

म स ज स त त गु
S S S I I S I S I I I S S S I S S I S
प्रातश्शीतजले निमज्ज्य विबुधानभ्यर्चयन्त्युच्चकै-

रार्यः पर्युषितं तु नाभ्यवहरत्यन्धः क्षुधान्धोऽप्यसौ ।

भागे गोमयलिप्त एव पचते भुङ्क्ते ततोऽन्यत्र य-

न्नीतं तद्विजहाति भुक्तिनियमो दृष्ट: क्व भूयानियान् ? ॥ 10 ।

"सूर्यवर्णनम्" में श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने अपनी छन्द - प्रतिभा का अद्वितीय परिचय दिया है । जो श्लाघनीय है -

म स ज स त त गु
ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ
त्वेनादौ निखिलं जगद्विरचितं त्वेनैव संरक्षितम्

भिन्दन् हन्त मुकुन्द एष विधृतानन्दो हि निन्दोचित: ॥

उत्पाद्य स्वयमुक्तमान् फलतरूनुल्लास्य चारूदकै-

रुन्मत्तोऽपि किमुच्छिनत्ति जगति च्छित्त्वापि किं नन्दति? ॥ 15

अपि च -

म स ज स त त गु
ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ
त्वानुज्ञामनवाप्य दर्पभरत: त्वाज्ञां विलङ्घेत य-

स्तस्यैवेह तनोति लौकिकनृपश्चण्डोऽपि दण्डं रुषा ॥

अन्तर्याम्यपथे प्रवर्त्य भविनो हन्त स्वयं नारके

यस्तान् पातयति क्रुधा स तु न किं? नारायणो निर्घृण: ॥ 16 ॥

"श्री रामानुजवर्णनम्" में कवि ने शार्दूलविक्रीडित छन्द से ही प्रारम्भ किया है -

म स ज स त त गु
ऽऽ ऽ।।ऽ ।ऽ ।।।ऽ ऽऽ।ऽऽ।ऽ
एषा भूतपुरी निरीक्षितचरी दोषापहन्त्री मया

श्रीमानत्र गुणाब्धिराविरभवद्रामानुजार्यो मुनिः ।

त्रय्यन्तामृतसिन्धुमन्थनभवद्वैयड्गवीनात्मकं

विज्ञानं यदुपज्ञमेव विदुषामद्यापि विद्योतते ॥ 223 ॥

उपजाति छन्द

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु स्मरन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥

– वृत्तरत्नाकर – 3/32.

जिस पद्य को कोई चरण इन्द्रवज्रा के लक्षण अर्थात् दो तगण, एक जगण तथा अन्त में दो गुरु द्वारा तथा कोई चरण उपेन्द्रवज्रा के लक्षण अर्थात् जगण, तगण, जगण एवं दो गुरु द्वारा बना हो, उसे उपजाति छन्द कहते हैं । यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि जाति के दो छन्दों के मेल को उपजाति कहा जाता है । भिन्न जातियों के छन्दों के मेल को उपजाति नहीं कहा जाता है –

विश्वगुणादर्श चम्पू में कवि ने उपजाति छन्द का भी प्रचुरता के साथ प्रयोग किया है । इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा मिश्रित श्लोक द्वारा ही कवि ने मूल कथानक का प्रारम्भ किया है –

विश्वावलोकस्पृहया कदाचिद्विमानमारुह्य समानवेषम् ।
S S I S S I I S I S S I S I S S I I S I S S S
त त ज गु गु ज त ज गु गु

कृशानु-विश्वावसुनामधेयं गन्धर्वयुग्मं गगने चचार ॥ 5 ॥

भूलोक वर्णनम् में कृशानु जहाँ पर कलियुग में उत्पन्न मनुष्यों को कणमात्र गुणों से भी रहित तथा असंख्य दोषों से युक्त बतलाता है वहाँ पर उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है -

कामं जना: केऽपि गुणाभिरामा: क्ष्मातले सन्तु युगान्तरेषु ॥
S S I S S I I S I S S I S I S S I I S I S S
त त ज गु गु ज त ज गु गु

कलौ युगेऽस्मिन् गुणलेशवन्ध्या: सर्वेऽपि सर्वेतरदोषभाज: ॥ 30 ॥

गड्गा की महिमा का वर्णन करते समय कवि उपजाति छन्द का आश्रय लेते हैं जो गड्गा के अतिशय महात्म्य की श्री वृद्धि कर रहा है -

भागीरथीं य: पटुधीस्मास्ते
S S I S S I I S I S S
त त ज गु गु

यथाक्रतुन्यायत एष धन्य: ।
I S I S S I I S I S S
ज त ज गु गु

देवत्वमेत्य त्रिदिवे सुधायां
S S I S S I I S I S S
त त ज गु गु

भागीरथीति व्यपदेशमेति ॥ 79 ॥

| || |

त त ज गु गु

वैयाकरणवर्णनम् में भी कवि ने व्याकरण ज्ञान के औचित्य पर प्रकाश डाला है जो श्लाघनीय है -

नृणामनभ्यस्तफणाभृदीशगिरां दुरापा बुधराजगोष्ठी ।

SSI SS IISISS ISISS IISISS

त त ज गु गु ज त ज गु गु

अबुद्धचापश्रुतिपद्धतीनां युद्धक्षमेवोद्धतयोद्धसार्थां ॥ 573 ॥

नाङ्गीकृतव्याकरणौषधानामपाटवं वाचि सुगाढमास्ते ।

S S I SSIISISS ISISS I ISISS

त त ज गु गु ज त ज गु गु

कस्मिंश्चिदुक्ते तु पदे कथञ्चित्स्वैरं वपुः स्विद्यति वेपते च ॥ 574 ॥

उपजाति छन्द के दर्शन "सेतुवर्णनम्" में भी होते हैं -

गजेन्द्रबुद्ध्या नलसेतुशैलान्ग्राहा ग्रसन्ते जलधौ वसन्तः ।

ISISS IISISS SS ISSIISISS

ज त ज गु गु त त ज गु गु

तदग्रासजायासमुत्थदंष्ट्राव्यथाः प्रधावन्ति यथागतं ते ॥ 483 ॥

मन्दाक्रान्ता

"मन्दाक्रान्ता जलधि षडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरुश्चेत् ।" वृत्तरत्नाकर 3/95.

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, नगण, दो तगण और दो गुरु हों उसे 'मन्दाक्रान्ता' छन्द कहते हैं। यति चार, छः और सात वर्णों पर होती है।

मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग कवि ने उपजाति छन्द की अपेक्षा कम किया है तथापि, इसकी कमी खटकती नहीं है। जिस स्थल पर इस दुरूह और लम्बे छन्द का प्रयोग किया है वहाँ का वर्णन स्वभाविक ही रहा है। भूलोक वर्णनम् में मन्दाक्रान्ता छन्द अभिलक्षित होता है -

बालत्वे वा तरुणिमनि वा प्रायशो वार्द्धके वा
S S S S || || | S S | S S | S S
म भ न त त गु गु

मृत्वा मर्त्या बत यमभटैर्बद्ध्यमाना व्यथन्ते ॥

श्रेयस्तेषाममितविपदां जीवतां वा किमास्ते ?

कस्मिन् ग्रामे पुनरनडुहां कर्षणक्लेशहानिः ॥ 27 ॥

विषमालङ्कार से अलङ्कृत मन्दाक्रान्ता छन्द में उपनिबद्ध यह श्लोक प्रशंसनीय है -

कृत्वा सेतुं किल जलनिधौ खण्डयित्वा दुरध्वां -
S S S S || || | S S | S S | S S
म भ न त त गु गु

लब्ध्वा देवीं स्फुटविदितसंशुद्धिमग्निप्रवेशात् ।

भूयोऽप्येनां भुवनजननीं भूमिकन्यामनन्या -

मन्तर्वत्नीमनयत वनं हन्त पौलस्त्यहन्ता ॥ 45 ॥

"गुर्जरदेशवर्णनम्" में कवि ने इस छन्द के माध्यम से वहाँ के लोगों के आचार, विचार तथा दाम्पत्य जीवन पर प्रकाश डाला है -

व्रीडामारव्यतिकरवती विद्युदाभा: कृशाङ्गी:
S S S S । ।।।। S S । S S । S S
म भ न त त गु गु

क्रीडायोग्येऽप्यहह समये गेह एव त्यजन्त: ।

नित्यासक्ता निरुपममणि-श्रेणिवाणिज्यलाभे

बंभ्रम्यन्ते बहुदिनपरिप्राप्यदेशान्तरेषु ॥ 117 ॥

देशे देशे किमपि कुतुकादद्भुतं लोकमाना:
S S S S ।। । ।। S S । S S । S S
म भ न त त गु गु

संपाद्यैवं द्रविणमतुलं सद्म भूयोऽप्यवाप्य ।

संयुज्यन्ते सुचिरविरहोत्कण्ठिताभि: सतीभि:

सौख्यं धन्या: किमपि दधते सर्वसंपत्समृद्धा: ॥ 118 ॥

आकिंचन्यादतिपरिचयाज्जाययोपेक्ष्यमाणो
S S S S । ।। ।। S S । S S । S S
म भ न त त गु गु

भूपालानामननुसरणाद्विभ्यदेवाखिलेभ्य: ।

गेहे तिष्ठन् कुमतिरलसः कूपकूर्मैः सधर्मा

किं जानीते भुवनचरितं किं सुखं चोपभुङ्क्ते ? ॥ 119 ॥

"तुण्डीरमण्डलवर्णनम्" में भी मन्दाक्रान्ता छन्द स्पष्ट प्रतिबिम्बित होता है -

सर्वैर्वेदैः स्मृतिगुणयुतैः सेतिहासैः पुराणैः
SSSS।। ।।।।S S।SS ।SS
म भ न त त गु गु

शिष्टाचारैरपि नियमितानध्वरान्मध्वरातेः ।

आज्ञासिद्धानहह जहतस्तद्विरुद्धानि कृत्या -

न्यातन्वन्तः कतिचिदपरानप्यमी शिक्षयन्ति ॥ 369 ॥

अपि च -

प्रातः प्रातः पयसि विमले पावने सह्यपुत्र्याः
SS SS ।।। ।S S।SS।SS
म भ न त त गु गु

स्नायं स्नायं सकलविषयत्यागिनो योगिनोऽमी ।

वारं वारं भुजगशयनं लोचनाभ्यां पिबन्तः

क्षेमं क्षेमं क्षणमदखिलं कालमत्र क्षिपन्ति ॥ 398 ॥

<u>वंशस्थ छन्द</u>

"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" ॥ - वृत्तरत्नाकर - 3/47.

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रम से जगण, तगण, जगण और रगण होता है वह वंशस्थ छन्द कहलाता है । इसके पादान्त में यति होती है । "पिङ्गल सूत्र में इसका 'वंशस्थ' नाम है और सूत्र है - वंशस्थ ज्तौ ज्रौ" इति ।

हमारे आलोच्य काव्य को रचयिता श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने इस छन्द का बहुत अल्प प्रयोग अपने इस ग्रन्थ में किया है । न्यून प्रयोग होने के बाद भी उन्होंने अपनी असाधारण प्रतिभा और पांडित्य का प्रदर्शन इन श्लोकों में इस छन्द के माध्यम से प्रदर्शित किया है ।

'काञ्चीवर्णनम्' में कवि ने हस्तिशैल की शोभा को वर्णित करने के लिए वंशस्थ छन्द का आश्रय लिया है जिसे उनकी श्लेष रीति ने द्विगुणित कर दिया है । तत्सम्बन्धित श्लोक इस स्थल पर उद्धृत है -

य एष राजत्कटक: सदालिभि: समाश्रित: शोभनदानसंपदा ।
। S । S S । । S । S । S । S । S S । । S । S । S
ज त ज र ज त ज र

स नित्यशुद्धं वरदं - तमुद्वहन्यथार्थनामा गजभूभृदीक्ष्यते ॥ 268 ॥

'वीक्षारण्यवर्णनम्' का अन्तिम श्लोक वंशस्थ छन्द का अनुपम उदाहरण है-

उपेत्य वीक्षावनमुन्नत: सदा सुवर्णवल्लया सुमन: पुषाश्रित: ।
। S । S S । । S । S । S । S । S S । । S । S । S
ज त ज र ज त ज र

अहीनसेव्यो हरिस्न्दनस्तनोत्युपाश्रितानामुचितां सुवासनाम् ॥ 222 ॥

इस सन्दर्भ में "वीक्षारण्यवर्णनम्" का एक और श्लोक उल्लेखनीय है-

द्विरेफवर्णां सुमनोरमां तनुं बिभर्ति संज्ञामिव वीरराघवः ।
ISI SS IISIS IS ISI SS IIS ISIS
ज त ज र ज त ज र

सुपर्वराजेन यदीयमर्चितं सुखं पदद्वन्द्वमिवोपशोभते ॥ 220 ॥

"काञ्चीवर्णनम्" में श्रीरङ्गनायक देव की निन्दा कृशानु ने वंशस्थ छन्द के माध्यम से विश्वावसु गन्धर्वकुमार के समक्ष की है -

अधः करोत्यादिमशाब्दिकोरगं कलानिधिं धिक्कुरुते मुखेन यः ।
IS IS S IIS ISISIS IS S IISISIS
ज त ज र ज त ज र

कृतान्तरायस्य सरस्वतीजवे स्तवे रुचिस्तस्य कथं भवेत्कवेः ॥ 282 ॥

"सेतुवर्णनम्" में भी वंशस्थ छन्द का प्रयोग कवि ने निपुणता के साथ प्रयोग किया है -

पयोधिमध्ये प्लवमानमूर्तयस्तरङ्गवेगार्पितफेनचिह्निताः ।
IS ISSI ISISISISISSIISISIS
ज त ज र ज त ज र

हसन्ति किं मन्दरमन्तरर्णवं निमग्नमेते नलसेतुभूधराः ॥ 476 ॥

कुटीषु गोपीरुचिरासु योऽर्कभूतटीषु गोपाल इति श्रुतोऽचरत् ।
ISISS IISIS ISISISSIISISIS
ज त ज र ज त ज र

अकम्पकास्यमुपेत्य मोदते स चम्पकारण्यमगण्यवैभवः ॥ 46 ॥

'कुरुकानगरीश्रीशठकोपमुनिवर्णनम्' में भी कवि ने वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया है -

दिशञ्श्रितानाममृतात्मकं फलं
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ
ज त ज र

विलक्षणो भाति स तिन्तिडीतरुः ।

सहस्रशाखं द्रविडागमं सृजन् -

स यस्य मूलं समुपाश्रितो मुनिः ॥ 49 ॥

'बदरिकाश्रमवर्णनम्' में कवि ने इस छन्द का समुचित प्रयोग किया है जिससे वर्णन और भी स्वाभाविक हो गया है -

यदत्र जागर्ति शिलासमं हिमं सुशीतला गन्धवहाश्च दुःसहाः ॥
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ
ज त ज र ज त ज र

जलावगाहाच्चकितो जनस्ततः कुतस्त्वनुष्ठास्यति कर्म निर्मलम् ॥ 34 ॥

<u>पृथ्वी</u>

"जसौ जसयला वसु ग्रह यतिश्च पृथ्वी गुरुः" ।

- वृत्तरत्नाकर - 3/9.

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, सगण फिर जगण, सगण, यगण, एक लघु और अन्त में एक गुरु हो उसे 'पृथ्वी' छन्द कहते हैं। यति आठ और नौ वर्णों पर होती है।

कवि ने पृथ्वी छन्द का प्रयोग विभिन्न वर्णनों में भिन्न-भिन्न रीति, रस अलङ्कारों के माध्यम से किया है।

चोलाङ्गनाओं का यौवन-सौन्दर्य निर्दोष मुनि के कठिन धैर्य को भी छुड़ा देता है। उक्त तथ्य पृथ्वी छन्द के माध्यम से इस श्लोक में कितनी कुशलता के साथ प्रदर्शित किया गया है जो अवर्णनीय है -

नवार्तवमहोत्सवे ननु सहस्त्रशः संगता
।S।।।S।S।।।S।SS।S
ज स ज स य ल गु

गृहाद्बहिरशङ्कितं गदितकामगाथाशताः।

अहार्यकठिनस्तनप्रकटनादनागस्विनो -

मुनेरपि घनां धृतिं चुलुकयन्ति चोलाङ्गनाः ॥ 456 ॥

कुरुकापुरी का भव्य वर्णन कवि ने पृथ्वी छन्द के द्वारा इस श्लोक में प्रस्तुत किया है जो अद्वितीय है -

चकास्ति कुरुकापुरी शुचिनि ताम्रपर्णीतटे -
।S।।।S।S।।।S।SS।S
ज स ज स य लगु

विरक्तिपरिपक्त्रमत्रियुगभक्तिभिर्वैष्णवैः ।

दृढव्रतशठारिसुरोबकुलसंपतद्बम्भर -

ध्वनिद्विगुणजृम्भणद्रविडवेदघोषोज्ज्वला ॥ 488 ॥

"काञ्चीवर्णनम्" में भी पृथ्वी छन्द की छटा दर्शनीय है -

द्विपाचलमुपाश्रितं त्रिदशपादपस्वर्गवी-
। ऽ । । । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ
ज स ज स य ल गु

त्रपाकरमुपास्महे दिगधिपावनं पावनम् ।

कृपाशिशिरलोचनं कृतभवव्यथामोचनं

वपासुरभिलाधरं वरदनाम धाम स्थिरम् ॥ 269 ॥

कवि दोषद्रष्टा कृशानु कवियों पर कितना सटीक और तीक्ष्ण प्रहार इस श्लोक में कर रहा है जो कि पृथ्वी छन्द में निबद्ध है -

स्तुवद्भवनिवर्तके सति हरौ कविः सूक्तिभिः
। ऽ । । ।ऽ।ऽ । । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ
ज स ज स य ल गु

करोति वरवर्णिनीचरितवर्णनं गर्हितम् ।

अनीतिरवनीपतिर्गृहशुनीतनुं मौक्तिकै -

विभूषयति देवतामुकुटभागयोग्यैर्यथा ॥ 543 ॥

'दिव्यक्षेत्रादिवर्णनम्' में भी कवि ने पृथ्वी छन्द का सुप्रयोग किया है -

कटाक्षलहरीमुहुः कवलितामृतस्तोमया
I S I I I S I S I I I S I S S I S
ज स ज स य ल गु

विलोचनयुगश्रिया विवृतसर्वदानव्रतम् ।

शुकादिभिरुपासितं शुभचरित्रभाजो जनाः

समर्हितभयवारणं शरणयन्ति नारायणम् ॥ 585 ॥

अपि च -

कपर्दिमतकर्दमं कपिलकल्पनानाटकैः
I S I I I S I S I I I S I S S I S
ज स ज स य ल गु

कुमारिलकुभाषितैर्गुरुनिबन्धनग्रन्थिभिः ।

तथागतकथाशतैस्तदनुसारिजल्पैरपि

प्रतारितमिदं जगत्प्रगुणितं यतीन्द्रोक्तिभिः ॥ 588 ॥

मञ्जुभाषिणी

"सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी" ॥

- वृत्तरत्नाकर - 3/73.

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रम से सगण, जगण, सगण और जगण तथा एक गुरु हो, उसे 'मञ्जुभाषिणी' छन्द कहते हैं ।

इसके पाँच और आठ वर्णों पर यति होती है। किसी का मत है कि यति पादान्त में होती है पर यह ठीक नहीं है - क्योंकि पाँचवे वर्ण पर यति स्पष्ट प्रतीत होती है। इस छन्द की रचना में अत्यन्त माधुर्य रहता है। अतः इसको मञ्जुभाषिणी कहा है।

गद्य-पद्य मिश्रित रचना होने के कारण चम्पूकाव्य श्रुति मधुर और आकर्षक होता ही है किन्तु कवि ने मञ्जुभाषिणी छन्दों का प्रयोग करके इसकी माधुर्यता और चित्ताकर्षकता को और भी द्विगुणित कर दिया है। यद्यपि उन्होंने कुल तीन श्लोकों में ही इस छन्द को वर्णित किया है तथापि अपनी वर्णन निपुणता के कारण इस अभाव को तनिक भी खटकने नहीं दिया है।

"आन्ध्रदेशवर्णनम्" से मञ्जुभाषिणी छन्द का उदाहरण प्रस्तुत है -

अवनावतीतपवनाश्चशोभिनो भवनागशायिभवनावमर्दिनः ।
I I S I S I I I S I S I S I I S I S I I I S I S I
स ज स ज गु स ज स ज गु
सवनादिधर्मलवनाय दीक्षिता यवनाश्चरन्ति भुवनातिभीषणाः ॥ 162 ॥

"वेङ्कटगिरिवर्णनम्" में कवि ने इस छन्द के माध्यम से वेङ्कटगिरि की महिमा का वर्णन किया है -

दधती चिराय सुदतीमुरःस्थले तदतीतसीम ददती सुखं सताम् ।
I I S I S I I I S I S I S I I S I S I I I S I S I S
स ज स ज गु स ज स ज गु

रसिकस्य चित्तमिह कस्य देवता प्रतिपन्नपन्नगनगा न गाहते ॥ 195 ॥

"वीक्षारण्यवर्णनम्" में कवि ने इस छन्द का प्रयोग तृतीय बार किया है -

घटिकाचलं वपुरवेक्ष्य तत्त्वतो घटिकाचलं समधिरुह्य भक्तितः ।
। । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ ।
स ज स ज गु स ज स ज गु

नरकेसरीन्द्रचरणौ विलोकयन् नरके सरिष्यति न जातु मानवः ॥ 218 ॥

<u>स्रग्धरा</u>

"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता, स्रग्धरा कीर्तितेयम्" ॥

- वृत्तरत्नाकर - 3/103.

जिस श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण तथा तीन यगण हों और यति सात वर्णों पर हो, तो उसे स्रग्धरा छन्द कहते हैं ।

कवि श्री वेङ्कटाध्वरि ने स्रग्धरा छन्द का भी विभिन्न वर्णनों में समुचित प्रयोग किया है । उन्होंने "विश्वगुणादर्शचम्पू" का प्रारम्भ इसी छन्द के माध्यम से किया है-

श्रीराजीवाक्षवक्षःस्थलनिलयरमाहस्तवास्तव्यलोल -
ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । । । । । । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
म र भ न य य य

ल्लीलाब्जान्निष्पतन्ती मधुरमधुझरी नाभिपद्मे मुरारेः ॥

अस्तोकं लोकमात्रा द्वियुगमुखशिशोराननेष्वर्प्यमाणं

शङ्खप्रान्तेन दिव्यं पय इति विबुधैः शङ्क्यमाना पुनातु ॥ । ॥

"सूर्यवर्णनम्" में कवि ने स्रग्धरा छन्द का प्रयोग किया है । उत्प्रेक्षा-लङ्कार मंडित इस श्लोक में कवि ने स्रग्धरा छन्द के माध्यम से अत्यन्त खूबसूरती के साथ सूर्य की महिमा को वर्णित किया है जो विलोकनीय है -

आशापालेषु पाशायुध-यम बलभिन्मारुतेशादिकेषु
ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ।। ।। ।। ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
म र भ न य य य

प्रायो भूयस्सु जाग्रत्स्वपि च शुचितया भासुरा भूसुराद्याः ॥

यस्मै कालत्रयेऽपि प्रतिदिवसममी कुर्वते र्ध्यप्रदानं

सैषा त्रय्येव विद्या तपति रविमयी सर्वलोकान्पुनाना ॥ ।। ॥

"भूलोकवर्णनम्" में स्रग्धरा छन्द का प्रयोग उस स्थल पर दृष्टिगत होता है जहाँ पर विश्वावसु कृशानु द्वारा मनुष्य जन्म को योष देने पर स्रग्धरा छन्द के माध्यम से कहता है कि कौन से देव या दानव अपने पराक्रम से मनुष्यों के बिना उन्नतशील हुए हैं ।

रामः क्षेमस्य दाता भुवि ननु मनुजो रावणस्य प्रहर्ता
ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ।। ।। ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
म र भ न य य य

तत्तातः किं न मर्त्यस्त्रिदशकुलपतेर्दैत्ययुद्धे सहायः ॥

कृष्णो वृष्णो मर्दं यो हरत नरतया न श्रुतः किं ? त्वयासौ

के वा देवाः प्रभावात् स्वयमतिशयिता ? मानवाछानवा वा ॥ 28

रामानुज सम्प्रदाय के मतानुयायियों की प्रशंसामेकवि ने इस छन्द का प्रयोग किया है -

जारांश्चोरान् किरातास्जनपददमनान् राजपाशान्महीशा ,
S S S S ।SS ।।।।।। S S ।SS ।SS
म , र भ न य य य

शिष्यान्कृत्वातिदृप्ताः श्रुतिपथविधुराः श्रोत्रियैर्ब्रह्मनिष्ठैः ।

साकं नो भुञ्जतेऽमी सकृदपि विनतिं कुर्वतेऽग्रे न तेषां

संकेतेनैव सिद्धं तदिदमविदुषां श्लाघ्यमाचार्यपुंस्त्वम् ॥ 250 ॥

गरुड़ पक्षिराज का वर्णन करते हुए कवि ने स्रग्धरा छन्द का प्रयोग किया है जिसके माध्यम् से कवि ने पक्षिराज गरुण के भव्य स्वरूप तथा महिमा को वर्णित किया है । तत्सम्बन्धित छन्दद्वय प्रस्तुत हैं -

स्वज्येष्ठप्रेर्यहर्यश्रितरथघृणिमन्मण्डलस्थाच्युताप्यं
S SSS।SS ।।।।। ।SS ।SS ।SS
म र भ न य य य

सन्मार्गं पक्षपातोद्गतधरणिरजश्छन्नमेतज्जवेन ।

कल्लोलैरुल्लसद्भिः प्रचलजलनिधेः क्षालयन्घूर्णदर्पः

प्रेङ्खड्डिण्डीरखण्डच्छलकुसुमकुलैर्मण्डयत्यण्डजेन्द्रः ॥ 434 ॥

यद्दीक्षा धैर्यरक्षां किल पुलकभृतां धावतां दैवतानां
S S S S I S S I I I I I I S S I S S I S S
म र भ न य य य

सेवासंमर्दकाले गिरिशफणिगणाद्विभ्यतामभ्यतानीत् ।

सो यं गाङ्गेयपृथ्वीधरवरशिखरच्छायदायादकाय-

श्छिन्दन्वृन्दं रिपूणां कलयतु कुशलं छान्दसो नः शकुन्तः ॥ 435 ॥

पञ्चचामरम्

"जरौ जरौ जगाविदं वदन्ति पञ्चचामरं" ॥

- वृत्तरत्नाकर - 3/90.

जिस श्लोक या पद्य के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, रगण, जगण, रगण, जगण और एक गुरु हो उसे 'पञ्चचामर' छन्द कहते हैं । प्रमाणिका के दुगने से पञ्चचामर बनता है । इसके पादान्त में यति होती है । कुछ लोगों का मत है कि दो-दो पर यति होती है ।

कवि शिरोमणि वेङ्कटाध्वरि जी ने इस छन्द का प्रयोग कुल पाँच श्लोकों में किया है जो न के बराबर है । तथापि उन्होंने प्रस्तुत छन्द का प्रसङ्गानुकूल अद्वितीय वर्णन किया है ।

'श्रीमुष्णक्षेत्रयज्ञवराहवर्णनम्' में कवि का प्रारम्भ इसी छन्द के माध्यम से

हुआ है । जिसके माध्यम से कवि ने वराहरूपिणी अधिदेवता को नमन किया है -

वरा वराहरूपिणी चराचरान्तरस्थिता-
। ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ
ज र ज र ज गु

सुरासुरानुसेविता धराधरादिदेवता ।

सदा सदावलिस्तुता मुदामुदारशेवधि-

हिता हि ताक्ष्र्यकेतना न तापतां नयेत् ॥ 383 ॥

अन्यत् च -

सदावदातनिम्नगातटीकुटीरवासिनी
। ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ
ज र ज र ज गु

कटिस्फुटीभवतकरा किटीश्वरी पटीयसी ।

रसारसादिहोदिता रसालसालसंवृते

वने वनेषु दीक्षिता मदीक्षिताधिदेवता ॥ 384 ॥

अम्बिका और त्र्यम्बक का दाम्पत्य अयोग्य है ऐसा प्रसिद्ध है यह बात कृशानु विश्वावसु को प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से बता रहा है -

इयं हि सर्वमङ्गला स तु श्मशानमन्दिरो
। ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ
ज र ज र ज गु.

विभाति हैमवत्यसौ स याति दिक्षु भिक्षुकः ।

इयं तु कुङ्कुमाङ्किता स भस्मराशिरूषित-

स्त्वरालकुन्तला च सा जटाभिरेषु भीषणः ॥ 315 ॥

'वनवर्णनम्' में कवि ने दो श्लोकों में पञ्चचामर वृत्त का सुन्दर प्रयोग किया है । इन श्लोकों में भयानक रस की उत्पत्ति करने में यह वृत्त विशेष सहायक हो रहा है । गौडी रीति में उपनिबद्ध यह श्लोक द्रष्टव्य है -

प्रचण्डविश्वकण्टकप्रखण्डनैकपण्डितः
। S । S । S । S । S । S । S । S
ज र ज र ज गु
पतङ्गमण्डले वसन् य एष पाण्डवप्रियः ।

अकुण्ठरीतिकः प्रसन्नपुण्डरीकलोचनः

स कुण्डलीन्द्रभूधरप्रकाण्डमण्डनायते ॥ 203 ॥

आगे-आगे सघन जंगल, हरएक जंगल में बड़े-बड़े पहाड़, प्रत्येक पहाड़ो में गुफायें, हरेक गुहागृहों में क्रीडा में आसक्त सिंह, प्रत्येक सिंहों में स्वच्छन्द हाथियों का भयोत्पादक गर्जना सुशोभित हो रहा है । कितना अनुपम वर्णन है जिसको पढ़ने मात्र से ही भय का संचार सहृदय पाठकगणों के हृदय में हो रहा है । देखिये इस श्लोक में -

पुरः पुरो घनं वनं वने वने महागिरि-
। S । S । S । S । S । S । S । S
ज र ज र ज ग

महागिरौ महागिरौ विराजते गुहागृहम् ।
गुहागृहे गुहागृहे विहारतत्परो हरि -
हरौ हरौ निरङ्कुशः कृतेभमाध्वसो ध्वनिः ॥ 207 ॥

<u>वसन्ततिलका</u>

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" ॥

- वृत्तरत्नाकर - 3/78.

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में तगण, भगण, दो जगण, दो गुरु हों उसे 'वसन्ततिलका' छन्द कहते हैं । इसके पादान्त में यति होती है ।

कवि ने वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में अपने चम्पू काव्य में किया है जो विभिन्न वर्णनों में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है ।

सर्वप्रथम वसन्ततिलका का उदाहरण हम कावेरीवर्णनम् से दे रहे हैं । उपमालङ्कार मण्डित यह श्लोक वसन्ततिलका वृत्त में उपनिबद्ध है । देखिये कावेरी नदी के किनारे पर स्थित श्वेत पुष्पों से युक्त ये वृक्ष दूर से सिर पर सफेद वस्त्र बाँधे हुए पथिक के सदृश दिखायी पड़ रहे हैं कितनी मनोहर उपमा है उस पर से छन्द वसन्ततिलका -

उद्गच्छदच्छतमगुच्छलसच्छिरस्का-
SS I SIIIS IIS IS S
त भ ज ज गु गु

स्तीरद्वयेऽपि तरवः प्रतिभान्त्यमुष्याः ।

एनां तरीतुमिह यत्नजुषः स्वशीर्ष-

बद्धावदातवसनाः पथिका इवामी ॥ 395 ॥

मृगशावकनयनी रमणियों के नूतन-विहार योग्य नारङ्गादि वृक्षों से समृद्ध गृहारामयुक्त, नीति-सागर के पारङ्गत विद्वानों द्वारा सेवित श्री रङ्ग-नगरी की छटा अवलोकनीय है। वसन्ततिलका छन्द मे रचित यह श्लोक प्रशंसनीय है-

नारङ्गडिम्भनयनानवकेलियोग्यनारङ्गमुख्यतरुमुष्कलनिष्कुटेयम् ।
I III II I I III II I
त भ ज ज गु गु त भ ज ज गु गु

श्रीरङ्गदिव्यनगरी प्रथते नयाब्धिपारंगतैर्बुधजनैः परिसेव्यमाना ॥ 396 ॥

पम्पासर और गृध्रसरोवर के प्रसङ्ग में कवि ने वसन्ततिलका छन्द का अवलम्बन लिया है। जो प्रस्तुत श्लोकों में वर्णित है-

पम्पातरङ्गशिशिरानिलडिम्भजात-
SS I SI I IS IIS IS S
त भ ज ज गु गु

कम्पाम्रनिष्पतितपुष्परसाभिषिक्तः ।

सम्पादयत्यतुलसम्पदमर्थिनोऽनु-

कम्पासुधाम्बुधिरयं पतिरम्बिकायाः ॥ 335 ॥

सम्पातिसोदरसरस्तटसंप्ररूढो-

S S । S । । । S । । S । S S
त भ ज ज गु गु

भात्यद्भुतो विजयराघवपारिजातः ।

शाखाततेस्मरि सद्भिरस्दीक्ष्यते यो

यस्याध एव सकलः सुमनःप्रपञ्चः ॥ 346 ॥

अन्यत् य -

तत्तादृगुत्तमपदे तमसः परस्तादस्तामयैरतुलसूरिभिरर्चितोऽपि ।

S S । S । । । S । । S । S S S S । S । । । S । । S । S S
त भ ज ज गु गु त भ ज ज गु गु

अत्रातिरस्ति हरिरेष चिरं नराणां दृष्टिं कृतार्थयितुमेव दृढानुकम्पः ॥
॥ 350 ॥

चञ्जीपुर के योद्धाओं के पराक्रम को वसन्ततिलका छन्द के द्वारा कवि ने बड़े ही चमत्कृत ढंग से इस श्लोक में व्यक्त किया है । जो कि एक अनूठा उदाहरण है-

रक्ते भटे रणमुखे रुधिरेण तस्मिन् रक्ता भवत्यमरयोषिदनुव्रतेव ।

S S । S । । । S । । S । S S S S । S । । । S । । S । S S
त भ ज ज गु गु त भ ज ज गु गु

सूरः स चेदतनुसायकखण्डिताङ्गः साऽप्युच्चकैरतनुसायकखण्डितेव ॥ 379 ॥

<u>शिखरिणी</u>

"रसैरुद्रैश्छिन्नायमनसभलागः शिखरिणी" ॥

- वृत्तरत्नाकर - 3/91.

जिस पद्य के हरेक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरु हो उसे शिखरिणी छन्द कहते हैं । इसके छः और ग्यारह वर्णों पर यति होती है ।

"गङ्गानदीवर्णनम्" में गङ्गा की अप्रतिम छटा शिखरिणी छन्द में आरब्ध मन-मयूर को आह्लादित करने में समर्थ है । कितना सुन्दर वर्णन है -

सरस्वत्याऽऽश्लिष्टा सवितृतनयालिङ्गितझरा
I S S S S S I I I I I S S I I I S
य म न स भ ल गु

स्फुरद्दुच्छस्वच्छा प्रकृतिरिव भाति त्रिगुणभाक् ।

तथाप्येषा दोषापनयनपटुः स्वाकलनया

प्रगल्भं संसारं प्रशमयति कंसारिपदभूः ॥ 80 ॥

विभावनालङ्कार से अभिप्रेत "सूर्यवर्णनम्" का यह श्लोक शिखरिणी छन्द का उत्कृष्टतम् रचना है-

अवेमव्यापाराकलनमतुरीस्पर्शमचिरा-
। S S S S S । । । । । S S । । । S
य म न स भ ल गु

दनुन्मीलत्तन्तुप्रकरघटनायासमसकृत् ॥

विषीदत्पाञ्चाली विपदपनयैकप्रणयिन:

पटानां निर्माणं पतगपतिकेतोरवतु न: ॥ 20 ॥

काञ्ची नगरी में क्रीडा करती हुयी ललनाओं के मुख को देख-देखकर, स्वच्छ स्वस्म चन्द्र, दर्पण कमल की कौन रसिक पुरुष निन्दा नहीं करता है? प्रस्तुत श्लोक में इस बात को शिखरिणी छन्द के द्वारा कवि वेङ्कटाध्वरि विद्वतापूर्ण ढंग से प्रस्तुत कर रहे हैं-

इयं काञ्ची काञ्ची करिशिखरिण: कापि नगरी-
। S S S S S । । । । । । । ।
य म न स भ ल गु

गरीयस्यां यस्यां विहरणजुषां पङ्कमलदृशाम् ।

मुखं दर्शं दर्शं रजनिकरमादर्शममल-

स्वरूपं के पङ्केरुहमपि न निन्दन्ति रसिका: ॥ 265 ॥

"विश्वगुणादर्शचम्पू" काव्य के रामानुजवर्णनम्" में भी शिखरिणी छन्द का यत्र-तत्र प्रयोग कितना मार्मिक मिलता है । उससे कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं-

उपादेयं प्राज्ञैरुचितविषयं द्राविडवचो-
। S S S S S । । । । । S S । । । S
य म न स भ ल गु

ऽप्ययुक्तार्थं हेयं भवति वचनं संस्कृतमपि ।

हरिं बिभ्रच्चेतस्यनतिसुभगोऽपि स्तुतिपदं

न सद्रूपोऽप्यन्तः करणधृतनारीस्तनभरः ॥ 244 ॥

स यासां व्याकर्ता चुलुकितसमुद्रो मुनिवरः
। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । । । ऽ
य म न स भ ल गु

प्रबन्धारः प्रौढाः शठमथनमुख्याः शमधनाः ।

प्रवक्तारः शुद्धाः प्रथितयशसः पूर्वगुरवो

गिराम्पारे तासां जयति गरिमा द्राविडगिराम् ॥ 245 ॥

रहस्यव्याख्यानै रघुवरचरित्रानुकथनै-
। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । । । ऽ
य म न स भ ल गु

स्त्रयीसध्रीचीनां बकुलधरवाचां प्रवचनैः ।

अमी भाष्याख्यानैर्हरिचरणकैङ्कर्यविधिभिः

प्रणामैश्चार्याणां क्षणमिव नयन्त्यत्र दिवसान् ॥ 247 ॥

मालिनी

ननमय - युतेयं मालिनी - भोगि लोकैः ॥

- वृत्तरत्नाकर - 3/83.

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रमशः दो नगण, एक मगण, और दो यगण

होते हैं, उसे ही "मालिनी" छन्द कहते हैं। सात और आठ वर्णों पर यति होती है।

छन्द बहुलता को दृष्टि में रखते हुए रघुनाथ दीक्षित के पुत्र रत्न ने मालिनी छन्द का प्रयोग भी यदा कदा किया है। किन्तु छन्द का अप्रासङ्गिक वर्णन नहीं किया गया है। छन्द का प्रयोग सभी दृष्टि से समीचीन है। इस प्रसंग में मेरे एक श्लोक "गङ्गानदीवर्णनम्" से अवतरित है-

शिथिलितभवखेदा श्लिष्टवैकुण्ठपादा
।।।।।।SSS ।SS।SS
न न म य य

कृतविपदपनोदा क्लृप्तचित्तप्रसादा ॥
विमलतरतरङ्गा विश्रुताम्भोधिसङ्गा
विहतदुरितभङ्गा वीक्ष्यतामत्र गङ्गा ॥ 74 ॥

"बदरिकाश्रमवर्णनम्" में भी मालिनी छन्द दृष्टिगत होता है-

परमहिमयुतत्वात् प्राप्तवैकुण्ठसाम्यं
।।। ।।।SSSS ।SS।SS
न न म य य

पदमिदमुपयान्तः पण्डिताः शान्तिमन्तः ॥
मुहुरिह समयेषु स्नानहेतोः सरोगा-
स्तदपि भ्रामरोगास्ताक्ष्यकेतोः प्रसादात् ॥ 35 ॥

"कर्णाटदेशवर्णनम्" में यदुगिर पर्वत वर्णन में यह छन्द स्पष्ट परिलक्षित होता है-

दुरितमवनतानां दुर्निरोधं निरुन्धन्
। ।।।।। ऽ ऽ ऽ ।ऽ ऽ ।ऽ ऽ
न न म य य

सितमतिभिरतन्द्रैः सेव्यमानो मुनीन्द्रैः ।

यदुगिरिरयमिन्धे यत्र नारायणात्मा

विलसति किल हर्षं नीलमेघः प्रवर्षन् ॥ 170 ॥

अपि च -

सततमकृतसंध्योपास्तिरभ्यस्तशास्त्रः
।।।।।।ऽ ऽ ऽ ।ऽ ऽ ।ऽ ऽ
न न म य य

सवितरि गतवाल्ये काल्यसंध्यामुपास्ते ।

तदपि भुवि न मान्यं मन्यते धन्यमन्यं

त्यजति विहितहानात्साध्वसं माध्वसंघः ॥ 177 ॥

"श्रीरङ्गनगरीवर्णनम्" में भी मालिनी वृत्त स्पष्ट परिलक्षित होता है। श्लोकद्वय प्रस्तुत है-

श्रुतसुरनुतिघोषे शत्रुषु स्फीतरोषे-
।।।।। ।ऽ ऽऽ। ऽ ऽ ।ऽ ऽ
न न म य य

निहतविनतदोषे नित्यदास्याभिलाषे ।

ललितवपुषि शेषे लब्धसंपूर्णतोषे-

परमपुरुष ! शेषे पर्वचन्द्राविशेषे ॥ 413 ॥

वरगुणगणसीमा वारिदश्यामधामा-
IIIIIISSS ISSISS
न न म य य

सततममररामासंघसंगीतनामा ।

परिहृतभवदामा भासिताकल्पहेमा-

मम कलयतु भूमा मङ्गलं रङ्गधामा ॥ 415 ॥

आम्रवृक्षों और नारियल वृक्षों के कारण सूर्य की किरणें अवरुद्ध हो रही हैं, पापों के संहारक, चोल देश में स्थित भगवान् के मंदिरों की नमस्क्रिया देखने योग्य है-

परिगतसहकारैः प्रांशुभिर्नारिकेलै-
IIIIIISSSISSISS
न न म य य

र्दिनकरकरधारादुष्प्रवेशान्तरेभ्यः ।

चुलुकितदुरितेभ्यश्चोलदेशस्थितेभ्यो-

नम इदमखिलेभ्यो नाथदिव्यस्थलेभ्यः ॥ 465 ॥

अन्यत् च -

विधिवदविधिवद्वा भक्तितो भक्तितो वा
। ।।। । ।SS S ।S S ।S S
न न म य य

ननु शुचिरशुचिर्वा नाथमर्चत्विहत्य: ।

अनुदिनमुपयातैरर्च्यमानास्तु दैवै-

ररुचिरजितमूर्तिष्वास्तिकस्यास्ति कस्य ? ॥ 470 ॥

<u>हरिणी</u>

"न्सौ म्रौस्लौ, गो यदा हरिणी तदा" ॥

- वृत्तरत्नाकर - 3/94.

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रमश: नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु और गुरु हों उसे हरिणी छन्द कहते हैं । यति छ:, चार और सात वर्णों पर होती है ।

यद्यपि हरिणी वृत्त का प्रयोग हमारे आलोच्य काव्य में अत्यन्त न्यून मात्रा में हुआ है तथापि जिन स्थलों पर इस छन्द का प्रयोग हुआ है उसमें तनिक भी कृत्रिमता नहीं आने पायी है । किसी भी वस्तु, व्यक्ति या स्थान के यथार्थ वर्णन हेतु कवि ने इस छन्द का आश्रय लिया है जो कि गुणग्राही सहृदय पाठक वृन्द के लिए अति लाभदायक है । कवि ने इस छन्द का प्रयोग काञ्ची-वर्णनम् में किया है -

शतमखमणिस्तोमश्यामं शयानमहीश्वरे
I I I I I S S S S S I S I I S I S
न स म र स ल गु

शशिसखमुखीं राजीवाक्षीं समुन्नतनासिकम् ।

महितचरणं धातुः पत्न्या महस्तमसः परं

हृदि लगतु मे बिम्बोष्ठं तद्यथोक्तकृदाह्वयम् ॥ 280 ॥

"वेदान्तिवर्णनम्" में हरिणी वृत्त स्पष्ट लक्षित हो रहा है इससे सम्बन्धित दो श्लोक यहाँ पर उद्धृत है-

विविधदुरितव्रातस्फीतस्थिरव्यसनाकुला-
I I I I I S S S S S I S I I S I S
न स म र स ल गु

दतिमितमतेर्जीवादेवाभिदां परमेशितुः ।

अपगतपरिच्छेदामोदाम्बुधेस्समगच्छताम्-

मशकशिशुतो भेदो न स्यात्कुतो मदहस्तिनः ॥ 513 ॥

मदनजनके वीतातङ्के महागुणशेवधौ
I I I I I S S S S S I S I I S I S
न स म र स ल गु

परमपुरुषे नित्यासक्तां श्रुतिं कमलामिव ।

बत पशुपतौ शूलोपेते मनोभवदाहके

निहितहृदयां शैवा जल्पन्त्यभाग्यहता इव ॥ 517 ॥

"जिस श्रीनिवास की प्रिय भार्या लक्ष्मी, निवासस्थान स्वयं सूर्य, श्याल (श्वशुरपुत्र) चन्द्र, श्वशुर रत्नाकर है, फिर भी सर्वत: पूर्ण ये विश्व के प्रभु जो द्रव्य हरण करते हैं वह यहाँ के सेवकों के महान उपकार करने के लिए हैं।" कितना सुन्दर रिश्तों का वर्णन है जिसे कवि मौलि श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने हरिणी छन्द में गूँथा है-

प्रियसहचरी लक्ष्मी: स्थानं सहस्त्रवसु: स्वयं
।।।।।ऽ ऽऽ ऽऽ ।ऽ।।ऽ ।ऽ
न स म र स ल गु

कुवलयपति: श्यालो रत्नाकर: श्वशुरो हरे: ।

तदपि हरति द्रव्यं पूर्णो जगत्पतिरेष यत्

तदिह भजतां कर्त्तुं नृणामुदग्रमनुग्रहम् ॥ 200 ॥

"कर्णाटदेशवर्णनम्" में भी हरिणी छन्द की सुषमा अवलोकनीय है-

यदि कतिपये जात्वालस्याद्यथासमयं द्विजा
। । । ।।ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ।ऽ।।ऽ । ऽ
न स म र स ल गु

बत न तनुयु: संध्योपास्तिं भविष्यति किं तत: ।

निगमचरितानङ्गीकारो हि दूषणमङ्गिना-

मशकनवशाद्दोषायैषां न जात्वननुष्ठिति: ॥ 187 ॥

"श्रीमदेकाम्रेश्वरवर्णनम्" भी हरिणी छन्द के स्पष्ट दर्शन होते हैं ।

प्रस्तुत श्लोक में कृशानु विश्वावसु के सामने श्रीकृष्ण की निन्दा कर रहा है-

सकलजगतामीशानोऽपि स्वयं विगतश्रिया-
।।।।।SSSSS ।S ।।S।S
न स म र स ल गु

मिदमनुचितं दूतो जातो यदेष पृथाभुवाम् ।

किमिह महतां हृद्या खद्योतपोतनिकेतने-

चिरमधिपतेर्भासां दासानुदासतया स्थितिः ॥ 343 ॥

<u>स्वागता</u>

"स्वागतेति रनभाद्गुरुयुग्मम्" ॥

- वृत्तरत्नाकर - 3/40.

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रम से रगण, नगण, भगण और दो गुरु होते हैं वह ही "स्वागता" छन्द कहलाता है । इसके पाद के अन्त में यति होती है ।

स्वागता वृत्त का प्रयोग चम्पूकाव्य में न के बराबर हुआ है, मात्र 3-4 श्लोकों में ही स्वागता छन्द का प्रयोग कवि श्री वेङ्कटाध्वरि ने किया है । सर्वप्रथम स्वागता छन्द के दर्शन हमें काञ्चीनगरी के वर्णन के स्थल पर होते हैं । "इस काशी में अपवित्र शरीर को त्यागते हुए स्वच्छ शरीर को (प्राणी) निश्चय ही प्राप्त होता है । जिसके मस्तक प्रदेश में स्थित नेत्रों में अङ्गार, जटायुक्त मस्तक प्रदेश में गङ्गा का जल है । इस सम्बन्ध में श्लोक प्रस्तुत है-

अत्र देहमपवित्रमपास्यन्नच्छमृच्छति वपुः किल यस्य ।
S I S I I I S I I S S S I S I I I S I I S S
र न भ गु गु र न भ गु गु

लोचने शुचिरवाप्तनिटाले मस्तके हरिपदाम्बु जटाले ॥ 86 ॥

"श्रीमदेकाम्रेश्वरवर्णनम्" में भी स्वगता छन्द निम्नस्थ श्लोक में स्पष्ट परिलक्षित होता है-

सर्वतोमुखसमृद्धिजुषोद्यत्पौण्डरीकघनवासनयाऽपि ।
S I S I I I S I I S S S I S I I I S I I S S
र न भ गु गु र न भ गु गु

यत्तयाप्यवधि जह्नुसुतास्तत्तत्रधातिचिरसंगतिदोषात् ॥ 328 ॥

कावेरी नदी की अनुपम छवि का मनोहर दृश्य कवि ने अपने काव्य में किया है । इस नदी के वर्णन में एक स्थान पर कवि ने अपनी सुन्दर लेखनी द्वारा स्वागता छन्द का भी निरूपण किया है-

हन्त रङ्गपुरसङ्गतमत्राहं तरङ्गचलपङ्कजसङ्घम् ।
S I S I I I S I I S S S I S I I I S I I S S
र न भ गु गु र न भ गु गु

सह्यजायतझरं बहु मन्ये स ह्यजायत तमःशमनार्थम् ॥ 390 ॥

<u>रथोद्धता</u>

"रन्नराविह रथोद्धता लगौ" ॥

– वृत्तरत्नाकर – 3/39.

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में रगण, नगण, रगण, लघु और गुरु हो, वह "रथोद्धता" छन्द कहलाता है। इसके पाद के अन्त में यति होती है।

श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने छन्द बहुलता को दृष्टि में रखते हुए ही इस छन्द को अपने इस चम्पूकाव्य में मात्र एक श्लोक में आबद्ध किया है। और यह श्लोक प्रारम्भ में ही "सूर्यवर्णनम्" में दिखायी देता है। विश्वावसु दोषद्रष्टा कृशानु के समक्ष सूर्य मण्डल निवासी भगवान् की प्रशंसा करते हुए कह रहा है कि "सूर्यकी किरणों से विकसित कमल के समान नेत्रवाले, भक्त-समुदाय के सांसारिक बन्धनों के निवारण कर्त्ता, पङ्कज-निवासिनी लक्ष्मी के मित्र, स्वर्णाभ विष्णु भगवान् का तेज मुझे आनन्द उत्पन्न कर रहा है।" प्रस्तुत है यहाँ पर यह श्लोक-

भानुभानुदलदब्जलोचनं भक्तलोकभवपाशमोचनम् ॥
S I S I I I S I S I S S I S I I I S I S I S
र न र ल गु र न र ल गु

धाम तामरसवासिनीसखं हेमवर्णमिह सौति मे सुखम् ॥ 14 ॥

नर्कुटकं

"हयदशभिर्नजौ भजजला गुरु नर्कुटकम्" ॥

- वृत्तरत्नाकर - 3/66.

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, जगण, भगण, दो जगण, लघु

और गुरु आवें तो वह "नर्कुटकम्" छन्द कहलाता है । यति सात और दस वर्णों पर होती है ।

यह छन्द भी काव्य में कठिनता से दृष्टिगत होता है । केवल दो श्लोक में इसकी रचना हुई है ।

"वनवर्णनम्" से नर्कुटकम् छन्द का उदाहरण यहाँ पर किया जा रहा है-

गहनगुहाविहारिहरिपाणिरुहाभिहत-
III IS IS II IS IIS IIS
न ज भ ज ज ल गु

द्विरदशिरस्तटोद्गलितमौक्तिकसंहतिभिः ।

अहह विभूषितैरिह चिरं विहरन्ति सुखं

सममबलाजनैरतिविलासपराः शबराः ॥ 210 ॥

"रामानुजवर्णनम्" में भी नर्कुटकम् छन्द सुन्दर ढंग से प्रयुक्त हुआ है । इस छन्द से सम्बन्धित श्लोक यहाँ पर दिया जा रहा है-

बकुलविभूषणेन गुरुणा करुणानिधिना
III ISISI IIS IIS IIS
न ज भ ज ज ल गु

श्रुतिमुकुटाभिसन्धिमवधार्य परं गहनम् ।

रचितमिह प्रबन्धमनुसंदधतां कथितं

सममपि दूषणं स्मृति-पुराणमधीतवताम् ॥ 243 ॥

<u>आर्या</u>

यस्या: प्रथमे पादे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चादश साऽऽर्या ॥

जिस पद्य के प्रथम और तृतीय चरण में 12-12 मात्रायें होती हैं तथा दूसरे चरण में 18 और चौथे चरण में पन्द्रह मात्रा होती है वह "आर्या" छन्द कहलाता है ।

इस चम्पूकाव्य में आर्या वृत्त का प्रयोग भी कहीं-कहीं पर दृष्टिपथ में आता है जो उनकी मात्रिक छन्दों में भी सिद्धहस्तता द्योतित करता है । आर्या छन्द का प्रयोग सर्वप्रथम कवि ने अयोध्यावर्णन में किया है जिसमें उनकी कम शब्दों में वर्णन चातुरी दर्शनीय है-

वालिनि क्लोर्मिमालिनि जाग्रति सुग्रीवमग्रहीद्यदयम् ।
S I I I S I S I I S I I I S I I I S S I S
12 मात्रा 18 मात्रा
अस्य श्रुतिशतविदितं सुव्यक्तं तेन दीनबन्धुत्वम् ॥

हरि की प्रिया के अल्प कटाक्ष से ही मनुष्य के "वाहन" गज-शिबिका और अश्व होते हैं और उसकी अधिकता में वाहन, बैल और पक्षी होता है । यहाँ पर वाहन द्वारा, इन्द्र, शंकर और विष्णु का संकेत कवि ने आर्या छन्द के

माध्यम से प्रस्तुत किया है जो अनुपम है-

गजशिबिकातुरगाः स्युर्नरस्य तन्व्या दृशा हरेत्तन्व्याः ।
।। । ।S।।S S।S। S S ।S ।SSS
12 मात्रा 18 मात्रा

तद्भूग्नि भवति वाहो नारद उक्षा च हन्त पक्षी च ॥ 428 ॥

श्रीकामाक्षीदेवीवर्णनम् में भी आर्या छन्द का निरूपण कवि ने किया है । इस श्लोक में उन्होंने बताया है कि श्लोक में सहृदय रसिक जन का चित्त आसक्त होता है वही श्लोक अच्छा होता है और पुरुष वही सुन्दर है जहाँ चतुर स्त्री रमती है-

रमणीयः स हि पुरुषो रमणी यत्रैव रज्यति विदग्धा ।
।।SS। । ।।S ।।S SS। S। । ।SS
12 मात्रा 18 मात्रा

श्लोकः स एव सुभगश्चित्तं सक्तं हि यत्र रसिकस्य ॥ 317 ॥

<u>भुजङ्गप्रयातम्</u>

"भुजङ्गप्रयातं भवेद्यश्चतुर्भिः" ॥

- वृत्तरत्नाकर - 3/56.

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में चार यगण हो उसे 'भुजङ्गप्रयातम्' वृत्त कहते हैं । इसके पादान्त में यति होती है ।

श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने अपने इस चम्पूकाव्य में भुजङ्गप्रयातम् छन्द का अत्यल्प मात्रा में प्रयोग किया है। सर्वप्रथम हमें विश्वगुणादर्शचम्पू काव्य में भुजङ्गप्रयातम् छन्द का प्रयोग महाराष्ट्रवर्णनम् में दिखलायी देता है।

अलं मङ्क्षु संहर्तुमंहस्सहस्त्रं स एकोऽपि विप्रप्रवेकोपकार: ।
। S S । S S । S S । S S । S S । S S । S S । S S
य य य य य य य य

कठोर: कुठार: किलैकोऽपितिग्मो विनिर्भेत्तुमीष्टे विष्द्रूननेकान् ॥ 142 ॥

कर्णाटदेशवर्णनम् में कवि श्री ने एक श्लोक में भुजङ्गप्रयातम् छन्द का प्रयोग किया है। जो यहाँ पर प्रस्तुत है-

अनभ्यस्य वेदानहो शास्त्रवादान्
। S S । S S । S S । S S
य य य य

पठन्तु: स्फुटं ये बतैतन्मतस्था: ।

अधीशाननादृत्य तद्भृत्यपूजा-

पराणां नराणां पदं ते भजन्ते ॥ 181 ॥

कवित्व के लिए गम्भीरता, सम्पत्ति के लिए उदारता, प्रभुत्व के लिए पराक्रम, आचार्यत्व के लिए विद्या, अच्छे वंश में उत्पन्न होने के लिए सदाचार से पूर्णता, सर्वश्रेष्ठता के लिए सुलभता आभूषण कही गयी है। इन सुभाषित वचनों

को कवि ने भुजङ्गप्रयातम् छन्द गूँथा है-

कवित्वस्य गम्भीर्यमौदार्यमृद्धेः प्रभुत्वस्य शौर्यं गुरुत्वस्य विद्याम् ।
। S S । S S । S S । S S । S S । S S । S S । S S
य य य य य य य य

महावंश्यतायाः सदाचारपूर्तिं महत्त्वस्य सौलभ्यमाकल्पमाहुः ॥ 344 ॥

"श्रीरङ्गनगरीवर्णनम्" में अत्यन्त निपुणता के साथ इस छन्द का प्रयोग हुआ है-

सपर्या-विरुद्धादपि प्राप्तुमीष्टे-
। S S । S S । S S । S S
य य य य

समर्थो जगत्यां यतो रामचन्द्रात् ।

अरं-गाधिराजोदितप्रौढभक्ते-

रपि प्राप पूजां स रङ्गाधिराजः ॥ 511 ॥

भयानकरस से परिपूर्ण शैवजन की वेश-भूषा, तथा आकृति का वर्णन करने के लिए कवि ने भुजङ्गप्रयातम् छन्द का आश्रय लिया है जो इस श्लोक में भय नामक स्थायी भाव को और भी अधिक जाग्रत कर रहा है-

श्रिताभव्यमार्गाश्चिताभस्मभूष्य-
। S S । S S । S S । S S
य य य य

न्निटाला जटाला: स्फुटालापशून्या: ।

श्मशानाग्निसख्या दृशा निर्दहन्त:

पिशाचा इवामी दिशासु भ्रमन्ति ॥ 524 ॥

ज्योतिषियों की विशेषताओं को वर्णित करते हुए कवि कह रहे हैं कि- "जिस देश में ज्योतिष के जानकार ।ज्ञाता। नहीं है, उस देश में न नक्षत्र, न तो नौ ग्रहों का सञ्चरण और न तिथि आदि अथवा न देवकर्म न पितृकार्य ही सिद्ध हो सकते हैं जिस लिए उन स्थलों में वे पण्डित हैं ।" भुजङ्गप्रयातम् छन्दोबद्ध इस रचना को देखिए-

न दैवं न पित्र्यं च कर्मात्र सिध्येन्न यत्रास्ति देशे ननु ज्यौतिषज्ञ: ।
। S S । S S । S S । S S । S S । S S । S S । S S
य य य य य य य य

न तारा न चारा नवानां ग्रहाणां न तिथ्यादयो वा यतस्तत्र बुद्धा: ॥
॥ 532 ॥

---------::0::---------

अध्याय सप्तम्

रस निरूपण

रस निरूपण

सामान्य परिचय

प्रत्येक साहित्यकार के काव्य में प्रधानतः दो तत्त्व उभर कर पाठकों के समक्ष आते हैं। पहला पक्ष है, हृदय ग्राह्य तत्त्व और दूसरा पक्ष है बुद्धि-ग्राह्य तत्त्व। यही भावपक्ष और कलापक्ष के नाम से जाना जाता है। जिस प्रकार से वस्त्राभूषण व्यक्ति के बाह्य सौन्दर्य के प्रतीक होते हैं और आत्मा आन्तरिक सौन्दर्य का कारण, ठीक उसी प्रकार से कला काव्य शरीर का बाह्य सौन्दर्य है और भाव आन्तरिक।

"आचार्य मम्मट ने भावपक्ष के क्रमशः आठ भेद बताए हैं- रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि और भावशबलता।"[1] भावपक्ष में रस का स्थान सर्वोच्च है।

रस काव्य का प्राणतत्त्व है। साहित्य में रसतत्त्व की संस्थिति एवं उसकी सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

उपनिषद् ग्रन्थों में रस को ब्रह्म के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा

---

1. काव्य प्रकाश, मम्मट - 4/26.

उससे आनन्द की प्राप्ति बतलायी गई है ।[1]

महर्षि वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में रस शब्द की काव्यपक्षीय मीमांसा प्रकट कर इसे श्रृंगारादि रस के रूप में प्रतिपादित किया है । महर्षि वेदव्यास ने अग्निपुराण में रस को नवीन अर्थ में प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि वाणी के विलास में रस प्राणतत्त्व है ।[2]

आचार्य भरत का काव्य में रस के व्यावहारिक स्वरूप पर मौलिक चिन्तन है अतः रस शब्द की साहित्यिक अभिव्यक्ति का श्रेय आचार्य भरत को ही है । उन्होंने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि "काव्य या नाटक का कोई भी अर्थ रस निरपेक्ष होकर प्रवृत्त नहीं हो सकता ।"[3] काव्य या नाट्य के तीन प्रधान तत्त्व हैं- 1. वस्तु 2. नेता 3. रस । इन तीनों में भी रस ही प्रधान है क्योंकि वस्तु एवं नेता रस की उपेक्षा करके नहीं चल सकते । ये दोनों ही प्रकारान्तर से रस की अभिव्यक्ति में सहायता ही करते हैं । रस मीमांसा का प्रथम श्रेय भी

---

1. रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवन्ति । - तैत्तिरीयउपनिषद् - 2/7/1.

2. वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् । - अग्निपुराण - 336/33।.

3. नहि रसादृते कश्चिदप्यर्थः प्रवर्तते ।
   - नाट्यशास्त्र पृष्ठ संख्या-7।.

आचार्य भरत मुनि को ही उन्होंने अपने नाट्यशास्त्र में रस निष्पत्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है कि "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः ।"[1] भाव यह है कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है । भरतमुनि का मत है कि ये तीनों ही भाव सहृदयों के हृदय में वासना रूप में स्थित रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा एवं विस्मय नामक स्थायी भावों की उद्‌बुद्धि के अनुसार ही श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स एवं अद्‌भुत रस होते हैं ।[2] रस का आस्वादन वस्तुतः स्थायी भाव का ही आस्वादन है क्योंकि अभिव्यक्ति की स्थिति में स्थायी भाव ही रस है ।

रसों की संख्या

आचार्य भरत ने आठ नाट्य रस स्वीकार किये हैं । श्रृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स तथा अद्‌भुत ।[3] इन आठ रसों के विषय में सभी आचार्य एकमत हैं, किन्तु कुछ आचार्यों ने शान्त, भक्ति तथा वात्सल्य को भी रसों के अन्तर्गत माना है । भरतमुनि ने भी उपर्युक्त आठ रसों का वर्णन करने

---

1. नाट्यशास्त्र - पृष्ठ संख्या-71.
2. नाट्यशास्त्र - 6/15/17.
3. श्रृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
   वीभत्साद्‌भुतस ञ्ज्ञौ चेत्यष्टौ रसाःस्मृताः ॥
   - नाट्यशास्त्रे 6/16.

के अनन्तर शान्त रस का विवेचन किया है ।[1] आचार्य मम्मट ने शान्तरस को नवम् रस माना है, तथा निर्वेद को उसका स्थायिभाव कहा है ।[2] उन्होंने वात्सल्य तथा भक्ति का भावध्वनि में अन्तर्भाव किया है ।[3] अभिनवगुप्त ने भरतमुनि की मान्यता का समर्थन करते हुए 'अभिनवभारती' में शान्तरस का विवेचन किया है, किन्तु उन्होंने भी वात्सल्य को रस की कोटि से बाहर रखा है । इसके विपरीत साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य को पृथक् रस के रूप में मान्यता दी है ।[4] दशरूपककार धनञ्जय ने शान्तरस को केवल काव्य का विषय माना है, नाट्य का नहीं ।[5]

---

1. नाट्यशास्त्रे - 6/84-87.

2. निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः ।
   - काव्यप्रकाशे 4/35.

3. रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाजितः ।
   भावः प्रोक्तः -------------------॥
   - तत्रैव 4/35, 36.

4. स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः ।
   स्थायी वत्सलता स्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम् ॥ - साहित्यदर्पणे 3/251.

5. शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य । - दशरूपके 4/35.

स्थायिभाव

"विरोधी अथवा अविरोधी भावों से जिसका प्रवाह विच्छिन्न न हो तथा अन्य लवणाकार अर्थात् समुद्र के समान सभी भावों को आत्मसात् कर ले उसे स्थायी भाव कहते हैं ।"[1] अर्थात् जो सजातीय एवं विजातीय भावान्तरों से तिरस्कृत न होकर काव्य में उपनिबद्ध होते हैं, उन रति आदि भावों को स्थायी भाव कहते हैं । व्यवहार दशा में मनुष्य को जिस प्रकार की अनुभूति होती है उनको ध्यान में रखकर प्राय: आठ प्रकार के स्थायीभाव साहित्यशास्त्र में माने गये हैं । भरतमुनि ने भी अपने नाट्यशास्त्र में आठ स्थायीभाव माने है । दशरूपककार ने इन आठ स्थायीभावों की गणना इस प्रकार की है[2]- रति, उत्साह, जुगुप्सा, क्रोध, हास, विस्मय, भय, शोक ये आठ स्थायी भाव हैं । कुछ लोग शम को भी स्थायीभाव मानते हैं किन्तु इसकी पुष्टि नाट्य में नहीं होती है । काव्यप्रकाशकार 'निर्वेद' को नवम् स्थायीभाव मानते हैं । काव्यप्रकाशकार श्री-मम्मटाचार्य ने उनकी गणना इस प्रकार की है - 1. रति 2. हास 3. शोक

---

1. विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न य: ।
   आत्मभावं नयत्यन्यान्स स्थायी लवणाकर: ॥
   - दशरूपक 4/34.

2. रत्युत्साहजुगुप्सा: क्रोधो हास: स्मयो भयं शोक: ।
   शममपि केचित्प्राहु: पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य ॥
   - दशरूपक 4/34, 35.

4. क्रोध 5. उत्साह 6. भय 7. जुगुप्सा और 8. विस्मय ये आठ स्थायीभाव कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त 9. निर्वेद को नवम स्थायी भाव मानते हैं।[1]

इस प्रकार से नौ स्थायीभाव और उनके अनुसार ही ये नौ रस स्वीकार किये गये हैं - 1. श्रृङ्गार 2. हास्य 3. करुण 4. रौद्र 5. वीर 6. भयानक 7. बीभत्स 8. अद्भुत और 9. शान्त।

ये नौ स्थायीभाव मनुष्य के हृदय में स्थायी रूप से सदैव विद्यमान रहते हैं। अत: ये स्थायीभाव कहलाते हैं। सामान्यत: ये अव्यक्तावस्था में रहते हैं, परन्तु जब जिस स्थायीभाव के अनुकूल विभावादि सामग्री को प्राप्त कर लेता है तथा अभिव्यक्त हो उठता है तथा हृदय मे अपूर्व आनन्द का सचार कर देता है। इसी स्थायीभाव की अभिव्यक्ति ही रस्यमान होकर 'रस' शब्द से बोध्य होती है। इसीलिये काव्यप्रकाशकार ने रस-लक्षण की अन्तिम पंक्ति में कहा है "व्यक्त: स तैर्विभावाद्यै: स्थायी भावो रस: स्मृत:।"

स्थायी भाव का जो यह निरूपण काव्यशास्त्र में किया गया है वह पूर्णत: मनोवैज्ञानिक आधार पर है। आधुनिक मनोविज्ञान जिनको मूल प्रवृत्तियों से

---

1. रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावा: प्रकीर्तिता:॥
निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस:। - काव्यप्रकाश 4/45, 47.

सम्बद्ध 'मनः संवेग' कहता है उन्हीं को साहित्यशास्त्र में 'स्थायीभाव' नाम से अभिहित किया गया है। प्रख्यात मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल ने 14 प्रकार की मूल-प्रवृत्तियों और उनसे सम्बन्धित 14 मन: संवेग माने हैं। 10 मूल-प्रवृत्तियों का सम्बन्ध रस से है किन्तु बाद की मूल प्रवृत्तियों का सम्बन्ध रस से नहीं है। अत: उन्हें मन: संवेग कहना उचित प्रतीत नहीं होता है। प्राचीन आचार्यों ने मौलिकरूप से नौ प्रकार के मन: संवेग स्वीकार करके साहित्यशास्त्र में नौ रसों अथवा नौ स्थायीभावों की स्थापना की है। अत: स्थायीभावों का सिद्धान्त प्राचीन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित है। जबकि काव्य में इनकी संख्या कुछ आचार्यों ने नौ तक मानी है।[1]

विभाव

रसानुभूति के कारणों को विभाव कहते हैं। अर्थात् जो हृदय में विद्यमान जो रति आदि स्थायी भाव हैं। लोक में सहृदय उन्हें काव्य और नाटक में विभाव कहा जाता है।

"रत्याद्युद्‌बोधका लोके विभावा: काव्यनाट्ययो: ।"[2]

---

1. रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।
   जुगुप्सा विस्मयश्चेत्यस्यै प्रोक्ता शमोऽपि च ॥ - साहित्यदर्पण - 3/175.

2. साहित्यदर्पण - 3/29.

इस विभाव के आलम्बन तथा उद्दीपन के दो भेद होते हैं। जो आलम्बन के माध्यम से रस की निष्पत्ति कराते हैं उन्हें आलम्बन विभाव कहते हैं।[1] जैसे नायक-नायकादि तथा जो रस को उद्दीप्त करते हैं उन्हें उद्दीपन विभाव कहते हैं।[2] देश, काल, चन्द्र, चन्दन, उद्यान, कोकिलालाप, भ्रमर गुंजार आदि उद्दीपन विभाव हैं।

प्रत्येक रस के आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव पृथक्-पृथक् होते हैं।

<u>अनुभाव</u>

सीता आदि आलम्बन और चन्द्रादि उद्दीपन कारणों से रामादि के हृदय में उद्बुद्ध रति आदि को बहर प्रकाशित करने वाला लोक में जो रति का कार्य कहलाता है वही काव्य में अनुभाव कहलाता है।[3]

तात्पर्य यह है कि आलम्बन अथवा आश्रय में रत्यादि स्थायी भावों

---

1. आलम्बनो नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात्। - साहित्यदर्पण - 3/92.
2. उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये। - साहित्यदर्पण - 3/131.
3. उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्।

   लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः॥

   - साहित्यदर्पण - 3/132.

को सूचित करने वाले विकार, अनुभाव कहलाते हैं ।[1] ये अनुभाव भ्रूविक्षेप, कटाक्ष आदि आलम्बन के शारीरिक विकारों के रूप में प्रकाशित होते हैं ।

स्थायीभाव रसानुभूति का प्रयोजक अन्तरङ्ग या आभ्यन्तर कारण है । आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव उसके बहिरङ्ग कारण हैं । इसी प्रकार से अनुभाव एवं व्यभिचारिभाव उस आन्तरिक रसानुभूति से उत्पन्न, उसकी बाह्य अभिव्यक्ति के प्रयोजक शारीरिक व मानसिक व्यापार हैं । इन्हीं को रस का कारण, कार्य तथा सहकारी कहा जाता है ।

भरतमुनि ने अनुभाव का लक्षण इस प्रकार किया है ।[2] जो वाचिक या आङ्गिक अभिनय द्वारा रत्यादि स्थायीभाव की आन्तरिक अभिव्यक्तिरूप अर्थ का बाह्यरूप में अनुभव कराता है उसको 'अनुभाव' कहते हैं । भरतमुनि को नाट्य शास्त्र के अनुसार अनुभावों का विशेष उपयोग अभिनय की दृष्टि से ही होता है ।

व्यभिचारिभाव

वाक् अङ्ग और सत्त्व के द्वारा रसानुकूल सञ्चरण करने वाले विविध भावों को व्यभिचारी या सञ्चारी भाव कहते हैं । दशरूपक स्थिरता से विद्यमान

---

1. अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मक: । - दशरूपक 4/3.

2. वागङ्गाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभावयते ।
शाखाङ्गोपाङ्गसंयुक्तस्त्वनुभावस्तत: स्मृत: ॥ - नाट्यशास्त्र 7/5.

रति आदि स्थायीभाव में आविर्भूत एवं तिरोभूत होकर निर्वेदादि भाव अनुकूलता से व्याप्त होते हैं। अतएव विशिष्ट प्रकार से अभिमुख्य से आचरण के कारण इन्हें व्यभिचारिभाव कहते हैं। दशरूपककार के ही शब्दों में -

ये समुद्र में तरङ्गों की तरह स्थायीभाव में उदय और विलय को प्राप्त होते रहते हैं।[1] जैसे निर्वेद, आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जड़ता, आग्रह, आग्रह, ग्लानि, शङ्का आदि।

इन व्यभिचारिभावों की संख्या 33 मानी गयी है। ये 33 व्यभिचारि-भाव सब रसों में मिलकर होते हैं। पृथक्-पृथक् रसों के अनुसार उनका वर्गीकरण नहीं किया गया है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में व्यभिचारिभाव की गणना इस प्रकार की है -

निर्वेदग्लानिशङ्कारण्यास्तथासूया मद: श्रम: ।
आलस्य चैव दैन्यं च चिन्ता मोह: स्मृतिर्धृति: ॥
व्रीडाचपलता हर्ष आवेगो जड़ता तथा ।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एव च ॥

---

1. विशेषादिभिमुख्येन चरणाद्व्यभिचारिण: ।
स्थायिन्युनमग्न निर्मग्ना: -------- ॥
- साहित्यदर्पण 3/140.

सुप्तं विबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता ।

मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च ॥

त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः ।

त्रयस्त्रिंशदमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः ॥ - नाट्यशास्त्र 6/19-21.

काव्य प्रकाशकार ने मम्मटाचार्य ने रस-निरूपण करते समय लिखा है[1] कि "लोक में जो कारण ‡युवक, युवती‡ कार्य पारस्परिक चेष्टायें और सहकारी कारण ‡निद्रा का न आना, रातें जागना, कराहना आदि‡ होते हैं । वे यदि नाटक या काव्य में ‡प्रयुक्त‡ होते हैं तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव कहलाते हैं और उन विभाव ‡आलम्बन या उद्दीपन‡ आदि ‡रूप कारण, कार्य तथा सहकारी के योग‡ से व्यक्त हुए ‡रति आदि रूप‡ स्थायीभाव को 'रस' कहते हैं ।

मम्मटाचार्य की इन कारिकाओं का संक्षेप 'हेमचन्द्राचार्य' ने अपने काव्य ग्रन्थ 'काव्यानुशासन' में इस प्रकार किया है -

"विभावानुभावव्यभिचारिभिरभिव्यक्तः स्थायी भावो रसः ।"
- काव्यानुशासन 2, 1.

---

1. कारणान्यथ कार्याणि सहकारिणि यानि च ।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ॥
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥ -काव्यप्रकाश 4/27, 28.

मम्मट की ही रस-परिभाषा का संक्षिप्तीकरण कविराज विश्वनाथ में साहित्यदर्पण के तृतीय अध्याय में किया है। विश्वनाथ का रस-लक्षण प्रस्तुत है-

विभावेनानुभावेन व्यक्त: सञ्चारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादि: स्थायिभाव: सचेतसाम् ॥ - साहित्यदर्पण 3/1.

इन संक्षिप्त रस-लक्षणों में काव्य रस के विमर्श का न तो आधार दृष्टिगत होता है जो कि लोक और काव्य का परस्पर वैलक्षण्य है और न ही लोक-जीवन और काव्य-जीवन का वह सम्बन्ध ही पता चलता है जिसके कारण लोक की अनुभूतियाँ काव्य में रस-योजना की आधार स्तम्भ के रूप में समन्वित हुआ करती है।

मम्मट की इन रस-स्वरूप को स्पष्ट करने वाली कारिकाओं में भरतमुनि के रस-सूत्र का आशय स्पष्टत: प्रतीत हो रहा है।

रस से सम्बन्धित विविध आचार्यों के मत

भरतमुनि के रस-सूत्र की व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने स्व-स्व-प्रतिभा के अनुसार की है। यद्यपि भरतमुनि के रससूत्र की व्याख्या अनेक विद्वानों ने की है तथापि उनमें चार विद्वानों की व्याख्या का प्रमुख स्थान माना जाता है। इन व्याख्याकारों के नाम इस प्रकार हैं -

1. भट्टोल्लट (उत्पत्तिवादी आचार्य)
2. शंकुक (अनुमितिवादी आचार्य)

3. भट्टनायक ﴾भुक्तिवादी आचार्य﴿

4. अभिनवगुप्त ﴾अभिव्यक्तिवादी आचार्य﴿

भट्टलोल्लट

भरत-सूत्र के व्याख्याकारों में भट्टलोल्लट को उत्पत्तिवादी आचार्य माना जाता है। आपके मत से निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति और संयोग का उत्पाद्य उत्पादक सम्बन्ध है। अतः आपके मत को उत्पत्तिवादी कहा जाता है। आपके मत में विभाव, अनुभाव आदि के संयोग से अभिनेय राम आदि में रस की उत्पत्ति होती है। उनमें भी विभाव सीता आदि मुख्य रूप से रस के उत्पादक होते हैं। अनुभाव उस उत्पन्न हुए रस को बोधित करने वाले होते हैं और व्यभिचारिभाव उस उत्पन्न रस के परिपोषक होते हैं। अतः स्थायीभाव के साथ विभावों का उत्पाद्य-उत्पादक भाव, अनुभावों का गम्य-गम्यगमक भाव और व्यभिचारी भावों का पोष्य-पोषकभाव सम्बन्ध स्वीकार किया है। यह मत मीमांसक तथा वेदान्तियों का मत माना जाता है। भरतमुनि के सूत्र में जो 'संयोग' शब्द आया है भट्टलोल्लट के मत में उसके भी तीन अर्थ है।[1] विभावों के साथ संयोग अर्थात् उत्पाद्य-उत्पादक-भाव सम्बन्ध अनुभावों के साथ गम्य-गम्यकभाव

---

1. विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणैः रत्यादिको भावो जनितः अनुभावैः कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः, व्यभिचारिभिर्निर्वेदादिभिः सहकारिभिरुपचितो मुख्यया वृत्त्या रामादावनुकार्ये तद्रूपतानुसन्धानान्नर्तकेऽपि प्रतीयमानो रस इति भट्टलोल्लटप्रभृतयः।
   – काव्यप्रकाश, पृष्ठ संख्या 101.

सम्बन्ध एवं व्यभिचारियों के साथ पोष्य-पोषकभाव रूप सम्बन्ध 'संयोग' शब्द का अर्थ होता है जैसा कि उन्होंने कहा है ‡विभावों अर्थात् रस के आलम्बन तथा उद्दीपन के कारणभूत‡ ललना ‡आलम्बनविभाव‡ और उद्यान आदि ‡उद्दीपन-विभावों‡ से रति आदि ‡स्थायी‡ भाव उत्पन्न हुआ, ‡रति आदि की उत्पत्ति के‡ कार्यभूत कटाक्ष, भुजाक्षेप आदि अनुभावों से प्रतीति के योग्य किया गया और सहकारीरूप निर्वेद आदि व्यभिचारिभावों से पुष्ट किया गया मुख्यरूप से अनुकार्यरूप राम आदि में और उनके स्वरूप का अनुकरण करने से नट में प्रतीयमान ‡अर्थात् आरोप्यमाण रत्यादि स्थायीभाव ही‡ रस ‡कहलाता‡ है। यह भट्टलो-ल्लट आदि का मत है।

इस मत में प्रथम दोष यह माना गया है कि अभिनेता नट में रस की उत्पत्ति मानना नितान्त असंगत है क्योंकि जब रस की उत्पत्ति नट में होती है तो फिर सामाजिकों को नाटक से क्या लाभ होगा ? दूसरे अभिनीयमान सीता राम के अभाव में अर्थात् अब इस लोक में विद्यमान न होने के कारण अभिनय से रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। तीसरे अभिनेता नट में रस की उत्पत्ति इसी-लिये स्वीकार नहीं की जा सकती है क्योंकि नट तो अर्थ-लोभवश अभिनय करता है अतः नट के हृदय में भय विद्यमान रहता है कि मेरा अभिनय सामाजिकों को रुचिकर प्रतीत हो रहा है या नहीं। इस भय से आक्रान्त होने के कारण भी नट में रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अतः भट्टलोल्लट का मत मान्य नहीं है।

<u>शंकुक</u>

भरत-सूत्र के दूसरे टीकाकार न्याय-सिद्धान्त के अनुयायी आचार्य शंकुक को अनुमितिवाद का प्रतिपादक माना जाता है । आपके मत से रस अनुमेय है तथा विभाव आदि अनुमापक हैं । इत्यादि स्थायीभाव नायक में विद्यमान रहते हैं । निष्पत्ति अर्थात् रस के विभावादि के द्वारा अनुमिति होती है । रस मुख्यरूप से राम में विद्यमान रहता है । सहृदय सामाजिक गण रस का नट में अनुमान करते हैं और अपनी वासना के वशीभूत होकर उस अनुमीयमान रस का आस्वादन करते हैं ।

शंकुक की इस अनुमितिवाद की व्याख्या काव्यप्रकाशकार श्री मम्मटाचार्य ने इस प्रकार से उपस्थित की है - 1. 'यह राम ही है' अथवा 'यह ही राम है' ‹इस प्रकार की सम्यक् प्रतीति›, 2. 'यह राम नहीं है' इस प्रकार उत्तर काल में बाधित होने वाली 'यह राम है' ‹इस प्रकार की मिथ्या प्रतीति›, 3. 'यह राम है या नहीं' ‹इस प्रकार की संशय रूप प्रतीति› तथा 4. 'यह राम के समान है' ‹इस प्रकार की सादृश्य-प्रतीति› इन 1. सम्यक् प्रतीति 2. मिथ्या प्रतीति 3. संशय प्रतीति और 4. सादृश्य प्रतीतियों से पृथक् प्रकार की 'चित्र-तुरग न्याय' से होने वाली ‹पाँचवी प्रकार की› प्रतीति से ग्रन्थ नट में 'सेयं ममाङ्गेषु' इत्यादि काव्यों के अनुशीलन से तथा शिक्षा के अभ्यास से सिद्ध किये हुए अपने ‹अनुभाव इत्यादि› कार्य से नट के ही द्वारा प्रकाशित किये जाने वाले, कृत्रिम होने पर भी

कृत्रिम न समझे जाने वाले, विभाव आदि शब्दों से व्यवहृत होने वाले, कारण, कार्य और सहकारियों के साथ 'संयोग' अर्थात् गम्य-गम्यकभाव रूप सम्बन्ध से, अनुमीयमान होने पर भी, वस्तु के सौन्दर्य के कारण तथा आस्वाद का विषय होने से अन्य अनुमीयमान अर्थों से विलक्षण स्थायीरूप से सम्भावमान रति आदि भाव वहाँ अर्थात् नट में वास्तविक रूप में न रहते हुए भी सामाजिक के संस्कारों से ‡स्वात्मगतत्वेन‡ आस्वाद किया जाता हुआ 'रस' कहलाता है । यह श्रीशंकुक का मत है ।[1]

शंकुक के 'अनुमितिवाद' को नैयायिक सिद्धान्त माना गया है । इसका कारण उसका अनुमिति-प्रधान होना ही है । न्याय शास्त्र अनुमिति-प्रधान शास्त्र है । न्याय की इसी 'अनुमितिप्रधान' प्रक्रिया के आधार पर ही शंकुक ने अपने अनुमितिवाद' की प्रतिष्ठापना की है । इसीलिये आपके मत को नैयायिक सिद्धान्त

---

1. राम एवायम अयमेव राम इति, न रामोऽयमित्यौत्तरकालिके बाधे रामोऽय - मिति, रामः स्याद्वा न वाऽयमिति, रामसदृशोऽयमिति, च सम्यङ्मिथ्यासंशयसादृश्यप्रतीतिभ्यो विलक्षणया चित्रतुरगादिन्यायेन रामोऽयमिति प्रतिपत्तया-ग्राह्ये नटे-"सेयं ममाङ्गेषु --------- ।" इत्यादि काव्यानुसन्धानबला-च्छिक्षाभ्यासनिर्वर्तितस्वकार्यप्रकटनेन च नटेनैव प्रकाशितैः कारणकार्यसहकारिभिः कृत्रिमैरपि तथाऽभिमन्यमानैर्विभावादिशब्दव्यपदेश्यैः 'संयोगात्' गम्यगमक-भावरूपात् अनुमीयमानोऽपि वस्तुसौन्दर्यबलाद्रसनीयत्वेनान्यानुमीयमानविल-क्षणः स्थायित्वेन सम्भाव्यमानो रत्यादिभविस्तत्रासन्नपि सामाजिकानां वासनया चर्व्यमाणो रस इति श्रीशङ्कुकः । - काव्यप्रकाश पृ0सं0 103.

कहा गया है । वस्तुत: शंकुक का यह अनुमितिवाद भी दोषपूर्ण है । शंकुक के मत के अनुसार विभावादि नट में रस की अनुमिति नहीं हो सकती है, क्योंकि विभाव आदि नट वास्तव में विभावादि नहीं है वरन् कृत्रिम विभावादि हैं । कृत्रिम विभावादि में रसानुभूति नहीं है । इसके अतिरिक्त अनुमिति तो परोक्ष वस्तु की होती है । तब प्रत्यक्ष प्रतीत होता है । उसको परोक्ष नहीं कह सकते हैं । क्योंकि रसजनित आनन्द की अनुभूति प्रत्यक्ष ज्ञान से ही हो सकती है परोक्ष ज्ञान से नहीं । इसके अतिरिक्त अनुमान के व्याप्ति, लिङ्ग, परामर्श आदि हेतु निश्चित होते हैं । हेतुओं के अभाव में अनुमान हेत्वाभास कहा जाता है । अत: अनुमान के हेतुओं के अभाव में अलौकिक रस की अनुमिति नहीं हो सकती है । अत: शंकुक का यह अनुमितिवाद भी सर्वथा उचित नहीं प्रतीत होता है ।

<u>भट्टनायक</u>

भरतमुनि के सूत्र के तीसरे व्याख्याकार भट्टनायक हैं । सांख्यमतावलम्बी भट्टनायक का रस सम्बन्धी सिद्धान्त भुक्तिवाद के नाम से अभिहित किया जाता है । आपके मत से 'संयोग' का अर्थ भोज्य-भोजक-सम्बन्ध और निष्पत्ति का अर्थ 'भुक्ति' है । आपके मतानुसार रस की निष्पत्ति अभिनेय रामादि में भी नहीं होती है तथा अभिनेता नट में भी नहीं होता है क्योंकि अनुकार्य और अनुकर्त्ता दोनों तटस्थ हैं, उदासीन हैं । उनको रसानुभूति नहीं होती है । वास्तविक रसानुभूति सामाजिकों को होती है । उसका उपादान अन्य किसी व्याख्याकार ने नहीं किया है । भट्टनायक ने भट्टलोल्लट तथा शंकुक के मतों का खण्डन

करते हुए कहा है कि भट्टलोल्लट रस की उत्पत्ति मुख्यरूप से अभिनेय राम आदि में तथा गौणरूप से अभिनेता नट में मानते हैं । किन्तु रसानुभूति तो उदासीन व्यक्ति में नहीं होती है । अत: तटस्थ राम और नट से सामाजिकों का सम्बन्ध नहीं बनता है । इस प्रकार तटस्थ राम और नट में क्रमशः मुख्य और गौणरूप से रस की उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती है । अतएव 'ताटस्थ्येन' रसोत्पत्ति' मानने वाले भट्टलोल्लट का सिद्धान्त ठीक नहीं है । श्री शंकुक ने तटस्थ नट में रस की अनुमिति स्वीकार की है किन्तु अनुभूति तो परोक्षज्ञान की होती है प्रत्यक्ष ज्ञान की नहीं होती है । रस की अनुभूति तो प्रत्यक्ष होती है । अत: परोक्षानुभूति न होने के कारण अनुमितिवाद भी उचित नहीं है । "न ताटस्थ्येन रस उत्पद्यते, न प्रतीयते' । - काव्यप्रकाश ¦4, पृष्ठ संख्या 104. ¦

ताटस्थ्य से अर्थात् अनुकार्यगत या अनुकर्तृगतरूप से न रस की उत्पत्ति होती है और न प्रतीति या अनुमिति होती है । यहाँ पर "न उत्पद्यते" से भट्टलोल्लट के "उत्पत्तिवाद' का और "न प्रतीयते' से शंकुक के 'अनुमितिवाद' का निराकरण किया गया है । व्यञ्जनावादी अभिनवगुप्त ने रस की निष्पत्ति सामाजिकों में स्वीकार की है और सामाजिकों में रस की उत्पत्ति या अनुमिति न मान कर अभिव्यक्ति स्वीकार की है । किन्तु भट्टनायक के मतानुसार यह 'अभिव्यक्तिवाद' भी सर्वथा उचित नहीं है क्योंकि अभिव्यक्ति तो सदैव विद्यमान वस्तु अथवा व्यक्ति की होती है क्योंकि वस्तु अथवा व्यक्ति की सत्ता अभिव्यक्ति से पूर्व

और बाद में ही विद्यमान रहती है । जबकि रस तो केवल अनुभूति काल में ही अनुभूत होता है । अनुभूति से पहले और बाद में रस की सत्ता विद्यमान नहीं रहती है । इस प्रकार से अभिनवगुप्त का 'अभिव्यक्तिवाद भी मान्य एवं समी - चीन नहीं है । इस प्रकार भट्टनायक ने भट्टलोल्लट कृत 'उत्पत्तिवाद,' शंकुक कृत 'अनुमितिवाद' तथा अभिनवगुप्त कृत 'अभिव्यक्तिवाद' का खण्डन करके अपने भुक्तिवाद की प्रतिष्ठापना की है । भट्टनायक ने भुक्तिवाद की स्थापना करने हेतु अभिधा और लक्षणा शक्ति के साथ भावकत्व और भोजकत्व नामक दो व्यापारों की नवीन कल्पना की है । उनके मतानुसार-

1. अभिधा या लक्षणा व्यापार से काव्य का केवल अर्थ बोध ही किया जा सकता है ।

2. भावकत्व व्यापार अभिधा द्वारा उत्पन्न अर्थ का परिष्कार करके सामाजिकों के लिये आस्वादन-योग्य बना देता है । अर्थात् अभिधा से उत्पन्न काव्य का अर्थ एक विशेष नायक और विशेष नायिका की प्रेमकथा आदि रूप में व्यक्ति विशेष से सम्बद्ध होता है । भावकत्व व्यापार, इस कथा को परिष्कृत करके उसमें से व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध को हटाकर उसका सामाजिकों के हृदय से 'साधारणीकरण' कर देता है । इस प्रकार भावकत्व व्यापार द्वारा राम का रामत्व सीता का सीतात्व दूर होकर एक पुरुष और सामान्य स्त्री रूप हो जाता है । और उनका प्रेम साधारण दाम्पत्य की कोटि में आ जाता है । यह

भावकत्व व्यापार ही साधारणीकरण व्यापार है ।

3. इस भावकत्व व्यापार से काव्यार्थ का 'साधारणीकरण' हो जाने के पश्चात् 'भोजकत्व' नामक तीसरे व्यापार से साधारणीकरण को प्राप्त विभाव आदि रस रूप में आस्वाद का विषय बनते हैं । अर्थात् सामाजिक को रस का साक्षात्कारात्मक 'भोग' करवाता है ।

अतः भट्टनायक के मतानुसार सर्वप्रथम काव्य का अर्थबोध होता है तत्पश्चात् उसका चिन्तन किया जाता है, इसके बाद 'रजोगुण तथा तमोगुण के अभिभूत होने से सत्त्वगुण उद्रेक होता है । सत्वगुण की अधिकता होने पर सामाजिक साधारणीकृत विभावादि की आनन्दानुभूति प्राप्त करते हैं और यह आनन्द की अनुभूति ही 'रस' होती है तथा यह आनन्दानुभूति वेद्यान्तर स्पर्श शून्य और सामान्य आनन्द की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है । अतः इस आनन्दानुभूति को ही ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है । भट्टनायक के इस भुक्तिवादी सिद्धान्त का निरूपण काव्यप्रकाशकार ने प्रकृत प्रकरण में इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

न तटस्थरूप से [अर्थात् नटगत या अनुकार्यगतरूप से] रस की प्रतीति [अनुमिति] होती है और न ही उत्पत्ति होती है और न सामाजिकगतरूप से [आत्मगतत्वेन रस की] अभिव्यक्ति होती है । अपितु काव्य अथवा नाटक में [शब्द के] अभिधा तथा लक्षणा से भिन्न विभावादि के साधारणीकरणस्वरूप

'भावकत्व' नामक व्यापार से साधारणीकृत (रत्यादि) स्थायीभाव सत्व गुण के उद्रेक से (ब्रह्मानन्दवत्) प्रकाश और आनन्दमय अनुभूति की (वेद्यान्तर-स्पर्श-शून्य रूप से) स्थिति के सदृश (ब्रह्मसाक्षात्कारजन्य आनन्द अनुभूति के सदृश) भोग से आस्वादित किया जाता है यह भट्टनायक का मत है ।[1]

भट्टनायक के इस 'भुक्तिवाद' को व्याख्याकारों ने सांख्यमतानुयायी सिद्धान्त स्वीकार किया है । सांख्य में सुख-दुःख आदि जैसे वास्तव में अन्तः - करण के धर्म हैं, आत्मा के धर्म नहीं, किन्तु पुरुष का अन्तःकरण के साथ सम्बन्ध होने से पुरुष में उनकी औपाधिक प्रतीति होती है । उसी प्रकार से सामाजिक में न रहने वाले रस का आस्वादन उसको होता है । इस सादृश्य के आधार पर ही इस सिद्धान्त को सांख्यमतावलम्बी सिद्धान्त कहा जा सकता है ।[2]

भट्टनायक का 'भुक्तिवाद' भी विद्वानों में आदृत नहीं हो सका क्योंकि उन्होंने शब्द में 'भावकत्व' और 'भोजकत्व' नामक जिन दो नवीन व्यापारों की कल्पना की है वे अनुभव से सिद्ध नहीं है तथा जिस स्थायीभाव का 'भोग' बतलाया

---

1. न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते, नोत्पद्यते, नाभिव्यज्यते अपितु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधारणीकरणात्मना भावकत्व- व्यापारेण भाव्यमानः स्थायी, सत्त्वोद्रेकप्रकाशानन्दमयसंविद्विश्रान्तिसतत्त्वेन भोगेन भुज्यते इति भट्टनायकः । - काव्यप्रकाश, पृष्ठ संख्या 107.

2. काव्य-प्रकाश अनुवादक आचार्य विश्वेश्वर

है वह राम-सीता आदि गत स्थायीभाव है या नटगत है या सामाजिकगत है इसका भी स्पष्टीकरण नहीं हुआ है। अतः मुख्यरूप से अप्रामाणिक 'भोजकत्व' व्यापार पर आश्रित होने से भट्टनायक का यह भुक्तिवाद भी सर्वथा मान्य नहीं है।

अभिनवगुप्त

भरत नाट्यशास्त्र के चतुर्थ किन्तु सर्वप्रथम व्याख्याकार व्यञ्जनावादी अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के भुक्तिवाद से प्रेरित होकर 'अभिव्यक्तिवाद' का प्रतिपादन किया है। अपने भट्टनायक के भुक्तिवाद का स्वरूप और अधिक परिष्कृत किया है। भट्टनायक के भावकत्व व भोजकत्व व्यापार की आवश्यकता न मानकर व्यञ्जना व्यापार से ही रस की अभिव्यक्ति स्वीकार की है। अतः आपके मतानुसार व्यञ्जना से ही सम्पूर्ण विघ्नों की समाप्ति तथा विभावादि के संयोग से अर्थात् व्यंग्य-व्यञ्जक सम्बन्ध से अभिव्यक्ति होती है जिसे भुक्ति अथवा आस्वाद कहा जाता है। भावकत्व व्यापार व्यञ्जना का प्रथम उन्मेष है तथा दूसरा उन्मेष भोगीकरण है। इस प्रकार अभिनवगुप्ताचार्य के अनुसार विभावादि के द्वारा संयोग से रस की निष्पत्ति अर्थात् अभिव्यक्ति सामाजिकों में होती है।[1]

---

1. लोके प्रमदादिभिः स्थाय्यनुमानेऽभ्यासपाटववतां काव्ये नाट्ये च तैरेव कारणत्वादिपरिहारेण विभावनादिव्यापारवत्त्वादलौकिकविभावादि ---------- श्रृङ्गारादिको रसः। - काव्य-प्रकाश, पृष्ठ संख्या 109.

अर्थात् रति आदि स्थायीभाव विभावादि के द्वारा साधारणीकृत होकर श्रृंगा-रादि रसों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। रसानुभूति की दशा में सामाजिक इतना अधिक आनन्द-विभोर हो जाता है कि उसे कुछ ज्ञात नहीं रहता है कि ये विभावादि मेरे हैं या शत्रु के हैं या तटस्थ के हैं न मेरे हैं और न शत्रु के हैं। न तटस्थ के हैं। इसका अभिप्राय यह है कि सामाजिकों को रसानुभूति दशा में कुछ भी अन्य ज्ञान नहीं रहता है। इसीलिये रस को वेद्यान्तर-स्पर्श-शून्य कहा गया है। अतः सामाजिक रसानुभूति के क्षण में अन्य ज्ञान के सम्पर्क से शून्य अथवा रहित होकर स्वयं प्रकाशक रस का आस्वादन पानकरस के सदृश करता है। यही आस्वादनयोग्य रस स्फुरित सा होता हुआ सामाजिकों के हृदय में प्रविष्ट सा होता हुआ, समस्त अङ्गों में व्याप्त सा होता हुआ अन्य सांसारिक राग-द्वेष आदि के ज्ञान को तिरोहित सा करता हुआ ब्रह्मानन्द के समान आनन्द की अ अनुभूति कराता है। अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराने के कारण इसको अलौकिक तथा वेद्यान्तर स्पर्श-शून्य और ब्रह्मानन्द सहोदर कहते हैं।

अभिनवगुप्त ने यहाँ रस को 'अलौकिक' कहा है, अर्थात् वह लौकिक अन्य वस्तुओं से भिन्न प्रकार का है। संसार में पायी जाने वाली अनित्य वस्तुएं दो प्रकार की होती हैं - 1. कार्य 2. ज्ञाप्य। घटपट आदि कार्य पदार्थ हैं। ये किसी कारण विशेष से उत्पन्न होने के कारण कार्य कहे जाते हैं इसका जनक 'कारण' या 'कारक' कहलाता है। दूसरे प्रकार की वस्तुयें ज्ञाप्य होती हैं जैसे-दीपक के प्रकाश से घट का ज्ञान होता है तो यहाँ दीपक के द्वारा ज्ञात होने के

कारण घट ज्ञाप्य कहा जाता है अर्थात् पूर्वसिद्ध पदार्थ का किसी साधन के द्वारा ज्ञात होने पर उस पदार्थ को ज्ञाप्य कहा जाता है । जो पदार्थ पूर्वसिद्ध नहीं है, किसी कारण विशेष के व्यापार से जिसकी उत्पत्ति होती है तो वह पदार्थ कार्य और ज्ञाप्य दो वर्गों में ही अवश्यमेव अन्तर्भूत हो जाते हैं । किन्तु रस को न तो 'कार्य' अथवा न 'ज्ञाप्य' कह सकते हैं । कार्य इसलिये नहीं कहा जा सकता है कि घट कार्य, कारण अर्थात् कुम्भकार के नष्ट होने पर भी विद्यमान रहता है किन्तु रस तो विभावादि के नाश के बाद प्रतीत ही नहीं हो सकता । अतः रस को कार्य नहीं कह सकते हैं । इसी अभिप्राय से काव्यप्रकाशकार ने 'विभावादिजीवितावधिः' इस विशेषण का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त रस को ज्ञाप्य भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि रस लौकिक वस्तु के समान पूर्वसिद्ध एवं ज्ञान के बाद विद्यमान नहीं रहता है । रस की प्रतीति सहृदयजन को क्षणिक होती है । अतः रस को 'ज्ञाप्य' भी नहीं कह सकते हैं । इस प्रकार से रस 'कार्य' तथा 'ज्ञाप्य' इन दोनों से भिन्न होने के कारण रस की अलौकिकता सिद्ध हो रही है । इस बात को काव्य-प्रकाश में इस प्रकार वर्णित किया गया है । और वह [रस] कार्य नहीं है । विभावादि का नाश हो जाने पर भी [क्योंकि कार्य मानने पर कुम्भकार की मृत्यु हो जाने पर भी जैसे घड़ा बना रहता है उसी प्रकार] उसकी स्थिति सम्भव हो जाएगी [जो कि होती नहीं है इसलिये रस 'कार्य' नहीं है । और उसके पूर्वसिद्ध [अनुभव के पहले विद्यमान] न होने से वह 'ज्ञाप्य' भी नहीं है । अपितु विभावादि से व्यञ्जित और आस्वाद-भोग्य

[अर्थात् आस्वादकाल में ही विद्यमान रहता] है । कारक तथा ज्ञापक से अतिरिक्त [व्यंजक आदि हेतु] कहाँ पाये जाते हैं ? यदि यह प्रश्न किया जाये तो इसका उत्तर है कहीं नहीं पाये जाते हैं । यह बात तो अलौकिकत्व की सिद्धि का आभूषण है न कि दूषण ।[1]

रस की अलौकिकता को सिद्ध करते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं कि - रसानुभूति को न निर्विकल्पक ज्ञान और न सविकल्पक कह सकते हैं जैसे - घट को देखकर दर्शक के हृदय में 'यह कुछ है' ऐसा ज्ञान होता है उसे निर्विकल्पक ज्ञान कहते हैं । किन्तु रस तो विभावादि के ज्ञान से सम्बन्धित तथा आनन्द स्वरूप होने के कारण निर्विकल्पक ज्ञान की श्रेणी में नहीं आता है । रस को सविकल्पक ज्ञान से ग्रहण नहीं किया जा सकता क्योंकि सविकल्पक ज्ञान तो जाति नाम आदि की योजना से आबद्ध होता है - जैसे घट, पट आदि ज्ञान के लिये नाम जाति आदि का ज्ञान आवश्यक होता है । इसीलिये घट, पट आदि सविकल्प ज्ञान की परिधि के अन्तर्गत आते हैं किन्तु रस तो केवल अनुभूति का विषय है । अतः रस सविकल्पक ज्ञान

---

1. स च न कार्यः, विभावादिविनाशेऽपि तस्य सम्भवप्रसङ्गात् । नापि ज्ञाप्यः, सिद्धस्य तस्यासम्भवात् । अपि तु विभावादिभिर्व्यञ्जितश्चर्वणीयः । कारकज्ञापकाभ्यामन्यत् क्व दृष्टमिति चेत् ? न क्वचिद् दृष्टमित्यलौकिकत्वसिद्धेर्भूषणमेतन्न दूषणम् । - काव्य-प्रकाश, पृष्ठ संख्या 110.

से भिन्न होता है । इस प्रकार से रस का अलौकिकत्व स्वयं सिद्ध हो रहा है ।[1]

वास्तव में काव्य की आत्मा रूप रस एक अनिर्वचनीय तथा विलक्षण वस्तु है क्योंकि लौकिक वस्तुओं के समान रस के कार्य एवं ज्ञाप्य तथा कारण और ज्ञापक न होने से रस एक अलौकिक तत्त्व है किन्तु सहृदय, हृदय संवेद्य वेद्यान्तर स्पर्श शून्य, अखण्ड, चिद्रूप, स्वयं प्रकाशक, आनन्दस्वरूप ब्रह्मानन्द सहोदर है । अतः रस एक अलौकिक एवं विलक्षण सहृदय आह्लादक काव्य का प्राण तत्त्व है ।

इस प्रकार उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम दो मत 1. भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद और 2. शंकुक का अनुमितिवाद रस सिद्धि के लिए उपयुक्त नहीं है । अन्य दो मत 3. भट्टनायक का भुक्तिवाद तथा 4. अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद ही रस सिद्धि के लिये सवर्था समीचीन, उपादेय तथा तर्क संगत है । आजकल अभिनवगुप्तपादाचार्य द्वारा प्रतिपादित अभिव्यक्तिवाद ही सर्वाधिक मान्य समझता जाता है ।

---

1. तद्ग्राहकं च न निर्विकल्पकं विभावादिपरामर्शप्रधानत्वात् नापि सविकल्पकं चर्व्यमाणस्यालौकिकानन्दमयस्य स्वसंवेदनसिद्धत्वात् । उभयाभावस्वरूपस्य चोभयात्मकत्वमपि पूर्ववल्लोकोत्तरतामेव गमयति न तु विरोधमिति श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तपादाः ।

- काव्य-प्रकाश, पृष्ठ संख्या 112.

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आत्मा आनन्दस्वरूप है । सहृदय सामाजिक को रस के द्वारा आनन्द की अनुभूति होती है । इसलिए काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है । यद्यपि वासना की स्थिति होने पर काव्यानन्द प्राप्त होता है । इसीलिए काव्यानन्द ब्रह्मानन्द स्वरूप न होकर तत्सहोदर कहा गया है । सारांश यह है कि काव्यानन्द रागात्मक है और ब्रह्मानन्द ज्ञानात्मक है ।

प्रस्तुत चम्पूकाव्य में रस-निरूपण

विश्वगुणादर्श चम्पू में प्रसङ्गानुसार रस-परिपाक पूर्णरूप से हुआ है । चम्पूकाव्य में सभी रसों का समुचित प्रतिपादन हुआ है, किन्तु मुख्यरूप से श्रृंगार रस मुखरित होता है । अतः सर्वप्रथम श्रृंगार रस का ही प्रतिपादन करना उचित होगा ।

श्रृङ्गार रस का स्वरूप

श्रृङ्गार रस का निरूपण करते हुए कविराज विश्वनाथ लिखते हैं कि काम के उद्भेद को श्रृङ्ग कहते हैं और उत्तम प्रकृति का कामोद्रेक ही श्रृङ्गार रस कहा जाता है । परकीया तथा अनुरागशून्य वेश्या को छोड़कर अन्य नायिकाएं और दक्षिण आदि नायक इस रस के आलम्बन हैं । चन्द्रमा, चाँदनी, चन्दन, भ्रमर आदि इसके उद्दीपन विभाव हैं । भ्रूभंगिमा, कटाक्ष आदि इसके अनुभाव हैं । उग्रता, मरण, आलस्य, एवं जुगुप्सा को छोड़कर अन्य निर्वेद आदि व्यभिचारी

भाव हैं। इसका स्थायीभाव रति है। विष्णु देवता और वर्ण साँवला है। यह संभोग तथा विप्रलम्भ नामक दो प्रकार का होता है।[1]

कवि श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने अपने चम्पूकाव्य में श्रृङ्गार रस का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। जो उनकी कृति को उत्कृष्टतम बनाने में समर्थ है।

श्री रङ्गनगरी वर्णनम् में संयोग श्रृङ्गार की छटा प्रशंसनीय है -

श्यामोत्तुङ्गपयोधरोज्ज्वलरुचिरतन्वन्भुजङ्गान्वयं
श्रीरङ्गस्थलनित्यवासरसिकः श्रृङ्गारिणामग्रणीः।
प्राकारप्रकरान्तरस्थितिमती या राजपद्मिन्यहो-
निःशङ्कं परपूरुषाशिरमसौ निद्राति तत्सन्निधौ ॥ 402 ॥

---

1. श्रृङ्गंहि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः श्रृङ्गार इष्यते ॥
परोढां वर्जयित्वा तु वेश्यां चानुरागिणीम्।
आलम्बनं नायिकाः स्युर्दक्षिणाश्च नायकाः ॥
चन्द्रचन्दनरोलम्बकताद्युदीपनं मतम्।
भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनुभावः प्रकीर्तितः ॥
त्यक्त्वौग्र्यमरणालस्य जुगुप्सा व्यभिचारिणः।
स्थायिभावो रतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदेवतः ॥
विप्रलम्भोऽथ सम्भोग इत्येष द्विविधो मतः।
- साहित्यदर्पण - 3/182-187.

अर्थात् रमणियों के उन्नत कुचों पर अतिशय आसक्ति युक्त (काले-काले घुमड़ रहे बादलों की तरह जगमगाती कान्ति वाला), विलासियों के सरदार नाट्यशाला में सदैव रहने में प्रसन्न (श्रीरङ्ग क्षेत्र का सतत निवासी), यह जार (पुरुषोत्तम), नट-विटों का सहचर्य (शेषशयन) करता हुआ, पाषाण आदि के घेरों के बीच में रहने वाली (शैवालादि के समूह से घिरे घेरों के मध्य में स्थित), जो राजपद्मिनियाँ (कमलिनी) हैं उनके पास में निर्भय बहुत देर तक सोता रहता है, आश्चर्य है ।

यहाँ पर आलम्बन विभाव लक्ष्मी (नायिका) तथा विष्णु (नायक) हैं । उद्दीपन 'श्यामोत्तुङ्गपयोधर' है । अनुभाव 'प्राकारप्रकरान्तर' है । 'रति' स्थायीभाव है । अतः यहाँ पर संयोग श्रृङ्गार है ।

संभोग श्रृङ्गार का चरमोत्कृष्ट रूप "आन्ध्रदेशवर्णनम्" में स्पष्ट दृष्टिगत होता है -

> रोमावल्या तपनसुतया रम्यहारद्युनद्या
>
> ह्द्यास्तुङ्गस्तनगिरिजुषो नाभिवापीमनोज्ञाः ॥
>
> भूमेर्मूर्तीरिव वसुमतीर्भुञ्जते भाग्यवन्तः
>
> क्षोणीपाला इस युवजनाः काममान्ध्रीः पुरन्ध्रीः ॥ 156 ॥

अर्थात् रोमावली युक्त होने से यमुना की तरह, रमणीय हारों से गङ्गा

की तरह उठे हुए पहाड़ की तरह मनोहर कुचों वाली, बावली की तरह नाभि से सुशोभित, कान्तिमती, पृथ्वी की मूर्ति की तरह आन्ध्र देश की रमणियों के साथ पृथ्वीपतियों की तरह भाग्यवान् तरुणजन यथेच्छ भोग कर रहे हैं ।

प्रस्तुत श्लोक में आलम्बन आन्ध्र देश की रमणियाँ तथा युवक हैं । उद्दीपन 'रोमावली, तुङ्गस्तन, नाभि आदि हैं । भ्रूभंग आदि अनुभावों का अभाव है, तथा व्यभिचारी भाव भी यहाँ पर वर्णित नहीं है, स्थायी भाव 'रति' है ।

श्रृङ्गार रस से ओत-प्रोत श्लोक "गुर्जरदेशवर्णनम्" से अवलोकनीय है -

सकर्पूरस्वादुक्रमुकनववीटीरसलस-

न्मुखाः सर्वश्लाघापदविविधदिव्याम्बरधराः ।

लसद्रत्नाकल्पा घुमघुमितदेहाश्च घुसृणै-

र्युवानो मोदन्ते युवतिभिरमी तुल्यरतिभिः ॥ ।15 ॥

अर्थात् कर्पूरयुक्त मधुर पूगीफल के सहित नूतन पान-पट्टी के रस से सुशोभित मुख युक्त, सभी लोगों से प्रशंसनीय अलौकिक वस्त्रों को धारण करने वाले, सुन्दर मणियों के आभूषण से युक्त, कुंकुम से सुवासित शरीर वाले ये तरुण समान अनुराग वाली युवतियों के साथ आनन्द ले रहे हैं ।

यहाँ पर सम्भोग श्रृङ्गार है क्योंकि तरुण समान अनुराग वाली युवतियों के साथ प्रसन्नतापूर्वक बेरोकटोक स्वतन्त्रता के साथ आनन्दसागर में गोते लगा रहे हैं। जैसा कि दशरूपकार ने कहा है जहाँ पर दो विलासी युवक व युवती एक दूसरे के अनुकूल होकर दर्शन, स्पर्श, आलिङ्गन इत्यादि क्रियाओं के द्वारा एक दूसरे का भोग करते हैं। उसे आनन्दयुक्त संभोग श्रृङ्गार कहा जाता है।[1]

चोल देश का वर्णन करते समय भी कवि ने श्रृङ्गार रस को आधार बनाया है। उससे दो श्लोक उद्धृत हैं -

अगूढगाढस्तनकुम्भिकुम्भमम्भोजदम्भोदयजैत्रनेत्रम ।
चित्ते विधत्ते बत चोलदेशस्त्रैणं प्रवीणं रतिकान्तबाणम् ॥ 455 ॥

अर्थात् हाथियों के गण्डस्थल के समान, खुले हुए कुचद्वन्द्व, कमल के अभिमान को पराजित करने वाली आँखों से युक्त, 'हाव-भाव आदि में' चतुर चोल देश की स्त्रियों का समूह कामदेव के बाणों को हृदय में धारण करता है।

नवार्तवमहोत्सवे ननु सहस्रशः संगता-
गृहाद्बहिरशङ्कितं गदितकामगाथाशताः ।

---

1. अनुकूलौ निषेवेते यत्रान्योन्यं विलासिनौ ।
दर्शनस्पर्शनादीनि स संभोगो मुदान्वितः ॥ - दशरूपक 4/69.

अहार्यकठिनस्तनप्रकटनादनागस्विनो-

मुनेरपि घनां धृतिं चुलुकयन्ति चोलाङ्गना: ।। 456 ।।

अर्थात् प्रथम ऋतुकाल के महान् उत्सव पर घर से बाहर हजारों स्त्रियाँ एक साथ मिलकर भयरहित होकर सैकड़ों काम - गाथाओं को कहने वाली चोलदेश की रमणियाँ पर्वत के सदृश कठोर कुचों के प्रकटन द्वारा निर्दोष मुनि के कठिन धैर्य को भी छुड़ा देती हैं ।

यमुनानदीवर्णनम् से संभोग श्रृंगार रसाप्लावित श्लोकद्वय द्रष्टव्य है ।

अंसे सलीलमधिरोप्य शुकं स्वहस्ताद्

गोप्या भयाकुलदृश: कुतुकी मुकुन्द: ।

'अंसङ्गतं शुकमिहापनयेति' वाचं

तस्या निशम्य स तदंशुकमाचकर्ष ।। 125 ।।

अर्थात् कौतुकी यह मुकुन्द डर से चचल नेत्रवाली गोपी के कन्धे पर अपने हाथ से शुक को रखकर, 'कंधे पर स्थित शुक को अभी हटाओ' इस तरह उसकी बात सुनकर उस कृष्णने उस गोपी के वस्त्र को खींच लिया ।

अंशुक का आकर्षण अनुभाव है, आलम्बन कृष्ण व गोपी हैं । श्रृंगार उद्दीपन गोपी व कृष्ण की एकान्तमय स्थिति है ।

नीत्वा राधिकया निशां मुररिपुः प्रातर्गृहानागतस्-

'त्वं मा भूरपराधिकः पुनरिति प्रोक्तोऽपि पूर्वं मया ।

कस्मादेवमभूरिति' श्रितरुषा निर्भर्त्सितो लीलया

'त्वद्वाचैव सराधिको हमिति' तां व्यामोहयन्मायया ॥ 126 ॥

अर्थात् राधिका के साथ रात बिताकर मुरारी प्रातःकाल घर आये, क्रोधयुक्त यशोदा से -'फिर तुम अपराधी मत होना ऐसा पहले ही मुझसे कहे हुए' भी 'तुम' क्यों ऐसा हुए इस तरह धमकी देने पर 'तुम्हारी बात ‖त्वं मा भूः अपराधिकः‖ से ही हम राधिका के साथ थे, ऐसा कहकर उस यशोदा को माया से मोह लिया ।

<u>वीर-रस</u>

वीर रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए दशरूपककार लिखते हैं - प्रताप, विनय, अध्यवसाय, सत्त्व, मोह, अविषाद, नय, विस्मय, पराक्रम इत्यादि ‖विभावों‖ के द्वारा होने वाले उत्साह ‖स्थायी भाव‖ से वीर रस होता है । वह दया, युद्ध और दान ‖अनुभावों‖ के योग से तीन प्रकार का हो जाता है ।[1]

---

1. वीरः प्रतापविनयाध्यवसायसत्त्व

मोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः ।

उत्साहभूः स च दयारणदानयोगात्

त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षाः ॥ - दशरूपक- 4/72.

और उसमें मति, गर्व, धृति तथा प्रहर्ष ﴾व्यभिचारीभाव﴿ हुआ करते हैं ।

विश्वगुणादर्श चम्पू में वीर रस का विभिन्न वर्णनों में उत्तम चित्रण हुआ है ।

वीर रस का उदाहरण इस श्लोक में प्रस्तुत किया जा रहा है -

तत्ताद्दृक्ताटकादेहध्वान्तराजीवबान्धवः ।
सुबाहुमत्तमातङ्गसंहारवरकेसरी ॥ 59 ॥

यज्ञादि कर्मों के नाश करने में प्रसिद्ध ताटका के शरीररूपी अन्धकार के लिये सूर्य, सुबाहुरूपी मदमत्त हाथी के नाश में महासिंह ﴾ऐसे राम मेरे मन में प्रवेश करें﴿ ।

कवि ने आन्ध्रदेशवर्णनम् में तुर्कदेशीय यवन योद्धा के पराक्रम का ओजस्वी स्वरूप प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है -

युद्धाय प्रमिलन्तु हन्त पटवो योधाः सहस्त्राधिका
यद्येकोऽपि बलात्तुरुष्क-यवनेष्वारूढघोटो भटः ।
निस्त्रिंशं परिकम्पयन् स्वकटकान्निष्कामति क्रोधतः
सर्वे ते कृपणास्तृणान्यशरणाः खादन्ति सीदन्ति च ॥ 163 ॥

अर्थात् रणकुशल हजारों से भी अधिक योद्धा युद्ध के लिए एक साथ मिल जायँ, तब भी आश्चर्य है कि तुर्कदेशीय यवनों में से एक भी अश्वारूढ योद्धा अपनी सेना में से वेग से क्रोध करके खड्ग नचाता हुआ निकलता है 'तो' वे सभी रक्षक हीन, दीन जन तृण खाने और काँपने लगते हैं ।

यहाँ पर उत्साह स्थायीभाव है अतः वीर रस है । अयोध्यावर्णनम् में श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने श्री राम के अपरिमित शौर्य का वर्णन किया है-

अयोध्यावर्णनम् के इन श्लोकों में वीर रस परिलक्षित हो रहा है । उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं -

भार्गवाग्रहदावाग्निपरिमार्जननिर्झरः ।
विराधाख्यदुरातङ्कविद्रावणमहौषधम् ॥ 60 ॥

अर्थात् परशुराम के आग्रहरूपी दावाग्नि को शान्त करने में जलप्रवाह, विराध नामक दैत्य के महा उपद्रव को शान्त करने में महा औषधि ‖ऐसे राम मेरे मन में प्रवेश करें‖ ।

खर-दूषणकिम्पाकखण्डनैकपरश्वधः ।
दुर्मांचनीचमारीचकीचकप्रबालानलः ॥ 61 ॥

अर्थात् खर-दूषण रूपी विषवृक्ष के काटने में अकेली कुल्हाड़ी, दुर्नीच पतित

मारीच रूपी बाँस के लिए प्रचण्ड अग्नि (ऐसे राम मेरे मन में प्रवेश करें) ।

कुम्भकर्णमदाम्भोधिस्तम्भने कुम्भसंभव: ।
बलीयोरावणप्राणपाषाणदलनाशनि: ॥ 66 ॥

अर्थात् कुम्भकर्ण के मदरूपी समुद्र के सोखने में अगस्त्य, बलवान्-रावण के प्राण-रूपी शिला के भेदन में वज्र (ऐसे राम मेरे मन में प्रवेश करें) ।

<u>भयानक रस</u>

दशरूपककार के शब्दों में "विकृत (डरावने) शब्द अथवा सत्त्व (पराक्रम, प्राणी, पिशाच आदि) आदि (विभावों) से उत्पन्न होने वाला भय नामक स्थायी भाव ही (परिपुष्ट होकर) भयानक रस होता है । सारे शरीर का काँपना, पसीना छूटना, मुँह सूख जाना, रंग फीका पड़ जाना (वैवर्ण्य) आदि इसके चिह्न (कार्य, भाव) होते हैं । दीनता, सम्भ्रम, सम्मोह, त्रास आदि इसके व्यभिचारी भाव होते हैं ।[1]

---

1. विकृतस्वरसत्त्वादेर्भयभावो भयानक: ।
   सर्वाङ्गवेपथुस्वेदशोषवैवर्ण्यलक्षण: ॥
   दैन्य सम्भ्रमसंमोहत्रासादिस्तत्सहोदर: ॥
   - दशरूपक - 4/80.

भयावने शब्द को सुनने या भयानक सत्त्व को देखने से उत्पन्न होने वाले भय स्थायी भाव से (परिपुष्ट होकर) भयानक रस होता है ।

श्री वेङ्कटाध्वरि विरचित विश्वगुणादर्श चम्पू में "भय" भाव की व्यञ्जना वनवर्णनम् में मिलती है -

पुरः पुरो घनं वनं वने महागिरि-
र्महागिरौ महागिरौ विराजते गुहागृहम् ।
गुहागृहे गुहागृहे विहारतत्परो हरि-
र्हरौ हरौ निरङ्कुशः कृतेभसाध्वसो ध्वनिः ॥ 207 ॥

आगे-आगे सघन जंगल, हरएक जंगल में बड़े-बड़े पहाड़, प्रत्येक पहाड़ों में गुफायें, हर गुहागृहों में क्रीडा-आसक्त सिंह, प्रति सिंहों में स्वच्छन्द, हाथियों का भयोत्पादक गर्जन शोभित हो रहा है ।

इस श्लोक में जो भयानक रस का आस्वादन है वह सहृदय सामाजिक के हृदय में विद्यमान भय की अभिव्यक्ति का ही परिणाम है ।

इतस्तावद्ग्रावव्यतिकर इतः सन्त्यजगरा
इतो लुण्टाकानां समुदय इतः कण्टकचयः ।
इतो व्याघ्रा उग्रा ज्वलनजनका वेणव इतो
वनं संलक्ष्यैतन्मन इदमहो मोहमयते ॥ 208 ॥

अर्थात् एक ओर तो पत्थरों का समूह है, दूसरी ओर अजगर है, एक ओर लुटेरों का समूह है तो दूसरी ओर काँटों का समूह है । इधर भयंकर व्याघ्र है, उधर अग्नि को उत्पन्न करते हुए बाँस है, इस तरह के जंगल को देखकर यह मेरा मन भ्रम में पड़ जाता है ।

यहाँ पर भय स्थायी भाव की व्यजना हो रही है अत: यहाँ पर भयानक रस है ।

वेदान्तिवर्णनम् में भी भयानक रस का प्रयोग कवि ने किया है -

श्रिताभव्यमार्गाश्चिताभस्मशुष्य-

न्निटाला जटाला: स्फुटालापशून्या: ।

श्मशानाग्निसख्या दृशा निर्दहन्त:

पिशाचा इवामी दिशासु भ्रमन्ति ॥ 524 ॥

अर्थात् अमङ्गल मार्ग को आश्रय मरने वाले चिता की भस्म से सूखते हुए ललाट वाले, जटाओं से युक्त, अस्पष्ट बोलने करने वाले, श्मशान की अग्नि के सदृश दृष्टि से जलाते हुए ये शैव पिशाचों को समान सभी दिशाओं में भ्रमण करते हैं ।

अद्भुत-रस

अद्भुत रस के स्वरूप का निरूपण करते हुए दशरूपककार लिखते हैं -

"अलौकिक पदार्थों ‡के दर्शन, श्रवण आदि से‡ उत्पन्न होने वाला, विस्मय एवं स्थायी भाव ही जिसकी आत्मा है, वह अद्भुत रस कहलाता है । साधुवाद ‡सराहना करना‡, अश्रु, कम्पन, प्रस्वेद तथा गद्गद होना आदि उसके कार्य ‡अनुभाव‡ हैं ।, हर्ष, आवेग और धृति इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं ।"[1]

भाव यह है कि लोक-सीमा का अतिक्रमण करने वाले पदार्थों के वर्णन आदि से विभावित होकर, साधुवाद आदि अनुभावों से परिपुष्ट होकर तथा हर्ष, आवेग आदि ‡व्यभिचारीभावों‡ से भावित होकर विस्मय नामक स्थायी भाव ही अद्भुत रस कहलाता है ।

विश्वगुणादर्श चम्पू में यत्र-तत्र अद्भुत रस का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है ।

अद्भुत रस की व्यंजना इस श्लोक के माध्यम से सहृदय सामाजिक को हो रही है -

मूकाख्यं कमपि बधिराः श्लोकमाकर्णयन्ति
श्रद्धालुस्तं विलिखति कुणिः श्लाघया वीक्षते न्धः ।

---

1. अतिलोकैः पदार्थैः स्याद्विस्मयात्मा रसो द्भुतः ।
कर्मास्य साधुवादाश्रुवेदथुस्वेदगद्गदाः ।
हर्षावेगधृतिप्राया भवन्ति व्यभिचारिणः ॥ - दशरूपक 4/78-79.

अध्यारोहत्यहह सहसा पङ्गुरप्यद्रिशृङ्गं

सान्द्रालस्याः शिशुभरणतो मन्दमन्दन्ति वन्ध्याः ॥ 204 ॥

अर्थात् बहरे गूँगों के द्वारा उच्चारण किये हुए किसी श्लोक को बधिर सुन रहे हैं और उस श्लोक को श्रद्धालु, लूला (हाथ-रहित) अच्छी तरह लिख रहा है । अन्धा प्रशंसात्मक भाव से देख रहा है, आश्चर्य है कि लंगड़ा अचानक पहाड़ के शिखर पर चढ़ रहा है, बन्ध्या स्त्रियाँ शिशुओं का भरण-पोषण करने से अतिशय-आलस्य से युक्त होकर शिथिल हो रही हैं ।

प्रस्तुत श्लोक में सहृदय हृदय में 'विस्मय' स्थायी भाव उद्बुद्ध हो रही है जिसका परिपाक अद्भुत रस के रूप में हो रहा है ।

श्रीरङ्गनगरीवर्णनम् का अद्भुत रस-परिपूर्ण यह श्लोक भी कम प्रशंसनीय नहीं -

दातुर्द्वारि य एष वारणमगात्तद्वार्यहो वारणं

पश्याम्यद्य चिरादशेत भुवि यो भूमस्तस्य शेते भुजे ।

नाहारानपि लेभिरे यदबला हारानमूस्तत्प्रिया-

विन्दन्ते कमलादृगूर्मिभिरहो निम्ने भवत्युन्नतिः ॥ 420 ॥

अर्थात् जो यह 'याचक' दाताओं के दरवाजे पर निषेध पा चुका है,

उसके द्वार पर हाथी देखता हूँ । जो बहुत दिन पृथ्वी पर सोया आज उसकी भुजाओं पर पृथ्वी सो रही है । जिनकी अङ्गनायें आहार भी नहीं पाती थीं उनकी वे प्रियतमायें हार पहिनती हैं । आश्चर्य है लक्ष्मी के कृपाकटाक्षरूपी लहरियों द्वारा निम्न पुरुष भी उन्नति प्राप्त करता है ।

यहाँ पर 'विस्मय' स्थायी भाव है । अतः यहाँ पर अद्भुत रस है ।

अद्भुत रस का चरमोत्कर्ष रूप अस्मिन् श्लोक में देखने को मिलता है ।

वैकुण्ठो महताहताखिलमहारम्भं मदेनोच्चकै-

श्चण्डं खण्डयितुं हिरण्यकशिपुं बेतण्डमुत्कण्ठया ॥

सैहं वेषमशेषभीषणमहो गृह्णंस्त्वरागौरवात्

प्रह्लादव्यसनासहिष्णुरुदगादाकण्ठकण्ठीरवः ॥ 19 ॥

प्रह्लाद के दुःखों को न सहन करने वाले नारायण ने अत्यन्त गर्व से सारे यज्ञादि कर्मों के विनाशक (गजपक्ष-दान वारि से उन्मत्त होकर सारे उपवनादि को उखाड़ देने वाले) अतिशय भयङ्कर हिरण्यकशिपुरूपी हाथी को छिन्न-भिन्न कर देने के लिये उत्कण्ठा से समस्त जीवों के भयङ्कर सिंह वेष को धारण करते हुए कण्ठ पर्यन्त सिंहरूप में आविर्भूत हुए ।

यहाँ पर नृसिंह भगवान् आलम्बन हैं । प्रह्लाद के कष्टों को सहन न

करना तथा हिरण्यकशिपु का विनाश करने की इच्छा से प्रकट होना ये दोनों आवेद व्यभिचारी भाव हैं । स्थायी भाव विस्मय है ।

अवेमव्यापाराकलनमतुरीस्पर्शमचिरा-

दनुन्मीलत्तन्तुप्रकरघटनायाससुकृत् ॥

विषीदत्पाञ्चालीविपदपनयैकप्रणयिन:

पटानां निर्माणं पतगपतिकर्तोरवतु न: ॥ 20 ॥

विलाप करती हुई द्रौपदी के विपत्ति को दूर करने में ही जिनका एक मात्र प्रेम है उस गरुडध्वज भगवान् श्रीकृष्ण का ताने-बाने की क्रियाओं से रहित, तुरी-स्पर्श से रहित अभिव्यक्ति न होने वाले सूत्रों के परस्पर घटन रूप प्रयास से बार-बार होने वाला वस्त्रों का निर्माण हमारी रक्षा करें ।

उपर्युक्त श्लोक में 'विस्मय' स्थायी भाव है । अत: यहाँ पर अद्भुत रस है ।

<u>बीभत्स-रस</u>

"बीभत्स रस जुगुप्सा नामक स्थायी भाव से निष्पन्न होता है । यह कारण है- ।क। कीड़े, दुर्गन्ध, वमन आदि विभावों से होने वाला उद्वेगी बीभत्स होता है । ।ख। रुधिर, अंतड़िया, हड्डी ।कीकस।, मज्जा ।वसा।,

मांस आदि (विभावों) से होने वाला क्षोभ उत्पन्न करने वाला तथा (ग) जघन, स्तन आदि के प्रति वैराग्य से होने वाला घृणाशुद्ध बीभत्स होता है । यह नाक सिकोड़ना, मुँह फेरना (विकूणन) आदि अनुभावों से युक्त होता है तथा इसमें आवेग, व्याधि (आर्ति), शङ्का आदि (व्यभिचारी भाव) हुआ करते हैं ।"[1]

हमारे आलोच्य चम्पू काव्य में प्रणेता श्री वेङ्कटाध्वरि जी ने बीभत्स रस का प्रयोग न के बराबर किया है । सम्पूर्ण चम्पू काव्य में एक-आध स्थल को छोड़कर कहीं भी बीभत्स रस का प्रयोग नहीं हुआ है । कवि ने जुगुप्सा भाव का वर्णन काञ्चीपुरीवर्णनम् में एक स्थल पर किया है -

नैतद्विभाति नगरं नगरम्यदुर्ग-

प्राकारसाधनदशासु विशां पतीनाम् ।

युद्धोन्मदभटशिरस्तटनिस्सृतासृक्-

प्रोतःसहस्रभरविस्रपलास्थिसान्द्रम् ॥ 375 ॥

अर्थात् नरपतियों के नगर पर्वत की तरह उन्नत दुर्गम दुर्ग को अपनाने

---

1. बीभत्सः कृमिपूतिगन्धिवमनथुप्रायैर्जुगुप्सैकभू-
   रुद्वेगी रुधिरान्त्रकीकसवसामांसादिभिः क्षोभणः ।
   वैराग्याज्जघनस्तनादिषु घृणाशुद्धो नुभावैर्वृतो
   नासावक्त्रविकूणनादिभिरिहावेगार्तिशङ्कादयः ॥
   - दशरूपक - 4/73

की अवस्था में युद्ध में शत्रुओं पर टूट पड़ने वाले योद्धाओं के मस्तक प्रदेश से निकलने वाली खून की हजारों धाराओं के आधिक्य से दुर्गन्धियुक्त मांस-हड्डियों से सना हुआ यह चजीपुर नगर सुन्दर नहीं लग रहा है ।

यहाँ स्वभावत: सहृदय सामाजिक की जुगुप्सा रूप स्थायीभाव की प्रतीति हो रही है अत: यहाँ पर बीभत्स रस है ।

"वनवर्णनम्" में गद्य भाग के एक अन्यत्र स्थल पर बीभत्स रस स्पष्ट परिलक्षित होता है -

कृशानु - किमरे वर्णयस्यचक्षुष्याणि मनुष्याङ्गकवलनचपलचण्डपुण्डरीकाननानि काननानि ? ॥ 83 ॥

अर्थात् अरे ! मनुष्यों के अवयवों के खाने में लोलुप भयङ्कर व्याघ्रों के मुखयुक्त, अदर्शनीय जंगलों की क्या प्रशंसा कर रहे हो ?

<u>शान्त-रस</u>

दशरूपककार के शब्दों में -"शम का प्रकर्ष ॥शान्त॥ अकथनीय है, मुदिता प्रभृति वृत्तियों से उसे प्राप्त किया जा सकता है ।"[1]

---

1. शमप्रकर्षो निर्वाच्यो मुदितादेस्तदात्मता ॥
   - दशरूपक - 4/45.

यदि शान्त रस का स्वरूप यही है -"जहाँ सुख, दु:ख, चिन्ता, द्वेष, राग या इच्छा आदि का अभाव हो वही शान्त रस का स्वरूप है ऐसा मुनीन्द्रों का कहना है, पर सभी भावों में यह शम प्रधान है ।"[1]

तो उसकी प्राप्ति मोक्षावस्था ही में स्वरूप प्राप्ति पर होती है । स्वरूपत: उसकी अनिर्वचनीयता का प्रतिपादन श्रुति भी 'नेति' 'नेति' कहकर अन्यापोह रूप से ही करती है । इस प्रकार के शान्त रस का आस्वाद सहृदयों को नहीं होता । फिर उसके आस्वाद के उपायभूत मुदिता आदि वृत्तियाँ हैं और वे क्रमश: विकास, विस्तर, क्षोभ, विक्षोभ रूप हैं, अत: इस उक्ति से ही शान्त रस को आस्वाद का निरूपण होता है ।[2]

काव्य प्रकाशकार के अनुसार -" आठों रसों के अतिरिक्त एक और भी रस है जिसका नाम 'शान्त रस' है और जिसका स्थायीभाव 'निर्वेद' है ।[3]

---

1. न यत्र दु:खं न सुखं न चिन्ता
   न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा ।
   रसस्तु शान्त: कथितो मुनीन्द्रै:
   सर्वेषु भावेषु शमप्रधान: ॥ - दशरूपक - 4/442.

2. तस्य मोक्षावस्थायामेवा त्मस्वरूपापत्तिलक्षणायां प्रादुर्भावात् तस्य च स्वरूपेणा निर्वचनीयता । तथाहि श्रुतिरपि स एष ------ शान्तरसास्वादो निरूपित: । - दशरूपक - 4/442.

3. निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस: । - काव्यप्रकाश 4/47.

हमारे चम्पूकाव्य में कवि ने शान्त रस का प्रयोग कतिपय श्लोकों में किया है जो प्रकृत प्रकरण में द्रष्टव्य है -

'कर्णाट देश वर्णनम्' में कवि श्री ने शान्त रस का समुचित प्रयोग किया है -

आबालस्थविरं स्थिरं हरिदिने शुद्धोपवासव्रतं
निष्प्रत्यूहमहर्निशं विजयते नारायणाराधनम् ।
श्लाघ्या भागवतेषु भक्तिरमिता श्रद्धा च येषां दृढा
शास्त्रे स्वीयगुरूदिते न चरितं साध्वेषु माध्वेषु किम् ? ॥ 183 ॥

एकादशी के दिन जिनका बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक शुद्ध निराहार व्रत, बिना विघ्न के रात-दिन नारायण (विष्णु) की अराधना, भागवत में प्रशंसनीय असीम भक्ति और अपने गुरु द्वारा कहे हुए शास्त्र में दृढ श्रद्धा प्रकाशित है, इन माध्वमतानुयायियों में शोभन आचरण नहीं है क्या ? ।

प्रस्तुत श्लोक में 'निर्वेद' स्थायी भाव है । अतः यहाँ शान्त रस है ।

कर्णाटदेशवर्णनम् से एक और उदाहरण यहाँ पर प्रस्तुत किया जा सकता है-

दनुजभिदभिषेकैः सत्पुराणावलोकैः
पुनरपहतमोहैः पुण्यतीर्थावगाहैः ।

भवकथनविदूरैर्ब्रह्मविद्याविचारैः

क्षणमिव शुभचर्याः कालमेते नयन्ति ॥ 184 ॥

शुभ आचरणशील ये माधवसंबंधीय दैत्यनाशक विष्णु के अभिषेक, सत्पुराणों के अवलोकन, संसार के प्रपञ्च कथन से दूर, वेदान्तशास्त्र के विचार, गङ्गादि पुण्यतीर्थों के स्नान द्वारा समय को क्षण की तरह व्यतीत करते हैं ।

उपर्युक्त श्लोक में निर्वेद स्थायी भाव है अतः यहाँ पर शान्त रस है ।

श्रीरामानुजवर्णनम् में शान्तरसाभिप्रेत यह श्लोक दर्शनीय है-

भाले शुद्धमृदूर्ध्वपुण्ड्रतिलकः पद्माक्षमाला गले

दिव्यं शङ्करथाङ्गचिह्नमनिशं दीप्तं भुजामूलयोः ।

वक्त्रे शौरिगुणैकवर्णनपरा वाचस्तदेनोमुचा-

मेतेषां हरिभक्तितुन्दिलहृदां वीक्षापि मोक्षावहा ॥ 240 ॥

मस्तक पर शुद्ध मिट्टी से ऊर्ध्वपुण्ड्रात्मक तिलक, गले में कमल के बीज की अक्षमाला, भुजाओं के अग्रभाग में सदैव चमकता हुआ दिव्य शङ्ख-चक्र का चिह्न, मुख में श्रीकृष्ण के गुण वर्णन में लगी हुई वाणी है, अतः श्रीकृष्ण की भक्ति से परिपूर्ण हृदय वाले कलङ्करहित इन लोगों का दर्शन भी मोक्ष प्रदान करने वाला है ।

चम्पकारण्यश्रीराजगोपालवर्णनम् में कवि ने शान्त रस का प्रयोग किया है ।

स्नात्वा सह्यसुताजले शुचितमा भूत्वा जपादिक्रमै-
हुत्वाग्नौ च हविः कृतेतरगिरां कृत्वा च पारायणम् ।
नत्वा शाङ्र्गधरं भवामयहरं स्तुत्वा च तं भक्तितः-
श्रेष्ठाः कालमयी क्षिपन्ति बहवः श्रीकुम्भघोणे द्विज। ॥ 460 ॥

कावेरी के जल में स्नान कर, अत्यन्त पवित्र होकर, जप आदि कर्मों के क्रम से अग्नि में हवि का हवन कर, शाश्वत वेद वाणी का परायण कर, सांसारिक रोगों के नाशक शाङ्र्गधर भगवान् को नमस्कार करके तथा उनकी भक्ति पूर्वक प्रशंसा करके ये बहुत से ब्राह्मणोत्तम जन कुम्भघोण नामक स्थान में समय बिता रहे हैं ।

---------::0::---------